वाल्मीकीय रामायण में बिम्ब-विधान

(बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० उपाधि हेतु)

प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

निर्देशक
आचार्य कृष्णदत्त चतुर्वेदी
पूर्व अध्यक्ष संस्कृत विभाग
अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज
अतर्रा (बाँदा)

अनुसन्धाता
सुरेश चन्द्र उपाध्याय
एम. ए. (संस्कृत)
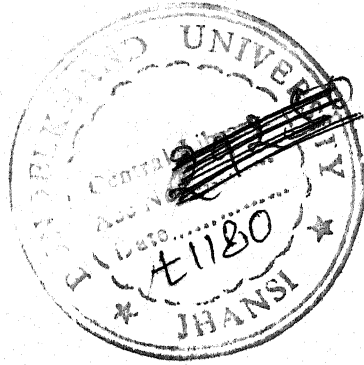
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

दिसम्बर १९९२

यावद् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले
तावत् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥

वा० रा०—बा०/सर्ग २/३६

आचार्य कृष्ण द-त चतुर्वेदी
पूर्व अध्यक्ष , संस्कृत विभाग
अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज
अतर्रा (बांदा)

अतर्रा (बांदा)
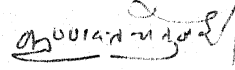
दिनांक--7-12-92-

प्र मा ण - प त्र

प्रमाणित किया जाता है कि-

1- यह शोध प्रबन्ध छात्र का निजी एवं मौलिक प्रयास है ।

2- इन्होने मेरे निर्देशन में विश्व विद्यालय द्वारा निर्धारित अवधि तक कार्य किया है।

3- इन्होंने विभाग में वांछित उपस्थिति भी दी है ।

4- शोध छात्र का प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध आधुनिक सन्दर्भों में अत्यन्त उपयोगी है ।

शोध निर्देशक

(आचार्य कृष्ण दन्त चतुर्वेदी)
पूर्व अध्यक्ष संस्कृत विभाग
अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज
अतर्रा बांदा

प्रस्तावना

यह अकारण करूणावरूणालय राघवेन्द्र भगवान् श्रीराम के अहेतुक अनुग्रह का परिणाम ही कहना चाहिए कि मेरा जैसा अल्पमति मर्यादा- पुरूषोतम दशरथ-नन्दन के पावन-चरित से ओतप्रोत आदि कवि भगवान् प्राचेतस वाल्मीकि की वाणी से प्रसूत रामायण पर कार्य सम्पन्न कर अपने को कृतार्थ कर रहा है और रामायण के अध्ययन की भूमिका लेखन का सौभाग्य प्राप्त कर रहा है । अन्यथा महामनीषियों के द्वारा भी जिस कृति का अवगाहन श्रम -साध्य है । मेरे लिए तो वह कार्य कठिन ही नहीं असाध्य भी होता । आज यह सौभाग्य का विषय है कि मै एक शोधार्थी की भूमिका मे ' वाल्मीकि रामायण मे बिम्बविधान ' जैसे पयोधि गम्भीर विषय को लेकर तद्विषयक शोधप्रबन्ध के सम्बन्ध में चर्चा करने का उपक्रम कर रहा हूँ । इस महनीय कार्य की ओर प्रवृत होने की भी एक कहानी है ।

शोधार्थी के पितामह स्वर्गीय पं0 श्री रामदयाल उपाध्याय संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान एवं राम के अनन्य भक्त थे । वाल्मीकि रामायण के जाने कितने ही छन्द उनको कठस्थ थें, जव वह राघवेन्द्र राम की भक्ति मे निमग्न हो अपने मधुर- कठ से रामायण के ललित छन्दों का तल्लीन होकर गायन करते थे उस समय अर्थावगति से कोसों दूर किन्तु ललित स्वर की मधुरिमा से अभिभूत होकर मेरा वल मन किसी अनिर्वचनीय रससिन्धु में डूबने उतराने लगता था । किसे पता था कि शैशव का यह दिव्य संस्कार आगे चलकर मुझे रामायण के रसावगाहन के लिए बाध्य करेगा ।

शैशव अतीत होने के पश्चात् अध्ययन की ओर उन्मुख हुआ और भगवत् - कृपा से सीढ़ी दर सीढ़ी ऊपर उठने के पश्चात् गीर्वाण वाणी मे ही परास्नातक की पद्वी प्राप्त करने का पुण्य लाभ हुआ । अध्ययन काल मे प्रारम्भ से ही संस्कृत का अध्ययन कराया जाना मेरे लिए कोई आश्चर्य जनक बात नहीं थी, क्यो कि संस्कृत के अध्ययन अध्यापन की परम्परा वशानुगत थी । यह सौभाग्य मुझे अनायास ही सुलभ हो गया था । किन्तु मै तो यह मानता हूँ कि देव भाषा के प्रति असीम अनुराग का बीज जो शिशु - मन की भूमि मे उप्त था, वही आगे चलकर अंकुरित , पल्लवित, पुष्पित और फलित हुआ ।

किन्तु प्रतीत तो ऐसा होता है कि भगवत् कृपा किसी भी शुभ कार्य की ओर प्रवृन्त्युन्मुख करने के लिए कोई न कोई निमित यों ही प्रस्तुत कर देती है । मनुष्य तो केवल निमित्त मात्र है । एम0ए0 करने के पूर्व ही से इस व्यक्ति ने अध्यापन मे संलग्न होने के कारण आगे कुछ अध्ययन के लिए सोचा ही नहीं था । एक दिन एक अद्भुत घटना घट गई वड़ागाँव झाँसी के मोराई के हनुमान्

मन्दिर मे ही एक विद्वान् वाल्मीकि रामायण का प्रवचन कर रहे थे मै भी उसमें सम्मिलित होकर श्रवण लाभ करता रहा और इसी बीच मेरे हृदयस्थ प्रभु ने मुझे उत्प्रेरित किया कि मै रामायण में कुछ कार्य करूँ, कहना नहीं होगा कि मेरे शैशव संस्कार ही ईश्वरीय प्रेरणा के रूप मे उद्बुद्ध हो गये । परिणामत· मैने रामायण पर शोध करने का मारूति-मन्दिर में ही संकल्प कर लिया ।

संकल्प कर लेना तो सहज था किन्तु उसको कार्य रूप मे परिणत करना कितना कठिन होगा इसका मुझे कुछ भी पूर्वाभास नहीं था । इसका अनुभव तो तब हुआ जब मुझे शोधकार्य में अधिकृत विद्वानों के साथ सम्पर्क करने के लिए इतस्तत: दौड़धूप करनी पड़ी रामायण पर शोधकार्य की रूचि प्रकट करने पर उन्तर मिलता था कि इस पर बहुत पहले ही अनेक शोधार्थियों के द्वारा कार्य सम्पादित हो चुके हैं किन्तु, मैने हार नही मानी और अन्त मे ईश्वरीय कृपा ही कहिए कि तत्कालीन अतर्रा महाविद्यालय अतर्रा मे संस्कृत विभागाध्यक्ष पदासीन आचार्य कृष्णदन्त चतुर्वेदी ने मेरे अनुरोध पर रामायण पर कार्य कराने की सहर्ष अनुमति प्रदान की ।

यह भी मेरे सुकृतों का फल कहा जायेगा कि विना प्रयास के ही बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी ने प्रस्तुत शोधविषय के शीर्षक को स्वीकृति प्रदान कर दी और मेरा पंजीकरण एक शोध छात्र के रूप मे हो गया । इस शोध कार्य में जो मुझे लाभ मिला है वह वर्णनातीत है । इसी व्याज से मुझे आदि कवि की काव्यमयीवाणी के रसास्वादन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, शोध कार्य से सम्बद्ध अनेक उत्कृष्ट ग्रन्थों के अनुशीलन - परिशीलन करने का सुयोग मिला और सबसे बड़ी बात तो यह हुई कि भगवान राघवेन्द्र के पावन चरितामृत पान करने से मेरा जीवन धन्य हुआ । एक तो आदि कवि की पावन वाणी और वह भी रामकथा से ओतप्रोत - मधुरं हि पयः स्वभावतो ननु कीदृक् सितशर्करान्वितम् ।

दो शब्द शोध-प्रबन्ध के सम्बन्ध में कहना भी अनुपयुन्क्त न होगा । प्राय: यह कहा जाता है कि अमुक शोधकार्य में नई खोज क्या है ? किन्तु, सच तो यह है कि काव्य साहित्य में नई खोज हो भी क्या सकती है ? विनीत शोधार्थी की यह धारणा है कि किसी भी साहित्यिक अध्ययन के माध्यम से यदि उसकी प्रासंगिकता तथा उपादेयता जन - समाज में स्थापित हो सकी तो इसका कम महन्त्व नहीं है । ' वाल्मीकीय रामायण मे बिम्ब- विधान ' शीर्षक शोध कार्य के माध्यम से शोधार्थी ने यह प्रयास किया है कि आदि कवि की वाणी का सूक्ष्मातिसूक्ष्म तात्पर्य उद्घाटित हो ।

महर्षि वाल्मीकि ने दाशरथि राम को ईश्वरीय रूप मे अंकित किया है कि महामानव के रूप मे इस सन्दर्भ मे विद्वान् एक मत नही है किन्तु शोधार्थी की मान्यता है कि महर्षि वाल्मीकि के राम

का मानवीय रूप अभिनन्द्य एव अभिवन्द्य है कि उसमें षडैश्वर्य सम्पन्न भगवान् की भगवत्ता न्योछावर है । वाल्मीकीय रामायण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होने वैदिक देवताओं के स्थान पर दाशरथि राम के चरित्र को अपने काव्य का वर्ण्य विषय बनाया । अन्य राम-कथा गायकों की रचनाएँ राम और साधारण जन समुदाय के बीच एक लक्ष्मण रेखा खीचती रहीं हैं । किन्तु वाल्मीकि के राम मानव मात्र के अतिघनिष्ठ बन गये है । शास्वत मानवीय मानव मूल्यों की स्थापना में वाल्मीकीय रामायण की आज भी जितनी प्रासंगिकता है वह लक्ष्य करने योग्य है और जीवन मे उतारने के योग्य भी ।

इस शोधप्रबन्ध के लेखन में जिन विद्वज्जनों के परामर्श मौखिक एव ग्रन्थ दर्शन के रूप मे उपलब्ध हुए हैं उनका आभार-स्वीकार प्रथम कर्तव्य है, ऐसे समय मे जब हमारा राष्ट्र भाषा और संस्कृति के निर्धारण मे किसी निष्कर्ष पर नही पहुँच पाया, अपनी बहुमूल्य निधि के बारे मे भी संशयित एव संदिग्ध चेता है । ऐसी स्थिति में संस्कृत का अध्ययन विशेषकर संस्कृत विषय को लेकर अनुसंधान कार्य बड़े धैर्य का कार्य है, परमात्मा ने मुझे यह धैर्य प्रदान किया, एतदर्थ मै उनके चरणों में नमन करता हूँ।

अन्त में मै सस्कृत साहित्य के अधिकारी विद्वानों का आभारी हूँ जिन्होंने इस गुरूतर कार्य में मेरी सहायता की है । इस क्रम में श्रद्धेय डा0 अयोध्या प्रसाद द्विवेदी अध्यक्ष संस्कृत विभाग टी0आर0 एस0 कालेज रीवा का स्मरण करना मै अपना कर्तव्य समझता हूँ । क्यो कि संस्कृत काव्य साहित्य में बिम्ब-परक शोधकार्य के वे अधिकारी विद्वान् हैं । उनसे साक्षातकार करके अपने शोधकार्य में मुझे पर्याप्त दिङ्निर्देशन प्राप्त हुआ है । ऐसे ही प्रो0 सुरेन्द्र नाथ वर्मा हिन्दी विभागाध्यक्ष , बुन्देलखण्ड कालेज झाँसी, का भी मैं अनुगृहीत हूँ जो इस शोध प्रबन्ध के लेखन के समय अपने सत्परामर्श से मुझे लाभान्वित करते रहे हैं संस्कृत एवं हिन्दी के अधिकारी विद्वान् एवं कवि डा0 प्रभात शास्त्री डी0 लिट् ने अपने पाण्डित्य के माध्यम से प्रत्येक साक्षात्कार में इस शोध कार्य में रामायण के कठिन स्थलों को व्याख्यायित कर तद्गत भावबोध कराकर शोधार्थी के सारस्वत उन्मेष में योगदान किया है । एतदर्थ अनुसंधित्सु उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता है ।

डा0 जगदीश सहाय उपाध्याय हिन्दी विभाग बुन्देलखण्ड कालेज झाँसी का आभारी हूँ जिन्होंने समय-समय पर मार्गदर्शन किया ।

अतीत एवं वर्तमान के तत्तत् संस्कृत हिन्दी एवं अँग्रेजी भाषा के अधिकारी विद्वानों का अनुसंधित्सु ऋणी है जिनके महनीय लक्षण ग्रन्थों से बिम्ब का स्वरूप बोध उसको साक्षात्कृत हुआ है ।

श्रद्धेय स्व0 श्री बुद्धि प्रकाश सरावगी को मै स्मरण करता हूँ जिनकी प्रेरणा से आज मै इस शोधकार्य को पूरा कर रहा हूँ ।

शिक्षाविद् श्रीविश्वम्बर नाथ रिछारिया ने स्वाध्याय करने का सत परामर्श दिया उससे मेरा शोध कार्य के प्रति संकल्प दृढतर होता गया मै उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ ।

मै उ0मा0वि0 बड़ागाँव (झाँसी) की प्रबन्ध समिति, अध्यक्ष श्री बृजमोहन तिवारी, प्रबन्धक श्री कैलाश कण चौधरी ,प्रधानाचार्य श्रद्धेय श्री राजाराम वर्मा एवं समस्त विद्यालय परिवार का अनुगृहीत हूँ जिन्होंने इस महनीय कार्य के सम्पन्न करने में वांछित सहयोग प्रदान किया ।

मेरे शोध निर्देशक आचार्य चतुर्वेदी ने सहृदयता के साथ शोधकार्य में मार्ग-निर्देशन कर जो साहाय्य प्रदान किया है एतदर्थ मै मात्र कृतज्ञता ज्ञापन कर कैसे उऋण हो सकता हूँ क्योंकि यदि शोधगत ग्रन्थियों के निवारण मे वे हाथ न बँटाते तो यह कार्य इस रूप में शायद ही सम्पन्न होता, मैं अपने श्रद्धेय स्वर्गीय पितामह एवं पितृ चरणों को भी शिरसा नमन करता हूँ जिनके शुभाशीर्वचन से यह दुस्तर कार्य सम्पन्न करने का गौरव मुझे प्राप्त हुआ है ।

मैने तत्रभवान् महर्षि वाल्मीकि की वाणी को व्याख्यायित करने का जो साहस किया है उससे यह न समझा जाय कि मेरी मति इसकी पात्र है, सच तो यह है कि भगवान् प्राचेतसका कवित्व एवं भगवान् राघवेन्द्र की भक्ति ही मुझको इस ओर ले गई है । विश्वास है कि भगवान् दाशरथि राम एवं त्रिकाल दर्शी परम तपस्वी महर्षि वाल्मीकि मेरे इस बाल चापल्य से रूष्ट नहीं तुष्ट होंगे । मैंने पूरे मनोयोग पूर्वक सतत- अध्यवसाय एव धैर्य के साथ प्रस्तुत शोध कार्य को यथा शक्ति निर्दुष्ट बनाने का प्रयास किया है भी आदि कवि के कवित्व की अगाधता एव गंभीरता देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि इस पुनीत कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई, फिर भी " नभः पतन्त्यात्मसमं पतत्रिणः " के अनुसार प्रयास तो किया ही गया है । मुझे विश्वास है कि मेरा यह शोध-प्रबन्ध उपाधि के योग्य है । विद्वान् मनीषी परीक्षकों से अभ्यर्थना है कि शोधार्थी के मानव स्वभाव जनित स्खलन को महत्त्व न देते हुए अपनी अनुकम्पा से इसे अनुगृहीत करेंगे । ' श्रुतं मे गोपाय '

सुरेशचन्द्र उपाध्याय

(सुरेश चन्द्र उपाध्याय)
एम0ए0(संस्कृत)
शोध-छात्र

अनुक्रम

- - - - - - - - -

प्रस्तावना | 1 -4

अनुक्रम | 1 -4

प्रथम अध्याय

पृष्ठ भूमि | 1 -26

क- संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में वाल्मीकि रामायण की उपादेयता तथा जन जीवनपर व्यापक प्रभाव के कारण उसके अध्ययन की आवश्यकता ।

ख- महर्षि वाल्मीकि का संक्षित इतिवृ-त ।

(वाह्य तथा अन्तरंग साक्ष्य द्वारा)

1- जन्म, 2- देश, 3- काल, 4- जीवनचर्या, 5- सामाजिक स्थिति, 6- कवित्व का उद्भव, 7- रामकथा के आदि उद्गाता ।

द्वितीय अध्याय

रामायण के अध्ययन के विविध आयाम | 27 -39

क- धार्मिक

ख- सांस्कृतिक

ग- ऐतिहासिक

घ- सामाजिक

ड- साहित्यिक

भाषा, छन्द, अलंकार, रीति , गुण , रस , ध्वनि, औचित्य

बिम्ब-

बिम्ब परक अध्ययन की उपयोगिता

तृतीय अध्याय

बिम्ब - परिचय 40 -64

क- संस्कृत अलंकार शास्त्र और बिम्ब

ख- बिम्ब की शास्त्रीय मान्यता

पौरस्त्य दृष्टि

पाश्चात्य दृष्टि

चतुर्थ अध्याय

रामायण पूर्व- वैदिक साहित्य में प्रतीकात्मक बिम्ब 65-81

क- वेद

ख- ब्राह्मण

ग- आरण्यक

घ- उपनिषद

पञ्चम अध्याय

रामायण में बिम्ब- विधान -1 (सामान्य) 82 -116

वस्तुगत, अलंकारगत, प्रकृतिगत, वृत्तिगत, सम्वादगत ।

षष्ठ अध्याय

रामायण में बिम्ब- विधान-2 (बहिरंग) 117 -168

क- दृश्य बिम्ब

ख- अदृश्य बिम्ब

ग- मानव बिम्ब

घ- मानवेतर बिम्ब

सप्तम अध्याय

रामायण में बिम्ब-विधान-3 (अन्तरंग) 169 -211

क- वैचारिक बिम्ब

ख- भावनात्मक बिम्ब

ग- राजनैतिक बिम्ब

घ- धार्मिक बिम्ब

ड- सांस्कृतिक बिम्ब

च- कौटुम्बिक बिम्ब

छ- सामाजिक बिम्ब

अष्टम अध्याय

परवर्ती विशिष्ट महाकवियों पर वाल्मीकि के बिम्बों का प्रभाव- 212 -250

क- व्यास

ख- भास

ग- कालिदास

घ- अश्वघोष

ड- भवभूति

च- भारवि

छ- माघ

ज- श्रीहर्ष

नवम अध्याय

उपसंहार 251 -263

आधुनिक सन्दर्भो में रामायण की प्रासंगिकता

1- रामायण में बिम्ब-विधान के माध्यम से प्रभावित मानव की त्रिविध इकाई (व्यक्ति, कुटुम्ब और समाज)

2- ह्रासोन्मुख मानवीय मूल्यों के व्यापक उन्नयन में रामायण की भूमिका ।

3- भारतीय संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र मे रामकथा की उपादेयता तथा उसमें वाल्मीकि के बिम्बन शिल्प का योगदान ।

परिशिष्टः -   264-285

1- रामायण का उत्तर काण्ड कर्तृत्व विमर्श

2- शोध प्रबन्ध में रामायण के प्रत्येक काण्ड से गृहीत बिम्बों की तालिका ।

3- सन्दर्भ - ग्रन्थ - सूची

क- संस्कृत-

ख- हिन्दी

ग- अंग्रेजी

घ- पत्र पत्रिकाएँ

4- ग्रन्थों के संकेत चिन्ह

प्रथम अध्याय

•

पृष्ठ भूमि

प्रथम अध्याय

पृष्ठ भूमि

क- संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में वाल्मीकि रामायण की उपादेयता तथा जन जीवन पर व्यापक प्रभाव के कारण उसके अध्ययन की आवश्यकता ।

ख- महर्षि वाल्मीकि का संक्षिप्त इतिवृन्त । (वाह्य तथा अन्तरंग साक्ष्य द्वारा)

1- जन्म ,

2- देश,

3- काल,

4- जीवनचर्या,

5- सामाजिक स्थिति,

6- कवित्व का उद्भव ,

7- रामकथा के आदि उद्गाता ।

(क) संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में वाल्मीकि रामायण की उपादेयता-

मनुष्य संसार का सर्व श्रेष्ठ प्राणी है जैसा कि एक स्थान पर भगवान वेद व्यास ने कहा है । ' गुह्यं तत्वंतदिदं ब्रवीमि न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंञ्चित् '[1] मनुष्य की श्रेष्ठता इसलिऐ स्वीकार्य है कि उसमें बुद्धि और हृदय का सामंजस्य पाया जाता है यद्यपि बुद्धि को लेकर शास्त्रों में बहुत कुछ कहा गया है । जयशंकर प्रसाद ने तो यहाँ तक कहा कि ' जो बुद्धि कहे उसको न मानकर फिर नर किसकी शरण जाय ' श्रुतियों की साररूपा गायत्री भी इसी ओर संकेत करती है । कि बुद्धि की प्रखरता मह-त्व पूर्ण है, किन्तु लगतातो ऐसा है कि गायत्री मंत्र का सकेत बुद्धि और हृदय के सामजस्य की ओर ही है ।

---

(1) महा०

कविवर दिनकर ने मानव की मानवता के ख्यापन में एक बहुत अच्छी बात कह दी है, वे कहते हैं ' मानव केवल मस्तिष्क नहीं वह मानस ' और हृदय भी है'[1] सम्भवतः साहित्य की अर्थवन्ता भी बुद्धि और हृदय के इसी सह भाव की ओर है । प्रत्युत कहना तो यह चाहिए कि साहित्य अपने कान्ता सम्मित उपदेश[2] के द्वारा बुद्धि की अपेक्षा हृदय पक्ष को ही अधिक पुष्ट करता है । यदि मनुष्य मात्र बुद्धिमान ही रहता तो उसकी स्वार्थ-परता और स्वसुख-सापेक्षता ही एक मात्र लक्ष्य होता, किन्तु उसका हृदय पक्ष पर-दुख-कातरता की ओर ही अधिक संलग्न दिखता है । कहना नहीं होगा कि आदि कवि वाल्मीकि ने काव्य की उत्पत्ति के सन्दर्भ में इसी तत्त्व को समर्थित किया है ।

कालिदास ने क्रौंच वियोगोत्थित शोक को ही श्लोक के रूप मे परिणत होना बताया है ।[3] इसी का समर्थन करते ध्वन्यालोककार दीखते हैं -

' क्रौंचद्वन्द्व वियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः'[4]

वस्तुतः इन दोनों ही पदों का मूल स्वंय आदि कवि का ही श्लोक है-

' सोऽनुव्याहरणाद् भूयः शोकः श्लोकत्वमागतः '।[5]

निश्चय ही यदि इस अवसर पर बाल्मीकि का बुद्धि पक्ष ही प्रधान होता तो शायद उनका कवित्व का बीज प्रस्फुटित होने से रह जाता और आगे का संसार उनके रामायण जैसे आदिकाव्य से वंचित ही रह जाता किन्तु उनके हृदय पक्ष ने ऋषि के अन्तस् को क्षुभित कर दिया और उनके अन्तस्तल से काव्य गंगा निर्झरिणी फूट पड़ी

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः
यत्क्रौंच मिथुनादेकमधीः काममोहितम्[6]

---

(1) कुरूक्षेत्र - (अभिनव मानव शीर्षक) - दिनकर

(2) कान्ता सम्मिंततयोपदेशयुजे- का0प्र0/ प्रथम उल्लास / कारिका-2

(3) निषाद विद्धाण्डज दर्शनोत्थाः । श्लोकत्वमापद्यत यस्यशोकः ।। रघु0/सर्ग-14/70

(4) ध्व0- 1/ 5

(5) वा0रा0- वाल/ सर्ग-2 /40

(6) वा0राप0- बाल0/सर्ग-2 /15

यों तो संसार के अन्य प्राणियों की तरह मनुष्य भी एक सामाजिक जीव है ।

किन्तु उसके अभ्युदय एवं निःश्रेयस के लिए अनेक उपाय समय समय पर सुझाए गये हैं । शास्त्र में प्रभुसम्मित सुहृत् सम्मित और कान्ता सम्मित उपदेश इन्ही के प्रवर्तक हैं । काव्य या साहित्य कान्ता सम्मित उपदेश के रूप मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है । कहना नही होगा इस काव्य साहित्य के आदि उद्गाता वाल्मीकि ऋषि ही हैं। उनका रामायण आदि काव्य के रूप में चर्चित है । यद्यपि आदि कवि बाल्मीकि के पूर्व भी कवि के कवित्व का प्रादुर्भाव सहस्त्रों वर्ष पूर्व हो चुका था । भगवान कृष्ण ने " कवीनामुषना कवि [1] अर्थात् मै कवियों में शुक्राचार्य हूँ । ऐसा कह कर इस ओर संकेत किया है, कि वाल्मीकि से बहुत पहले ही शुक्रचार्य प्रख्यात कवि इस धरती में विराजमान थे । इतना ही नही संसार मे सर्वाधिक प्राचीनतम वेदों में भी कवित्व की छटा कम नहीं है । फिर भी ऐसी कौन सी नयी बात हो गई कि हमारी परम्परा वाल्मीकि को ही आदि कवि के रूप में मान्यता प्रदान करती है । इसके उत्तर मे केवल इतना ही कथ्य है कि वाल्मीकि से पहले चाहे वह ऋषिहों या मुनि किसी ने यह क्रान्ति नही की जो बाल्मीकि के द्वारा उद्भूत हुई । बाल्मीकि के पूर्व के कवियों ने चाहे अपना वर्ण्य विषय जिस जिस को बनाया हो किन्तु मनुष्य की मनुष्यता का संदेश देने वाला प्रथम कवि वाल्मीकि ही है । बाल्मीकि ने अपनी रचना इसउद्देश्य से की है कि मनुष्य की मनुष्यता का उत्स क्या है । वह है उसका चरित्र । देवर्षिनारद से वह यही जिज्ञासा प्रकट करते हैं । ' चारित्र्येण च को यु-तः [2] । ' जिसके उत्तर में व्रह्म पुत्र नारद कहते है । ' रामोनाम जनैः सुतः [3] ' बाल्मीकि की यह देन विश्व मात्र के लिये सर्वथा अद्भुत तथा अद्वितीय है । सम्भवतः इसलिए मानव समाज ने वाल्मीकि को ही आदि कवि के रूप में स्वीकार किया क्योंकि उन्होंने अपनी मनुष्यता के द्वारा मनुष्य को देवताओं से ऊपर उठा दिया है । इतना ही नही उन्होंने राम के चरित्र को अपने काव्य का कथानक बनाकर बड़ी निर्भीकता के साथ मनुष्य मात्र की महत्ता को लक्षित कराया है । यदि मनुष्य अपने चरित्र का आलम्बन लेकर आगे बढ़े तो उसके सामने देवता भी अकिंचित कर है । वे राम के कोपाविष्ट होने पर देवताओं को त्रस्त होता दिखाने में कोई संकोच नही करते वे स्पष्ट वर्णन करते हैं । " कस्यबिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे । "[4] अर्थात् युद्ध स्थल में किस मनुष्य के कोपाविष्ट होने पर देवता भी

---

(1) भग० — अ0 10, श्लोक-37

(2) वा0रा0-बाल0/सर्ग-1 /03

(3) वा0रा0- बाल0/सर्ग-1/08

(4) वा0रा0-बाल/सर्ग-1/04

भयभीत हो उठते हैं । वाल्मीकि ऐसे ही पुरूष के चरित्र को वरीयता देते हैं और वह है श्री दशरथ नन्दन श्रीराम आज क्या आस्तिक क्या नास्तिक सभी राम के चरित्र का लोहा मानने को बाध्य हैं । विद्वानों ने हमारी इसी मान्यता का समर्थन किया है ।

वाल्मीकि ने एक क्रान्ति और की वह है उनका लौकिक संस्कृत के माध्यम से राम के कथानक का काव्य वद्ध करना इसके पहले के लेखक परम्परा प्राप्त वैदिक संस्कृत में रचना करते चले आ रहे थे । जो जन सामान्य के लिए ग्राह्य नहीं रह गयी थी । सामान्य जनजीवन की भाषा वैदिक भाषा से विकसित होकर वोल चाल की भाषा में परिणत हो चुकी थी । वाल्मीकि जी ने अपने रामायण के सुन्दर काण्ड में हनुमान के मुख से स्पष्ट रूप से इसका उल्लेख कराया है ।

' वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम् ।'[1]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि वाल्मीकि के समय में मानुषी वाक् संस्कृत ही थी न कि वैदिक। क्रान्किारी महा पुरूष इस मार्ग को अनुसरण करते देखे गये है ।

उदाहरणार्थ - तथागत गौतम वुद्ध ने संस्कृत भाषा की उपेक्षा कर तत्कालीन पालि भाषा में जो लोक ग्राह्य थी उसमें अपने उपदेश दिये आगे भी यह प्रवृन्ति देखी गई है । जैसा कि विद्यापति की मैथिली में या तुलसीदास जी की अवधी भाषा में रचना । हमारी इस मान्यता का समर्थन राष्ट्र कवि दिनकर ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ संस्कृति के चार अध्याय में किया है ।[2] निश्चय ही आज भारत में ही नहीं विश्व के कौने- 2 में जो राम और राम का चरित्र व्याप्त है उसका श्रेय वाल्मीकि को ही है । यदि वे बंधी बँधायी लीक के अनुसार जैसा कि वैदिक परम्परा में इन्द्र वरूण , मरूत देवताओं की प्रशस्तियाँ समुपवर्णित हैं । उसी का अनुसरण करते तो आज राम कथा विश्व - व्यापी न बनती ।इतना ही नहीं यदि राम का कथान कही सही किन्तु उसको लौकिक संस्कृत (जन भाषा) में न लिखते तो भी राम कथा आज दिग्दिगन्त व्यापिनी न होती ।

सारांश यह है कि वाल्मीकि ने दोहरी क्रान्ति की एक ओर जहाँ उन्होने वर्ण्य विषय के रूप में देवताओं को बहिष्कृत कर एक आदर्श पुरूष को स्वीकार किया तो दूसरी ओर उन्होने भाषिक क्रान्ति

---

(1) वा०रा० - सु०/ सर्ग 30 / 17

(2) लौकिक संस्कृत किसी वैयाकरण के मस्तिष्क का आविष्कार नहीं कही जा सकती । वैदिक पार्श्व में लौकिक संस्कृत का अस्तित्व रहा होगा । वाल्मीकि ने सवसे पहले लौकिक संस्कृत में काव्य रचना की अतएव वे संस्कृत के आदिकवि और उनका काव्य आदि काव्य माना गया । यह बहुत कुछ वैसा ही उदाहरण है जैसा कि विद्यापति का संस्कृत और प्राकृत को छोड़कर मैथिल में लिखना तथा अमीर खुशरो का खड़ी बोली में काव्य आरम्भ करना ।" (संस्कृति के चार अध्याय पृष्ठ- दिनकर 67)

के रूप में वैदिक संस्कृत की अपेक्षा लौकिक संस्कृत की प्रतिष्ठापना की ।[1]

वाल्मीकिय रामायण लौकिक संस्कृत भाषा का आदिकाव्य है । लौकिक संस्कृत के पूर्व जिस भाषा का अस्तित्व रहा उसे हम वैदिक भाषा के रूप में जानते हैं । उसे ही वैदिक संस्कृत कहा जाता है । वैदिक और लौकिक संस्कृत में तात्विक अन्तर नही है । दोनो ही संस्कृत हैं । केवल कतिपय प्रयोग नियमों में भिन्नता है । वैदिक साहित्य में नियम मुक्ति सबसे महत्व पूर्ण वस्तु है । जो वैदिक संस्कृत में भली भांति परिलक्षित है ।

वैदिक युग में वर्ण्य विषय देवता ही रहें इसी (जन भाषा) में वैदिक कवियों की चिन्तन धारा की माध्यम भूत वैदिक संस्कृत से टूट कर बड़े ही समारम्भ के साथ लौकिक उपाख्यान को आधार बना कर सर्व प्रथम काव्य (प्रबन्धात्मक) रूप से लिखने के कारण संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में वाल्मीकीय रामायण की उपादेयता परिलक्षित है ।

वाल्मीकीय रामायण से पूर्व पद्यात्मक रचनायें हुई और हो रही थी । परन्तु उसका उद्देश्य देव स्तुति , धर्म भावना देवार्चन या उपासना आदि ही था ।

रामायण से पूर्व का काव्य धर्म प्रधान है । उसका सामान्य जन जीवन से कोई विशेष सम्बन्ध नही है । परन्तु रामायण का जन जीवन से साक्षात् सम्बन्ध है ।

" वाल्मीकीय रामायण ऐतिहासिक महाकाव्य है । यह महाकाव्य काव्य के सभी तत्वों से भरपूर है । इस कृति में एक ओर नायक की उदात्तता की पराकाष्ठा है । तो दूसरी ओर नैतिकता का चरमोत्कर्ष उद्दीप्त है । इसमें एक ओर मानव मात्र की अन्तः प्रकृति का मनोज्ञगुम्फन है तो दूसरी ओर प्रकृति का सजीव चित्रण । वाल्मीकि की सशक्त लेखनी से प्रादुर्भूत यह आदिकाव्य न केवल महाकाव्य है, अपितु ऐतिहासिक महाकाव्य, वीरकाव्य और आदर्श जीवन ग्रन्थ भी है ।

---

(1) वाल्मीकीय रामायण की वर्ण्य सामग्री अद्भुत और स्पृहणीय है। इसमें मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम के सम्पूर्ण जीवन इतिवृत्त को अत्यन्त सम्मृद्ध एवं सूक्ष्म विस्तार के साथ प्रस्तुत किया गया ।

लौकिक भावधारा से मनुष्य वाणी का ' मानव विषय' पहिला अभिव्यंजक या मूलतः काव्यात्मक था देवस्तुतिपरक अथवा अमानुषिक नहीं था । वाल्मीकि ने राम को एक आदर्श महापूरूष के रूप में चित्रित किया है ।

स० सा० इ०- बलदेव उपाध्याय पृष्ठ-22।

सच तो यह है कि सहस्त्रों वर्षो से मानवीय संस्कृति तथा सभ्यता की यह आधार शिला है, मानव मात्र के लिए विविध जटिल समस्या-कुंझटिका को अनावृत करने वाले प्रखर ज्योति दिनकर हैं । वैयक्तिक , कौटुम्बिक तथा सामाजिक विसंगतियों के भयानक आवर्त जाल में फसे जनों के निस्तारण हेतु यह रामायण तारक तरणी है । आज का भारत रामायण कथा के नायक राम के चरित्र के आदर्श पर अपना अस्तित्व बनाये अडिग है । जव कि विश्व के अनेक देश अपनी अस्मिता जाने कब के खो चुके हैं, वाल्मीकीय रामायण की फल श्रुति में कहा गया यह अनुष्टुप् भारतीय संस्कृति के लिये भी अक्षरशः यथार्थ बन गया है, जो कि व्रह्मा के द्वारा वाल्मीकि के सन्दर्भ में कहा गया है।

यावत् स्थास्यान्ति गिरयः
सरितश्च महीतले ।
तावत् रामायण कथा,
लोकेषु प्रचरिष्यति ।। [1]

निश्चित ही स्वयंभू विरंचि की यह दैवी वाक् राम कथा के लिये तो शत प्रतिशत सत्य ही सिद्ध हुई है । किन्तु इसमें इतना और जोड़ा जा सकता है कि जब तक रामायण की, रामकथा इस धरती में विद्यमान रहेगी तब तक न केवल भारत में प्रत्युत विश्व में मानव संस्कृति का वट वृक्ष लहराता रहेगा । कहना तो यह उपयुन्क्त होगा कि आगे के कवियों के लिए रामायण उपजीव्य वन गया विश्व कवि कालिदास ने अपने महाकाव्य रघुवंश की रचना के प्रसंग में वाल्मीकि का ऋण मुन्क्त कंठ से सवीकार किया है । [2]

रामायण भारतीय सभ्यता,नगर ग्रामादि- निर्माण, सेतुबन्ध वर्णाश्रम व्यवस्था आदि सांस्कृतिक एवं सामाजिक विषयो पर प्रकाश डालने वाला प्रकाशै स्तम्भ है, जिसके प्रकाश में प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का दर्शन होता है ।

ऋचाओं के रूप में कविता करने वाले ऋषि पद्यपि वहुत पहले से चले आ रहे हैं । किन्तु ऐसा प्रतीत होता है । कि लौकिक उपाख्यान मयी कविता का आरम्भ पहले पहल वाल्मीकि रामायण से ही हुआ ।

---

(1) वा0रा0 - वाल0/सर्ग-3 / 36 ।/2

(2) अथवा कृत वाग्द्वारे बंशेऽस्मिन् पूर्व सूरिभिः ।
मणौ बज्र समुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गति : ।।
(रघु० - प्रथम सर्ग- श्लोक सं0 4

उपनिषदों में रामकथा के उत्स से उभरते दिखते हैं । विशेषकर विदेहराज जनक का तो कई स्थानो पर उल्लेख मिलता है इस प्रकार इस लौकिक संस्कृत में उपाख्यानमयी काव्य परम्परा का प्रारम्भ हुआ ।

रामायण हमारा ऐतिहासिक ग्रन्थ भी है जो प्राचीन भारतीय राजवंश की प्राचीन परम्परा पर ऐतिहासिक प्रभाव डालताहै ।

" रामायण में समाज चित्रण में 5वी शती ई0 पू0 के भारतीय समाज के आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक जीवन का अच्छा चित्र मिलता है ।[1]

मानव प्रकृति के चित्रण में वाल्मीकि अधिक कुशल हैं तथा उनके राम काव्यों की तरह अलौकिक पात्र न होकर मानव सुलभ गुणों और दुर्बलताओं दोनों से समवेत पूरे मानवीय परिवेश में चित्रित व्यक्ति हैं । मानव होने के कारण ही वाल्मीकि के राम के साथ पाठक का साधरणीकरण, सहज हो जाता है ।[2]

रामायण में लौकिक श्री राम को वर्ण्य विषय बनाने से रामायण की उपादेयता का प्रतिपादन होता है ।

साहित्यिक उपादेयता -

रामायण लौकिक उपाख्यानमयी परम्परा का आदि काव्य है । इसके पूर्व वैदिक काव्य मिलता है जिसका विषय सृष्टि-तत्व अथवा विज्ञान था । लौकिक उपाख्यान से उसका (वैदिक साहित्य का) कोई सम्बन्ध नहीं था ।

वैदिक साहित्य की मंत्र शक्ति तो स्पृहणीय थी किन्तु जीवन को मर्म स्पर्शीढंग से छूने की सामर्थ्य उसमें नहीं थी । कारण यही था कि उसका जीवन से सीधा लगाव नही था ।

" रामायण भारतीय साहित्य का पहला महाकाव्य और विश्वसाहित्य के प्राचीनतम महाकाव्यों की तुलना में भाषा,भाव,छन्द, रचना विधान , रस व्यंजना, बिम्ब सभी दृष्टियों से उत्कृष्ट कृति प्रमाणित हो चुकी है । "[3]

वाल्मीकि लौकिक रस व्यंजना के अनुष्टुप् छन्द के प्रथम उच्चारणकर्ता हैं ।

महाकाव्य तदन्तर्गत नायक , रस , सर्ग, विधान आदि की काव्य शास्त्रीय धारणायें उसी के आधार पर परवर्ती आचार्यो द्वारा संचित की गई हैं ।

---

(1) भा0सं0 रू0 पृष्ठ 432-33 भोलाराम व्यास
(2) भा0सं0रू0 पृष्ठ-32 भोलाराम व्यास
(3) भा0सं0रू0 (गैरौला) - पृष्ठ-202

वाल्मीकि रामायण की उपादेयता संस्कृत साहित्य की चिन्तन परम्परा में अक्षुण्ण है । इसे हम परवर्ती काव्य साहित्य परम्परा का प्रवर्तक भी कह सकते हैं ।

वाल्मीकि रामायण की परवर्ती असंख्य कृतियों को अपनी भाव धारा एवं शिल्पन सौन्दर्य से न केवल अनुप्राणित किया अपितु उसके उप जीव्य ग्रन्थ का भी कार्य किया विगत 2500 बर्षो में संस्कृत हिन्दी में राम काव्य की विभिन्न विधाओं के रूप में परम्परा फलती फूलती रही । अनादिकाल से वेदों में जन जीवन के जो महान मानदण्ड उपदेशों के रूप में मंत्रो में संरक्षित थे । आदि कवि वाल्मीकि ने अपनी रामायण में श्री राम के लौकिक उपाख्यानों का आश्रय लेकर व्यावहारिक जीवन की धरती पर उन्हें अवतरित कर दिया । उनके पात्रो में इसका रूप चरमोत्कर्ष पर दीखता है । वाल्मीकि रामायण में पुरूषार्थ की श्रेष्ठता परिलक्षित होती है । दैवी शक्ति के सहारे निठल्ले बैठे रहने की कुण्ठित भावना उसमें नहीं पाई जाती है । इस सन्दर्भ में वाल्मीकि रामायण से मात्र एक उदाहरण प्रस्तुत करना ही पर्याप्त होगा । वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त अन्य पुराणों एवं रामायण ग्रन्थों में अहल्योद्धार की कथा के नायक राम की भगवत्ता है, वह पाषाणी अहल्या का उद्धार अपने चरण स्पर्श के करिश्मे से पुनर्जीवित करके करते हैं, किन्तु वाल्मीकि की दृष्टि इससे पूर्ण भिन्न है । उनकी तो मान्यता है कि यदिकोई व्यक्ति अपने दुष्कर्मों से पतित हो सकता है, किसी असावधानी या प्रमाद से गिर जाता है तो वह अपनी भूल सुधार से अपने सत्कर्मों से उठ भी सकता है । वाल्मीकि की अहल्या राम के चरण स्पर्श से पुनर्जीवित नही होती प्रत्युत वह ग्रीष्मातप, वर्षा , शिशिर के कष्टों को झेलती पाषाणी प्रतिमा सी घोर तपस्यामय जीवन व्यतीत करती है- अदम्य उत्साह के साथ प्रायश्चित्त करती है । और वह अपने तपश्चरण के द्वारा अपने आप अपना उद्धार करती है, अहल्या आश्रम के समीप महर्षि विश्वामित्र के साथ राम अहल्या के तपःपूत वरेण्य जीवन से प्रभावित हो उसके पास जाकर उसको अभिवादन करते है।[1] परिणामतः विश्वामित्र और आदर्श राम जैसे महा मानवों के द्वारा समर्चित अहल्या सामाजिक प्रताडना से ऊपर उठ कर फिर से समाज के लिए वरेण्य हो जाती है, उसके पति गौतम उसको अपनी गृहिणी के रूप में स्वीकार कर लेते हैं । सारांश यह है कि रामायण की कथा परावलम्बन की नही स्वावलम्बन तथा आदर्श मय यथार्थ जीवन का शंखनाद करती है । यद्यपि वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त जाने कितनी ही रामकथा परक कृतियाँ समुप्लब्ध हैं । किन्तु वाल्मीकि रामायण की अपनी एक विशेषता है, जो अन्यत्र सम्भव नहीं । अन्य राम कथा परक कृतियाँ राम के ऐश्वर्य के वर्णन में ही संलग्न दीखती हैं । जो राम के व्यक्तित्व को मानवीय धरातल से इतना ऊपर उठा देती हैं कि सामान्य जन राम के आदर्श को अभिनन्दनीय मात्र समझने लग जाता है । किन्तु अपने को अधिकहीन और दीन

---

(1) राघवौ तु तदा तस्या पादौ जगृहतुर्मुदा।। वा0रा0-बाल/सर्ग-49/17

मान बैठता है । इस तरह अधिकांश राम कथा मूलक कृतियाँ राम के यथार्थ जीवन से सामान्य जन जीवन को पृथक कर देती है । किन्तुवाल्मीकि रामायण लोक मानस को हीन भावना एवं कुण्ठा से ग्रस्त न करके उसको उदात्त मानवीय प्रवृत्तियों की ओर उन्मुख करती है । इस अर्थ में वाल्मीकि रामायण के अध्ययन की आवश्यकता अत्यन्त उपादेय हो जाती है । पाठक अथवा अध्येता यह जानता है कि वाल्मीकि ने राम के कथानक में अदम्य उत्साह , उत्कृष्ट अध्यवसाय एवं दुराधर्ष साहस का अंकन तो किया ही है साथ ही आदि कवि ने अपने कथा नायक की मानव प्रकृति जन्य दुर्बलताओं को रूपायित करने में भी तनिक संकोच नहीं किया । इन सभी कारणों से वाल्मीकि समुपवर्णित रामचरित्र लोक मानस को अपनी ओर अनायास आकृष्ट करता है । यही विशेषता उसको बहुत प्रभावी बना देती है ।

बाल्मीकि रामायण की उपादेयता भारतीय संस्कृति की व्यवहारिक महनीयता उसमें अभिव्यक्त वर्णाश्रम में दृष्टिगत होती है । रामायण के सन्दर्भ में निम्नांकित उक्ति शतप्रतिशत यथार्थ है ।

" रामायण निश्चित ही महान कवि की महतीकृति है । उसमें एक ओर तो अपने महान निर्माता की अनुपम पाण्डित्य प्रतिभा का समावेश है और दूसरी ओर जिस देश एवं धरती में उसका निर्माण हुआ है । वहाँ के सामाजिक, धार्मिक, आध्यत्मिक और आदर्श मय जीवन की समग्रताओं का एक साथ प्रतिबिम्बन है ।रामायण अपने मूल में संस्कृत साहित्य का आदि महाकाव्य और कतिपय परवर्ती महाकाव्यों का प्रेरणा स्रोत ही नही है , वरन् वह भारतीय परिवारों की धर्म पोथी है ।

भारतीय आचार विचार संस्कार-संम्बन्धों का ग्रन्थ और भारत की चिन्तन भक्ति भावना , ज्ञान-भावना , तथा मैत्री-भावना की प्रतिनिधि पुस्तक है ।[1]"

रामायण की प्रधान विशेषता यही है कि उसमें गार्हस्थ्य जीवन के चित्र अत्यन्त विस्तृत रूप में उकेरे गये है जो जाति धर्म देश निरपेक्ष विश्व मात्र के लिए जीवन ज्योति का काम करते है । पिता-पुत्र में, भाई-भाई में, पति-पत्नी में जो धर्म बन्धन है, जो प्रीति और सम्बन्ध हैं उसको रामायण ने इतना महान बना दिया है कि वह सहज में महाकाव्य के उपयुक्त हो गया ।[2]

संस्कृत साहित्य में रामायण की उपादेयता का प्रतिपादन करते हुए बलदेव उपाध्याय कहते है।

" भारतीय गार्हस्थ्य जीवन का विस्तृत चित्रण करना रामायणका उद्देश्य प्रतीत हो रहा है । आदर्श पिता, आदर्श माता ,आदर्श भ्राता, आदर्श पत्नी आदि जितने आदर्शों को इस अनुपम महाकाव्य में

---

(1) स0 सा0 इ0 (कृष्णा कुमार शास्त्री) पृष्ठ सं0 201/202

(2) प्रा0सा0(कवीन्द्र) पृष्ठ 0।

आदि कवि की तूलिका से खीचा है । वे सब धर्म के ही पट पर चित्रित किए गये हैं ।इतना ही क्यों राम रावण का यह भयानक युद्ध भी इस काव्य का मुख्य उद्देश्य नहीं है । वह तो रामजानकी पति पत्नी की परस्पर विशुद्ध प्रीति को पुष्ट करने का उपकरण मात्र है । और ऐसा होना स्वाभाविक भी है । रामायण को भारतीय सभ्यता ने अपनी अभिव्यन्क्ति के लिए प्रधान साधन बना रक्खा है । और भारतीय सभ्यता की प्रतिष्ठा गृहस्थ आश्रम में है । यदि इस गार्हस्थ्य धर्म की पूर्ण अभिव्यन्क्ति के लिए आदि कवि ने इस महाकाव्य का प्रणयन किया तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है । रामायण भारतीय सभ्यता का एक प्रतीक ठहरा दोनो में परस्पर उपकार्योपकारक भाव बना हुआ है । एक को हम दूसरे की सहायता से समझ सकते हैं । "[1]

उपर्युन्क्त कारणों एवं अभिव्यन्क्तियों से वाल्मीकि रामायण की महन्त्ता न केवल संस्कृत साहित्य में अपितु विश्व वाड्मय में स्वतः परिलक्षित होती है । जिसका अपना संस्कृत साहित्य में विशिष्ट स्थान है । जिसकी तुलना किसी दूसरे ग्रन्थ से की ही नहीं जा सकती, वह अद्वितीय है, अनुपमेय है रामायण की तुलना केवल रामायण से की जा सकती है । वह अनन्वय अलंकार का ज्वलन्त उदाहरण है ।

महर्षि बाल्मीकि संस्कृत के आदि कवि हैं और उनका काव्य रामायण संस्कृत आदि काव्य है ।

रामायण में मर्यादापुरूषोन्त्तम श्री राम के आदर्श चरित्र का उदात्त वर्णन किया गया है । यही कारण है कि भारतीयों तथा विदेशियों पर अपना व्यापक प्रभाव डालती है अतः रामायण के परिशीलन की आवश्यकता है ।

जिस महापुरूष का गान करते करते महर्षि की वाणी पवित्र हो जाती है ऐसा अनूठा काव्य रामायण है ।

रामायण में मर्यादा पुरूषोन्त्तम श्री राम में मंजुल गुणों का अद्भुत सामञ्जस्य मिलता है । मानव जाति के लिए उनका चरित्र प्रेरणा का अजस्र स्रोत रहा है तथा सदैव रहेगा । अतः अपने व्यापक प्रभाव के कारण रामायण के अध्ययन की आवश्यकता है ।

रामायण के सभी पात्र अपने उत्कृष्ट चरित्र को संजोए हुए हैं ।

धर्म में ही सत्य की प्रतिष्ठा का प्रतिपादन किया गया है।[2]

---

(1) सं0सा0इ0 (बलदेव उपाध्याय) पृष्ठ-

(2) धर्मो हि परमोलोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम् ।
धर्म संश्रितमप्येतत् पितुर्वचनमुत्तमम् ।। वा0रा0-अयो0सर्ग0 21/41

अयोध्या काण्ड में भरत राम का चित्रकूट में हुआ संवाद राम के उदात्त चरित्र का उद्घाटन करता है । इसमें कर्तव्य पालन निर्देशित किया गया है ।

रामायण में राम को आदर्श महा पुरूष के रूप में चित्रित किया गया है । बाद में वह अपने व्यक्तित्व और कृतित्व के कारण विष्णु के अवतार के रूप में ख्यात हुये अतः रामायण के अध्ययनकी आवश्यकता है ।

महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में शक्ति शील और सौन्दर्य के निधान राम के चरित्र चित्रण में अपना अद्भुत कौशल प्रदर्शित किया है । वे प्रजावत्सल हैं तो भ्रातृ प्रेम की अद्भुत प्रेरणा मानव समाज के सन्मुख प्रस्तुत करते हैं ।

लोक और जीवन के जितने सम्बन्ध हो सकते है उनमें श्री राम के आदर्श आचरण के व्यापक प्रभाव के कारण वाल्मीकि रामायण के अध्ययन की आवश्यकता है ।

रामायण की रचना उद्दाम शोक की अनुभूति से हुई जो बाद में क्रौञ्च पक्षी में से एक के वध के पश्चात् " मा निषाद " के अनुष्टुप् छन्द के रूप में उद्भूत हुयी ।

रामायण के आधार पर ही संस्कृत के आचार्यो ने महाकाव्य के लक्षण बनाये हैं । अतः अपने व्यापक प्रभाव के कारण उसके अध्ययन की महती आवश्यकता है ।

वैसे तो रामायण की उपादेयता अपने निर्माण काल से लेकर सदैव अक्षुण्ण रही है किन्तु इस स्वार्थमय भौतिक युग में तो उसकी प्रासंगिकता और बढ़ गयी है , अन्धकार जितना प्रगाढ़ होता जाता है प्रकाश की उपयोगिता उतनी ही बढ़ती जाती है, आज जब की विश्व के कोने कोने में मानवीयता कराह रही है, स्वार्थ लोलुप मानव अपनी मानवीयता से कोसों दूर दानवीयता का रूप धारण कर अपने ही विनाश में लगा हुआ है । जातीयता, साम्प्रदायिकता, संकीर्णता, अलगाव आदि का विष सर्वत्र फैल रहा है, क्रूरता नग्न रूप धारण कर ताण्डव नृत्य कर रही है आतंकवाद का दानव अपने कराल दंष्ट्राओं से समूची मानवता को निगलजाने में लगा है । अनाचार एवं दुराचार का बीज नित्य नये रूप धारण करता समग्र आदर्श जीवन को लील जाने को आतुर है , सारी धरती हिंसा से भयाक्रान्त है । दसो दिशाऐं अन्धतमसाच्छादित हैं, ऐसी विसंगतियों के बीच जी रहे अपने विकृत जीवन को सुसंस्कृत बनाने के लिए ललक रहे समाज को वाल्मीकि रामायण और उनके काव्य नायक राम ही मात्र दीपालोक ही नही प्रातः कालीन दिनकर की रश्मियों के समान अपनी रश्मियाँ विकीर्ण करने के लिए आतुर हैं । किन्तु

आवश्यकता है मानव मात्र को अपने चक्षुओं के द्वार खोलने की

प्रसाद के शब्दो में-

डरोमत अरे अमृत सन्तान अग्रसर है मंगलमय वृद्धि ।

पूर्ण आकर्षण जीवन केन्द्र खिची आयेगी सकल समृद्धि ।। [1]

किन्तु जैसा कि श्रुति वाक्य है कि " नऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः" [2]

अर्थात जो कर्म करते करते थक नही जाता देवता उसकी सहायता नहीं करते, इस लिए आवश्यकता इसकी है कि रामायण के कथानक एवं तद्‌गत चरित्रों के आदर्श को समाज अपनाये और वर्तमान विसंगतियों से अपना त्राण करे । एतदर्थ रामायण के गम्भीर अध्ययन की महती उपयोगिता है एवंइसी अर्थ में उसकी आज भी परम उपादेयता तथा प्रासंगिकता है |

ख- महर्षि वाल्मीकि का संक्षिप्त इतिवृन्त (वाह्य तथा अन्तरंग साक्ष्य द्वारा)

1- जन्म :-

आदि कवि वाल्मीकि जन्म से किस जाति के थे ?इसका निर्णय करना अत्यन्त ही दुष्कर है क्यो कि इनके विषय में लिखित अलिखित रूप में विविध मतभेद पाये जाते है । यद्यपि संस्कृत साहित्य में वेदों से लेकर इतिहास पुराण आदि तक कवि के जन्म के विषय में कुछ न कुछ अवश्य कहा गया है । किन्तु उनमें एक रूपता के दर्शन नहीं होते । इसके अतिरिक्त एक कठिनाई और भी है । समाज में जहाँ एक ओर वाल्मीकि को रामायण निर्माता होने के कारण उच्च दृष्टि से देखा जाता है, वही दूसरी ओर समाज का एक विशेष वर्ग जिसकी गणना अनुसूचित जाति में की जाती है अपना पूर्वज मानता है। आज के युग में वाल्मीकि जयन्ती जिस व्यापक क्षेत्र में मनायी जानी चाहिए वैसा न होकर एक जाति विशेष की संकीर्ण परिधि में वह सिमिट कर रह गई है । काल के लम्बे अन्तराल ने आदिकवि और अद्यतन समाज के बीच में इतना लम्बा व्यवधान डाल दिया है जिसके कारण निश्चित रूप से ' इदमित्थं' कहना असम्भव सा हो गया है । .

यद्यपि इस सन्दर्भ में निश्चित रूप से कहना सम्भव नहीं है । इसलिए इस सम्बन्ध में जिस मान्यता की स्थापना का संकेत यहाँ किया जा रहा है। वह प्रमाणित भले ही न हो सके किन्तु सर्वथा

---

(1) कामा०-श्रद्धासर्ग / पृष्ठ -25

(2) प्र0 प्र0 (भाग-1) मंगलदेव शास्त्री (ऋ04 म0/अ0 33/सू0 11)

अप्रमाणिक नहीं कहा जा सकता । आदि कवि वाल्मीकि का काल तो परम प्राचीन है । आधुनिक काल के अनेक महापुरूषों के विषय में संकीर्ण मनो भावनायें अन्यान्य मतवाद जिनमें अपवाद की मात्रा ही प्रचुर मात्रा में होती है , प्रचार-प्रसार पाती रही है, और जन समाज में फूलती फलती रही हैं । विशेष करके इस प्रकार का संकट सबसे अधिक उनको झेलना पड़ा है जो पुरानी घिसी पिटी लीक से हट कर नयी दिशा खोजने के लिए चरण बढ़ाते रहे हैं । चाहे वह बुद्ध हों या महावीर कबीर हों या रैदास, दयानन्द हों या गान्धी कालान्तर में भले ही ऐसे महापुरूष अभिनन्द्य बने हों, किन्तु अपने जीवन-काल में उन्हें अपने प्रतिकूल वात्याचक्र से गुजरना पड़ा । ऐसी ही प्रतीति वाल्मीकि के जन्म और कर्म के विषय में सम्भावित है । क्यों कि इस महापुरूष ने भी समकालीन रूढ़ियों के विपरीत नवीन मार्ग का सर्जन किया था । वैदिक संस्कृत के विपरीत लौकिक संस्कृत भाषा को स्वीकार्य वैदिक इन्द्र , वरूण , मरूत, अग्नि आदि देवताओं की अपेक्षा एक महामानव के चरित्र को आधार बनाकर काव्य की सृष्टि करना आज भले ही उनको अभिनन्द्य एवं वरेण्य बना रहा हो किन्तु इस सम्भावना को पूर्ण रूप से अस्वीकृत करने का साहस नहीं होता कि उनको समकालीन सामाजिक कुण्ठा का लक्ष्य बनना पड़ा हो। इसके अतिरिक्त एक दूसरा तर्क भी पूर्ण अग्राह्य नहीं कहा जा सकता कि मर्यादा पुरूषोत्तम राम के पश्चाद्वर्ती अनन्य समर्थकों ने उनकी ईश्वरता की गरिमा के ख्यापन हेतु वाल्मीकि के जन्म और कर्म में मनचाहे आरोप आरोपित कर दिये हों किन्तु यह स्वतंत्र शोध का विषय है जो अधिक समय सापेक्ष है ।

वाल्मीकि रामायण के कर्ता तो हैं ही, इसके साथ ही एक मंत्रद्रष्टा ऋषि भी हैं । दोनों महापुरूष भिन्न भिन्न हैं या एक ही यह निर्णय करना अभी तक सम्भव नहीं हो सका । हो सकता है कि आरम्भ में महर्षि वाल्मीकि वैदिक परम्परा का अनुपालन करते हुए मंत्र द्रष्टा के रूप में प्रसिद्ध हुए हों किन्तु कालान्तर मे उनकी चेतना विद्रोह कर बैठी है । और वे यथार्थ भूमि मे उतर कर राम जैसे आदर्श पुरूष के चरित्रांकन में संलग्न हो गये हों । या यह भी हो सकता है कि वैदिक मंत्र द्रष्टा वाल्मीकि से राम कथा का आदि उद्गाता भिन्न हो । समय की लम्बी अवधि इस निर्णय में भी बाधक बन बैठी है ।

वाल्मीकि रामायण गीताप्रेस के संस्करण की भूमिका में श्री जानकी नाथ शर्मा ने इस सन्दर्भ में शोध पूर्ण सूचनाएँ प्रस्तुत की हैं जो महत्त्वपूर्ण हैं और कवि के जीवन के सम्बन्ध में प्रकाश डालती हैं उन्होने लिखा है ।

" महर्षि वाल्मीकि जी को कुछ लोग निम्न जाति का बतलाते हैं । पर वाल्मीकि रामायण 7/96/19, तथा अध्यात्मरामायण 7/7/31 में इन्होने स्वयं अपने को प्रचेता का पुत्र कहा है । "

" प्रचेतसोऽहंदशमः पुत्रोराघव नन्दन ।" मनुस्मति ।/35 में " प्रचेतसं वशिष्ठं च भृगुं नारदमेव च " प्रचेता को वशिष्ठ, नारद पुलस्त्य, कवि आदि का भाई लिखा है । स्कन्द पुराण के बैशाख माहात्म्य में इन्हें जन्मान्तर का व्याध बतलाया गया है । इससे सिद्ध है कि जन्मान्तर में ये व्याध थे । व्याध जन्म के पहले भी स्तम्भ नाम के श्री वत्स गोत्रीय ब्राह्मण थे । व्याध जन्म में शंख ऋषि के सत्संग से राम नाम के जप से ये दूसरे जन्म में अग्निशर्मा (मतान्तर से रत्नाकर हुए । वहाँ भी व्याधों के कुसंग से कुछ दिन प्राक्तन संस्कार वश व्याध-कर्म में लगे । फिर, सप्तर्षियों, के सत्संग से " मरा मरा " जप कर (बांबी पड़ने से (वाल्मीकि नाम से ख्यात हुए और वाल्मीकि रामायण की रचना की । " " कल्याण" सं0 स्कन्दपुराणांक पृ0 381/709, 1024(, बंगला के कृत्तिवास रामायण, मानस, आध्यात्मरामा0 2/6/64 से 92, आनन्द रामायण राज्यकाण्ड 14/21-49, भविष्यपुराण प्रतिसर्ग0 4/10 में भी यह कथा थोड़े हेर फेर से स्पष्ट है । गोस्वामी तुलसीदास जी ने वस्तुतः निराधार नही लिखा । अतएव इन्हे नीच जाति का मानना सर्वथा भ्रम मूलक है । " [1]

देश (स्थान (

आदि कवि ने अपने जन्म से किस देश को अलंकृत किया इस सम्बन्ध मे भी विद्वानों में ऐक मत्य नही है । स्वयं कवि की कृति के आधार पर भी उनके देश का एक स्थान निर्णय करना साध्य नहींहै क्योंकि उन्होने स्वयं अपनी लेखनी द्वारा एक स्थान का निर्देश नहीं किया है । देश और काल के निर्णय में यह कठिनाई आज कवि के सन्दर्भ में ही नहीं है, यह त्रुटि भारतीय परम्परा में चिरकाल से चली आई है । अद्यतन विचार धारा के अनुसार इसको हम त्रुटि ही कह सकते हैं कि भारतीय मनीषी प्रायः अपने और दूसरों के ऐतिहासिक जीवन के प्रति उदासीन रहे हैं । किन्तु बात ऐसी नहीं है सच तो यह है कि भारतीय इतिहास एवं उसकी सभ्यता संस्कृति इतनी अल्पकालिक नहीं है, जिसको लघुकाय देशकाल की सीमा में बांधा जा सकें । भारतीय इतिहास इतना प्राचीन है कि उसको देश और काल की परिधि में सीमित नहीं किया जा सकता । इसके अतिरिक्त एक दूसरा कारण भी रहा है, भारतीय मनीषी अपने वैयक्तिक जीवन से सदैव अनासक्त रहे हैं। उनको अपने व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व के ख्यापन की चिन्ता कभी नहीं रही है, प्रत्युत उसका लक्ष्य यह रहा है कि उसके द्वारा मानव मात्र का कल्याण कैसे हो । इसी दिशा में उनकी प्रवृत्ति रही है । भारतीय मनीषीवर्ग इससे पूर्ण अवगत था कि अनन्त काल के गर्भ में देश और काल के क्षुद्र खण्डों का अस्तित्व नगण्य है । इसलिए वह अपनी देन जो कि प्रायः चिरशाश्वत सिद्ध होती रही है , उसी ओर संलग्न रहा । महर्षि वाल्मीकि के सन्दर्भ में अधिकांश यहीबात सिद्ध होती है ।

(1(वा0 रा0 - भूमिका में संक्षिप्त जीवनी पृष्ठ-04

वाल्मीकि ने अपनी महनीय कृति रामायण में यह तो कही नहीं लिखा कि उनकी जन्मभूमि कहाँ थी ?किन्तु अपनी कर्म भूमि की ओर यत्र तत्र प्रसंगतः उल्लेख किया है । इनकी ख्याति एक महान कवि के रूप में सबसे अधिक है, इसकी चर्चा उन्होने स्वयं की है कि कवित्व का स्फुरण किस प्रकार एवं किस स्थान पर हुआ ? कवि ने इसकी चर्चा वाल्मीकि रामायण के आरम्भ में ही की है । जो इस प्रकार है ।

" स मुहूर्तः गते तस्मिन् देवलोकं मुनिस्तदा ।
जगाम तमसातीरं जाहव्यास्त्वविदूरतः ।।
स तु तीरं समासाद्य तमसाया मुनिस्तदा ।
शिष्यमाह स्थितं पार्श्वे दृष्ट्वा तीर्थमकर्दमम् ।।" [1]

उर्पयुन्क्त पद्यों से यह स्पष्ट होता है । कि कवि का स्थान तमसा नदी के किनारे पर रहा होगा जो गंगा नदी से बहुत दूर नहीं था । इसी प्रकार उनके दूसरे आश्रम का उल्लेख अयोध्या काण्ड में किया गया है । जो चित्रकूट के अंचल में है ।

" मुनयश्च महात्मानो वसन्त्यस्मिशिलोच्चये ।
अयं वासो भवेत् तात वयमत्र वसेमहि ।।
इति सीता च रामश्च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः ।
अभिगम्याश्रयं सर्वे वाल्मीकिमभिवादयन् ।। " [2]

इन पंन्क्तियों से लक्षित होता है कि वाल्मीकि आश्रम चित्रकूट में स्थित था । इसी भांति उनके तीसरे आश्रम की चर्चा सीता निर्वासन से सन्दर्भित उत्तर काण्ड में है ।

भगवन् साधु पश्येस्त्वं देवतामिव खाच्च्युताम् ।
नद्यास्तु तीरे भगवन् वरस्त्री कापि दुःखिता।। [3]

उपर्युन्क्त तीनों उद्धरणों से स्वयं वाल्मीकि के द्वारा समुपवर्णित विविध आश्रमों की सम्भावना का परिज्ञान होता है । इस सम्बन्ध में निवेद्य यह है कि सहस्त्रों वर्ष पूर्व जब आज की जैसी नागरिक

---

(1) वा0रा0 - बाल॰/ सर्ग0 2 / 3-4

(2) " " अयो0/सर्ग 56/ 3-4

(3) " " - उत्तर काण्ड /सर्ग 49/ 04

सभ्यता का घनत्व नही था अधिकांश भारतीय भू-भाग अरण्य बहुल था उस समय न केवल तपस्वियों के आश्रम सरिताओं और पर्वतों के सन्निकट होते थे अपितु ग्राम और यत्र तत्र नगर भी ऐसे ही स्थानों में वसते थे जहाँ जल और जीविका के साधन कंदमूल फल आदि या मृगया सुलभ रही हो ।

उपर्युक्त तीनों स्थलों के वाल्मीकि आश्रमों का वर्णन किसी न किसी नदी के किनारे पाते हैं जो उचित ही है । किन्तु स्थान विशेष का समुचित निर्धारण सम्प्रति मात्र अनुमान प्रमाणाश्रित है । इधर इतिहास एवं भूगोल वेत्ताओंने वाल्मीकि के स्थान निर्धारण के विषय में पर्याप्त प्रयास किया है । यह उत्तर भारत के विभिन्न अंचलों में किये गये हैं । इनमें तमसा तटवर्ती वाल्मीकि आश्रम इसलिए विवादास्पद हैं कि विद्वानों में भी तमसा नदी का निर्धारण नहीं हो पाया है । क्योंकि इस नाम की एक ही नदी नहीं है । गंगा तट वाला आश्रम भी मतभेद ग्रस्त है किन्तु अधिकांश विद्वान विठूर(कानपुर) वाले " स्थान को समर्थन देते हैं । चित्रकूट स्थित वाल्मीकि आश्रम विवादास्पद तो नहीं है, किन्तु अभीतक यह सिद्ध नही हो पाया है कि इलाहाबाद और चित्रकूट के मार्ग में लालापुर ग्राम के समीप वाला वाल्मीकि आश्रम वाल्मीकि कालीन है कि पश्चात्वर्ती कल्पना के आधार पर उसको मान्यता मिल गई है किन्तु पारम्परिक अनुश्रुति इस आश्रम को निर्वाधरूप से मान्यता देती है । लगता तो ऐसा है कि प्राचीनकालमें ऋषि मुनि जन किसी एक स्थान विशेष में अपने आपको न बांधकर यथावसर अपनी आवश्यकतानुसार यत्र तत्र आवास परिकल्पित कर लेते थे । इसलिए किसी एक ही वाल्मीकि आश्रम का प्रवल समर्थन उचित नहीं लगता ।

श्री जानकीनाथ शर्मा ने वाल्मीकि आश्रम के सन्दर्भ मे भी रामायण की भूमिका में महत्वपूर्ण सूचनाए संकलित की है जो इस प्रकार हैं ।

" बालकाण्ड 2/3,4 मे आयी तमसा नदी पर वाल्मीकि जी का आश्रम था । यह उस तमसा से सर्वथा भिन्न है जिसका उल्लेख गंगा के उत्तर तथा अयोध्या के दक्षिण में मिलता है । वाल्मीकि-आश्रम का उल्लेख 2/56/16 में भी आया है । पश्चिमोत्तर शाखीय रामायण के 2/114 में भी इस आश्रम का उल्लेख है । बी0एच0 वडेरने " कल्याण " रामायणांक के 496 पृष्ठ पर इसे प्रयाग से 20 मील दक्षिण लिखा है । सम्मेलन पत्रिका 43/2 के 133 पृष्ठ पर वाल्मीकि आश्रम प्रयाग झाँसी रोड और राजापुर मानिकपुर रोड के संगम पर स्थित बतलाया गया है । गोस्वामी तुलसीदास जी के मत से इनका आश्रम " वारिपुर दिगपुर बीच विलसति भूमि " था । मूल गोसाई चरितकार " दिगवारिपुरा बीच सीतामढ़ी " को वाल्मीकि आश्रम मानते हैं । ऋषि प्रायः घूमते रहते थे । श्री राम के वनवास के समय

वे चित्रकूट के समीप तथा राज्यारोहण काल में गंगतट पर विठूर रहते थे वाल्मीकि 7/66/1 तथा 7/71/14 से भी वाल्मीकि आश्रम विठूर में ही सिद्ध होता है । "[1]

सारांश यह है किस श्री शर्मा के उपर्युन्क्त उद्धृत अंश से भी हमारी ही मान्यता की पुष्टि होती है कि वाल्मीकि आश्रम कवि के जीवन में ही एक नहीं अनेक थे, जिनके आश्रम जनश्रुति के अनुसार वर्तमान हैं ।

काल :-

वाल्मीकि के समय निर्धारण में कुछ मौलिक कठिनाइयाँ हैं जिससे आज तक यह पुष्ट रूप में नहीं कहा जा सकता कि वाल्मीकि का जन्म कब हुआ । उनके काल निर्धारण में प्रमुख कठिनाइयाँ हैं:-

आदि:काव्य रामाण में काल का अनिर्देश पाश्चात्य विद्वानों द्वारा राम की ऐतिहासिकता पर सन्देह पुष्ट अन्तरंग और वाह्य प्रमाणों का अभाव भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने इस विचार पर पर्याप्त विचार-विनिमय किया है । उसका निष्कर्ष निम्नप्रकार है ।

बरदाचार्य- रामत्रेता मे हुये । त्रेतायुग ईसा से 8 लाख 67 हजार एक सौ वर्ष पूर्व समाप्त हुआ था । वाल्मीकि राम के समकालीन थे ।[2]

गोरोसियो - 1200ई0पू0[3]

श्लेगल 1100 ई0 पू0 [4]

कामिल वुल्के 600 ई0 पू0 [5]

मैकडानल 500 ई0 पू0, संशोधन 200 ई0 पू0 [6]

काशीप्रसाद जायसवाल 500 ई0 पू0 संशोधन 200 ई0 पू0 [7]

जयचन्द्र विद्यालंकार 500 ई0पू0 संशोधन 200 ई0पू0[8]

विन्टरनित्स 300 ई0 पू0 [9]

---

(1) वा0रा0की भूमिका पृष्ठ 07
(2) सं0सा0इ0 हिन्दी पृष्ठ 66-67 ।
(3) वा0रा0 भूमिका पृष्ठ-1
(4) जर्मन ओरिएण्टल जनरल , भाग 3 पृष्ठ 379 ।
(5) रामकथा - पृष्ठ-101 से आगे 1950
(6) स0सा0हि0 पृ0 306-309 ।
(7) जे0वी0ओ0-आर0एस0भाग-4, पृष्ठ-262
(8) भा0सं0रू0 भाग-1 पृष्ठ 432 , 433
(9) हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिट्0 भाग-1 पृष्ठ 501-517

उपर्युक्त विवेचन मे निम्न बातों पर विशेष ध्यान दिया गया है --

(क) बाल्मीकि रामायण मे बुद्ध का उल्लेख न होना तथा बौद्ध धर्म के प्रभाव का अभाव ।

(ख) वैदिक काल का परवर्ती होना ।

(ग) कौशल की राजधानी अयोध्या न कि साकेत ।

(घ) पाटलिपुत्र का उल्लेख न होना ।

(ङ) श्रावस्ती का राजधानी न होना ।

(च) विशाला और मिथिला का स्वतंत्र राज्य के रूप में उल्लेख ।

(छ) यूनानी प्रभाव का अभाव ।

(ज) मूल रामायण में राम को अवतार न मानना

(झ) 500 ई0पू0 की संस्कृति और सभ्यता से साम्य (संक्षेप में इन मन्तव्यो का प्रतिपादन इस प्रकार है ।

रामायण में वुद्ध एवं वौद्ध धर्म का अभाव -

मूल रामायण में बौद्ध धर्म का प्रभाव सर्वथा अदृष्ट है एक स्थान पर बुद्ध का नाम आया है । उन्हे चोर एवं नास्तिक कहा गया है ।[1] सभी विद्वान उसे प्रक्षिप्त मानते हैं ।श्लोक बुद्ध और बौद्ध धर्म की निन्दा के लिये वाद में जोड़ा गया है । विन्टरनित्स भी रामायण में बौद्ध धर्म के प्रभाव का सर्वथा अभाव मानते हैं ।

Whether traces of Buddhism can be provided in the Ramayana It can probably by answered with an absolute negative.[2]

उपर्युन्क्त बुद्ध विषयक श्लोक सभी प्रतियो में नही पाया जाता है । अतः मूल रामायण बुद्ध जन्म 563 ई0 पू0 निर्माण 483 ई0पू0)से पूर्ववर्ती है । अतः वाल्मीकि का काल इससें पूर्व का है ।

रामायण और महाभारत वैदिक काल के बाद की रचनायें हैं । अतः इनकी पूर्व सीमा वैदिक काल की समाप्ति है ।

---

(1) यथा हि चोरः स तथा हि वुद्धस्तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि । वा0रा0(अयो0/सर्ग।09/34

(2) भा0स0इ0 भाग-। पृष्ठ 509-510

रामायण में कोशल राज्य की राजधानी अयोध्या है ।[1] बौद्ध और जैन ग्रन्थों में अयोध्या का साकेत नाम से निर्देश है । अतः रामायण का रचना काल महावीर और बुद्ध से पूर्व वर्ती है । जो कि आदि कवि की रचना है ।

रामयण " बालकाण्ड 31 " में उल्लेख है कि राम गंगा और सोन के संगम के पास से जाते हैं । परन्तु दोनो के संगम पर स्थित पाटलिपुत्र (पटना) का उल्लेख नहीं है । बिम्बसार के पुत्र अजातशत्रु (ई0पू0 491 से 459 तक) ने " पाटलि " नामक ग्राम के चारों ओर सुरक्षार्थ एक परकोटा बनवाया था । वही ग्राम बाद में पाटलिपुत्र नगर हुआ । अतः रामायण की रचना 500 ई0 पू0 से पहले मानने के कारण वाल्मीकि का काल 500 ई0पू0 निश्चित होता है ।

श्रावस्ती - रामके पुत्र लव ने अपनी राजधानी श्रावस्ती में बनायी थी[2] बुद्ध कालीन राजा प्रसेनजित की राजधानी श्रावस्ती थी । रामायण में कोशल की राजधानी अयोध्या ही है । अतः रामायण का बुद्ध से पूर्व होना सिद्ध है । अतः रामायणकार वाल्मीकि का समय भी बुद्ध से पूर्व रहा ।

विशाला और मिथिला :- बुद्ध से पूर्व विशाला और मिथिला स्वतंत्र राज्य थे । बुद्ध के समय में दोनों एक होकर वैशाली राज्य हो गये थे । अंगुत्तर निकाय में वैशाली का उल्लेख न होकर विशाला और मिथिला का पृथक उल्लेख है ।[3] विशाल के राजा सुमति हैं । और मिथिला के सीरध्वजजनक[4] इससे सिद्ध होता है कि वाल्मीकि का काल बुद्ध से पूर्व है ।

यूनानी प्रभाव - रामायण में केवल दो स्थानों पर यवन शव्द का प्रयोग है । जिसके आधार पर डा0 वेबर ने रामायण पर यूनानी सभ्यता का प्रभाव सिद्ध करने का प्रयत्न किया है । डा0 याकोबी और डा0 विन्टरनित्स ने उपर्युक्त दोनों स्थलों को प्रक्षिप्त माना है । और रामायण पर यूनानी प्रभाव का खण्डन किया है ।[5] अत रामायण के आदि कवि वाल्मीकि का समय यूनानियों के भारत में आगमन 326 ई0पू0 के बहुत पूर्व मानना चाहिये ।

---

(1) अयोध्या नाम नगरी तत्रासी ल्लोक विश्रुता - वा0रा0-बाल0/सर्ग 5/6

(2) श्रावस्तीति पुरीरम्या श्राविता च लवस्य ह । वा0रा0उ0/108-5

(3) गंगाकूले निविष्टास्ते विशालां ददृशुः पुरिम् वा0रा0/बा0/सर्ग45/9

(4) वा0रा0- बाल /सर्ग-31/ 20

(5) विन्टरनित्स भा0सा0इ0 भाग-1 पृष्ठ 414-415

राम का अवतार -

मूल रामायण में राम को अवतार नहीं माना गया है । अवतार की भावना का उदय बुद्ध के बाद हुआ । इतिहास साक्षी है कि बुद्ध की प्रतिमाओं से ही प्रतिमा पूजन का विकास हुआ । फारसी का ' बुत ' (मूर्तिवाचक) शब्द ' बुद्ध ' शब्द का ही अपभ्रंश है, जो स्पष्ट रूप से सूचित करता है कि मूर्ति पूजा का सम्बन्ध "बुद्ध " (बुद्ध - मूर्ति-पूजा) से रहा । महा भाष्यकार पतंजलि (150 ई0 पू0) ने इसका इतिहास देते हुये बताया कि मौर्य राजाओं ने राजकीय आय बढ़ाने के लिये मूर्तिपूजा की योजना प्रचलित थी ।

सुन्दर मूर्तियों और नक्काशी की योजना भी उन्हीं की देन है । [1]

रामायण का अधिकांश चित्रण विशेषकर उसका सामाजिक चित्र 5वीं शताव्दी ई0पू0 का है । उसमें हमें 5वीं शताव्दी ई0पू0 के भारतीय समाज के आर्थिक राजनीतिक और धार्मिक जीवन का अच्छा चित्र मिलता है ।

विन्टरनित्स ने यह सिद्ध किया है वर्तमान परिवर्धित रामायण प्रथम या द्वितीय शताद्वी ई0 पू0 में इस रूप में आ चुकी थी रामायण में अपाणिनीय प्रयोगों से यह सिद्ध है कि यह कि वाल्मीकि का काल पाणिनि से पूर्व सिद्ध है ।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मूल रामायण की रचना 600 ई0पू0 के बाद की रचना नहीं है । इसके पूर्व की रचना मानना भावी प्रमाण की उपलब्धि पर निर्भर हैं । अतः उसके उद्‌गाता महर्षि वाल्मीकि का भी वही काल निर्धारण होता है । [2]

इस सन्दर्भ में कथ्य यह है कि वाल्मीकि रामायण या वाल्मीकि का समय निर्धारण जिन जिन विद्वानों ने किया है इससे यह तो प्रमाणित होता है कि वाल्मीकि ई0पू0 600 सें पश्चात् वर्ती नहीं हो सकते किन्तु उनका अस्तित्व वास्तव में कब रहा इससे यह सिद्धनहीं होता । वस्तुतस्तु वाल्मीकि का काल निर्धारण राम के काल निर्धारण के साथ जुड़ा हुआ है । क्योंकि रामायण से यह सिद्ध होता है कि वाल्मीकि रामायण के न केवल प्रणेता थें प्रत्युत रामायणी कथा के अन्यतम पात्रों में से एक थे । यदि हम रामायण के उत्तर काण्ड को प्रक्षिप्त भी मानें जैसा कि अनेक विद्वानों की मान्यता है कि रामायण की परिसमाप्ति युद्ध काण्ड से हो जाती है । जैसा कि देखा गया है । कि यह भारतीय परम्परा रही है कि किसी भी ग्रन्थ के अन्त में ही उसकी फलश्रुति कही जाती है । रामायण मे युद्ध काण्ड के अन्त में भी यही परम्परा दृष्ट है ।[3] तो भी इस मान्यता में कोई अन्तर नहीं आता कि वाल्मीकि राम के

---

(1) (क) मौय हिरण्यार्थिभिरर्चा: प्रकल्पिताः (महाभाव्य 5/3/99
(ख) मौर्या: विक्रेतुं प्रतिमाशिलावन्त: (नागेश उद्योत,5/3/99)पर
(2) स0सा0 समी0 इ0 -कपिलदेव द्विवेदी
(3) वा0रा0- युद्ध /सर्ग 128/107-125

समकालिक है । क्योंकि अयोध्या काण्ड में राम का वाल्मीकि के साथ साक्षात्कार चित्रकूट स्थल में समुपवर्णित है । जो प्रक्षिप्त नहीं कहा जा सकता इस मान्यता के अनुसार राम का काल निर्धारण जब तक नहीं हो जाता तब तक वाल्मीकि के काल निर्धारण में भी कोई निश्चित स्थापना स्थिर नहीं की जा सकती ।

यद्यपि समय समय पर प्रख्यात इतिहास विदों एवं पुरातत्व वेत्ताओं के द्वारा यह विवाद चलता रहा है । कि राम और कृष्ण में से कौन पूर्ववर्ती है यह भी एक विड़म्बना ही है कि राम की अपेक्षा कृष्ण की ऐतिहासिकता संसाधनों के द्वारा अधिक सिद्ध हुयी जिससे अनेक विद्वान कृष्ण की ऐतिहासिकता पर तो विश्वास जमाने लगे परन्तु राम के इतिहास पुरूष होने में विद्वानों के एक वर्ग में सन्देह उत्पन्न होता रहा । कुछ लोग तो राम को इतिहास पुरूष मानने से भी इन्कार कर बैठे ऐसे ही विद्वानों में अनेकों ने कृष्ण की अपेक्षा राम को पश्चात् वर्ती सिद्ध करने की चेष्टा की किन्तु अब ऐसी भ्रान्तियाँ निर्मूल हो चुकी हैं । वास्तविकता तो यह है जब कृष्ण को इतिहासिकता में ही इतिहासकारों के मन में सन्देह उपजता रहा तो राम तो उनसे प्राचीनतम हैं । आधुनिक इतिहासोचित संसाधनो के अभाव में राम की ऐतिहासिकता नकारी नहीं जा सकती अभी हाल ही में भूगर्भ शास्त्रियों द्वारा समुद्रमग्न द्वारका नगरी का पता लगाने के पश्चात् श्री कृष्ण के इतिहास पुरूष के समर्थन में बहुत बड़ा बल मिला है । जबकि श्रीमत् भागवत ने द्वारकापुरी के समुद्र में डूब जाने का वर्णन वहुत पहले ही कर दिया गया था ,किन्तु आज के इतिहासकार केवल पौराणिक कल्पना समझते थे । जो आज कल्पना न होकर यथार्थता में परिणत हो चुकी है ।

सारांश यह कि आज यह प्रवाद समाप्त हो चुका है कि राम कृष्ण के पश्चात्वर्ती है । फिर भी आज भी यह अनुसंधेय है कि राम का वास्तविक समय क्या है इसका निश्चय हो जाने के पश्चात् ही बाल्मीकि का समय निर्धारण सम्भव हो सकेगा ।

जीवनचर्या :-

वाल्मीकि के जीवन वृन्त के सम्बन्ध में भी अनेक ऐतिह्य एवं प्रवाद अनेक ग्रन्थों में उल्लिखित हैं, जिनमें अध्यात्म रामायण प्रमुख है । यद्यपि अध्यात्मरामायण के अतिरिक्त भी पुराणों में वाल्मीकि की जीवनचर्या का चित्रण मिलता है, पर कुल मिला कर वह एक जैसा है इसलिए यहाँ पर अध्यात्म रामायण के आधार पर ही उनके जीवन वृन्त को संकेतित किया जा रहा है ।

अध्यात्म रामायण में वनवास के समय राम सीता और लक्ष्मण के चित्रकूट पहुँचने पर वाल्मीकि उनके निवास की व्यवस्था करते हैं । इसी अवसर पर वार्तालाप के सम्पर्क में वह अपनी अतीत की जीवन गाथा प्रस्तुत करते हैं । जिसका सारांश यह है कि यद्यपि वाल्मीकि का जन्म ब्राह्मण कुल में

हुआ था किन्तु एक शूद्र के सम्पर्क में आकर वह पतन के मार्ग में प्रवृन्त हो गये जीविका के अभाव में कुटुम्ब के भरण पोषण हेतु उन्हें दस्यु वृन्त्ति अपनानी पड़ी किन्तु सप्तर्षियों के प्रसाद से वह "राम" शब्द के विपरीत " मरा " इस रूप में जपते हुए सर्व पाप विर्निमुक्त होकर वाल्मीकि मुनि के रूप में प्रख्यात हो गये ।[1]

इसी तरह की किंवदन्तियाँ वाल्मीकि के जीवन के साथ और भी जुड़ी है , किन्तु वाल्मीकि रामायण के अन्तः साक्ष्य से यह बात सिद्ध नहीं होती । सम्भवतः यह मान्यता सत्य के अधिक निकट हो सकती है, कि राम के महत्व ख्यापन के प्रयोजन से अध्यात्म रामायण या अन्य प्रतियो में उनको व्याध या दस्यु के रूप में कल्पित किया गया है । वाल्मीकि का जीवन एक कर्मठ तपस्वी का जीवन रहा है ।तभी वह इस सिद्धान्त की स्थापना कर सके कि कोई व्यक्ति अपने पुरूषार्थ के द्वारा ऊपर उठ सकता है । पूरी रामायण के किसी श्लोक में इस मान्यता का समर्थन प्राप्त नहीं हो सका कि कोई भी कर्म हीन व्यक्ति मात्र " राम राम " के जप से ऊँचा उठ सकता है । इसके विपरीत सर्वत्र अदम्य पुरूषार्थ का ही डिण्डिम घोष किया गया है ऊपर अहल्या वृन्तान्त की चर्चा की गई है । उस प्रसंग में भी वाल्मीकि तपश्चरण या कर्तव्य कर्म के महन्त्व को ही लक्षित करते हैं । जबकि परवर्ती कृतियो में व्यक्ति के पुरूषार्थ की उपेक्षाकर राम के ऐश्वर्य की स्थापना की गई है । यद्यपि पौराणिक परिकल्पना का अनुसरण कर रामायण के कुछ संस्करणों में कुछ श्लोक ऐसे भी समाविष्ट कर दिये गये हैं । जिनमें यह उल्लेख किया गया है कि राम के चरण स्पर्श से शिला रूपी अहल्या पुनः स्त्री रूप धारण कर पाप विर्निमुक्त हो गई किन्तु हमें यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं कि इस प्रकार के पद्य निश्चय ही प्रक्षिप्त है । क्यों कि वे वाल्मीकि सैद्धान्तिक सरणि का अनुसरण नहीं करते ।

सारांश यह कि वाल्मीकि का जीवन एक कर्मठ तपस्वी का जीवन है । वह ऐसे विरक्त जीवन को नहीं जीते जो समाज के सुख दुख से उदासीन हो किसी एकान्त स्थान में कर्महीन होकर जिया जाता है । उनके जीवन में चरित्र की ओजस्विता है । जिसका अंकन उन्होने अपनी कृति मे पदे पदे किया है । तभी तो वाल्मीकि सीता निर्वासन से क्षुभित होकर रामायण की रचना में प्रवृन्त होते है और उसका गायन लव और कुश के द्वारा इस तरह कराते हैं कि जिससे तत्कालीन जन समुदाय की चेतना राम के विपरीत और सीता के पक्ष में जागृत हो जाती है । परिणामतः राजाराम को वाल्मीकि को आमंत्रित करना पड़ता है । और उन्ही के परामर्श से राम अपनी निर्दोष पत्नी सीता को स्वीकार करने को तैयार हो जाते हैं । यह बात दूसरी है । कि भूमिजा सीता के नारीत्व ने इस असंगत राम की स्वीकारोक्ति को अस्वीकार कर दिया और भूमिसात् हो गईं ।

---

(1) अ0 रा0- अयो0/सर्ग 6 / 64-92

सारांश यह कि वाल्मीकि के वैयन्क्तिक जीवन की यथार्थ जानकारी आज हमको हो या न हो किन्तु असाधारण कर्मठ तपस्वी को पतित या व्याध सिद्ध करना अत्यन्त ही असंगत परिकल्पना है । रामायण के अन्तः साक्ष्य से यही सिद्ध होता है ।

सामाजिक स्थिति :-

भारतीय संस्कृति की यह विशेषता रही है कि उसमें जन जीवन के हेतु प्रवृन्ति तथा निवृन्ति उभय मार्ग स्वीकार किये जाने पर भी थोथी निवृन्ति की ओर उसका रूझान नही रहा । प्रवृन्ति मार्ग तो कर्मठ जीवन का मार्ग ही है । किन्तु भारतीय संस्कृति का अनुगामी निवृन्ति मार्ग का पथिक भी निवृन्ति के प्रति आसन्क्त नहीं रहा । भारतीय आध्यात्मिकता की तह में एक बहुत ही महन्त्व पूर्ण विचार धारा प्रवाहित है कि किसी के प्रति आसन्क्त न करो किन्तु अनासन्क्ति के प्रति भी आसन्क्त न करो । यही कारण है कि हमारा देश निवृन्ति और प्रवृन्ति दोनों को सिद्धान्ततः स्वीकार करके भी अपने कर्तव्य कर्म से विमुख कभी नहीं रहा । बात यह है कि चाहे बड़ा से बड़ा विद्वान मनीषी संत महात्मा हो किन्तु यदि वह समाज के अभ्युदय-श्रेयस में योगदान नहीं करता तो वह कहीं भी आदर का पात्र नही बनता यद्यपि प्राचीन काल से हमारी साधना पद्धति सामूहिक न होकर ऐकान्तिक तथा वैयन्क्तिक रही है,किन्तु कोई भी व्यन्क्ति समाज के हित चिन्तन से कभी भी पराङ्मुख नहीं रहा । उदाहरणार्थ वेद माता गायत्री के मंत्र की ही चर्चा की जा सकती है । अतिशय एकान्त स्थान में भी वैठ कर गायत्री जापक केवल अपनी ही बुद्धि को सत्प्रेरित होने की ईश्वर से कामना नही करता प्रत्युत वह संसार भर की बुद्धियों को सत्य की ओर प्रेरित करने की कामना करता है ।

अस्तु इस सन्दर्भ में जब हम आदिकवि की सामयिक स्थिति की ओर दृष्टि पात करते हैं तो वाल्मीकि व्यैन्क्तिकता के नहीं सामाजिकता के महान सूत्रधार थे ऐसा प्रतीत होता है अन्यथा एक विरन्क्त तपस्वी के हृदय में क्रौञ्च वध के कारूणिक दृश्य से उथल पुथल क्यों मचती । अथच निर्वासिता सीता के अरण्य रोदन से कवि का हृदय शोक क्षुभित क्यों हो जाता इससे यह सिद्ध होता है कि तत्कालीन तापस जीवन भी नितान्त विरन्क्त होकर भी सामाजिकता से मुँह नहीं मोड़ता था ।
सच तो यह है कि वाल्मीकि व्यन्क्तिगत रूप से विरन्क्त होते हुए सामाजिकता के प्रबल पक्षधर थे । अन्यथा उनके आश्रम में सीता का संरक्षण और उनके दोनों शिशु लव कुश का एक सद्गृहस्थ्यकी तरह पालन कैसे होता इतना ही नही वाल्मीकि का सम्बेदन शील हृदय यह परख रखता था जो राष्ट्र देश, जाति, या समाज नारी की अवमानना करता है उसको सुख और शान्ति के दर्शन नहीं हो सकते और वह समाज उत्तरोत्तर विघटित हो जाता है । सम्भवतः यही कारण है कि उन्होने अपनी अमूल्य कृति के

द्वारा सामाजिक स्थिति की नींव इतनी सुदृढ़ कर दी कि आज अनेक विसंगतियों के बावजूद वह अन्य देशों की अपेक्षा अपना अस्तित्व बनाये हुए है । यह मानवीय दुर्बलता ही कही जायेगी कि किसी भी समाज के उद्धारक को अपने समय में संघर्ष करना पड़ता है । क्यों कि रूढ़िवादी जनमत उसके विपरीत होता है किन्तु अन्ततः किसी भी क्रान्तिकारी महापुरूष का जीवन अभिनन्दनीय ही बन जाता है निश्चय ही वाल्मीकि ने अपनी अपूर्वकृति के द्वारा अपनी सामाजिक स्थिति तो सुदृढ़ की ही है , साथ ही भारतीय समाज को पूर्ण रूपेण संगठित किया है । जिसका प्रबल प्रमाण हमारे समाज की अक्षुण्य परम्परा है ।

कवित्व का उद्भव

वाल्मीकि रामायण के प्रणेता महर्षि वाल्मीकि के हृदय में कवित्व का उद्भव कैसे हुआ इसकी चर्चा कवि ने अपनी कृति में स्वयं की है । काव्य के निर्माण में मम्मट ने 3 हेतु बताये हैं ।

शक्ति र्निपुणता लोक शास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात् ।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुश्तदुद्भवे ।।[1]

तात्पर्य यह कि मम्मट ने काव्य के निर्माण में शक्ति निपुणता और अभ्यास इन तीनों को समुदितरूप में काव्य निर्माण का हेतु निर्देशित किया है ।

वाल्मीकि की मेधा में कवित्व शक्ति निश्चित ही निहित थी जो क्रौंचवध जनित करूणा से उद्बुद्ध हो गयी । इसकी चर्चा कवि ने रामायण के आरम्भ में स्वयं की है ।[2]

प्रतीत तो ऐसा होता है कि कवित्व शक्ति सबके लिए सहज नहीं जैसा कि कहा गया है ।

नरत्वं दुर्लभं लोके विद्यातत्र सुदुर्लभा ।
कवित्वं दुर्लभं लोके शक्तिश्तत्र सुदुर्लभः ।।[3]

मनुष्य के अन्तः करण में यह वृत्ति अन्तर्निहित रहती है किन्तु सबके नहीं, जिस व्यक्ति का हृदय जितना निर्मल और स्वच्छ होता है । उसी से कवित्व निर्झरणी फूटती है । प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में जन्म से ही मूलतः दो प्रकार के मनोभाव सन्निहित रहते हैं । सुखात्मक और

---

(1) का0 प्र0- प्र0 उल्लास, कारिका0 3
(2) वा0रा0 बाल0/सर्ग 2/18
(3) सा0द0 प्रथम परिच्छेद पृष्ठ 06

दुःखात्मक । इन दोनो में से दुःखात्मक मनोभाव ही प्रभावोत्पादक होता है । वाल्मीकि का दुःख इसका साक्षी है । जैसे वाल्मीकि यह संकेतित करते हैं कि जब किसी सहृदय के हृदय में दूसरे का दुख अपना दुःख बन जाता है । वहीं से कविता गंगोत्री का प्रादुर्भाव होता है । कविवर पंत ने इसी ओर संकेत किया है-

" वियोगी होगा पहला कवि आह से फूटा होगा गान ।
हृदय के कोने से चुप चाप बहीं होगी कविता अनजान ।।"[1]

रामकथा के आदि उद्गाता :-

रामकथा का आदि स्रोत कहाँ पर है । इसका लेखा जोखा करना मनुष्य की मनीषा के बाहर की बात है । फिर भी यथा श-क्ति विद्वानों के द्वारा समय समय पर एतदर्थ प्रयास होते रहे हैं । यद्यपि कुछ विद्वान रामकथा का स्रोत वेदों में देखते है । किन्तु जहाँ कहीं यदि रामकथा के कुछ पात्रों का उल्लेख पाया जाता है जैसे राम सीता, आदि । किन्तु इसका समर्थन सम्भव नहीं कि वह इन्हीं अर्थो में है । जो राम कथा के प्रमुख पात्र हैं । राम कथा के उद्भव तथा विकास को लेकर डा० फादर कामिल बुल्के ने शोध कार्य किया है । उन्होंने अपने शोध प्रबन्ध में यह सिद्ध किया है कि राम कथा के आदि उद्गाता वाल्मीकि ऋषि हैं । बौद्ध ग्रन्थों कि तथा महाभारत में जो राम कथा चार्चित है वह वाल्मीकि रामायण की पश्चात्वर्ती है वह अनेक तर्को के द्वारा कामिल वुल्के साहब ने सिद्ध किया है । दिनकर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक संस्कृति के चार अध्याय में यह सम्भावना व्य-क्त की है कि वाल्मीकि रामायण लिखे जाने के पूर्व ही अलिखित रूप में रामकथा हमारे देश के अनेक अंचलों में विद्यमान थी, जिसका गायन चारण और भाट करते रहते होंगे वाल्मीकि की तलस्पशनी मेघा ने राम कथा को पहचाना और उसको काव्य के रूप में ढाला दिनकर का मत फादर कामिल वुल्के के मत का ही समर्थन करता है । आज भी देश के कोने कोने में ही नहीं,विश्व के अनेक भूभागों में राम की कथा फैली हुई, जो इस मत का समर्थन करती है कि लोक मानस जिस कथा से प्रभावित होता है । उसका गायन पीढ़ी दर पीढ़ी करता है । उसके लिखित या अलिखित होने से कोई अन्तर नहीं पड़ता । कुछ भी हो यह निश्चित है । कि राम कथा के आदिउद्गाता महर्षि वाल्मीकि ही हैं। क्योंकि इससे प्राचीन किसी भाषा में लिखित कोई राम कथा उपलब्ध नहीं होती ।

---

(1) पल्लव - सुमित्रा नन्दन पंत

द्वितीय अध्याय

रामायण के अध्ययन के विविध आयाम

द्वितीय अध्याय

रामायण के अध्ययन के विविध आयाम

आदि कवि द्वारा रचित रामायण एक ऐसा व्यापक एवं शाश्वत् ग्रन्थ है जिसके अध्ययन के अनेक आयाम हो सकते हैं । विशेष रूप से उनके अध्ययन के प्रकार निम्नलिखित हो सकते हैं । यहाँ पर उन्हीं के सन्दर्भ में संक्षेप से संकेतित किया गया है । प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में रामायण के अध्ययन प्रकारों में बिम्ब-योजना को साधन बनाया गया है । अध्ययन के अन्य प्रकारों की अपेक्षा इस विधा में क्या विशेषता हैं इसके निर्देशित करने के पूर्व अध्ययन के अन्य प्रकारों का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत है ।

(क) धार्मिक

(ख) सांस्कृतिक

(ग) ऐतिहासिक

(घ) सामाजिक

(ङ) साहित्यिक- भाषा, छन्द, अलंकार , रीति, गुण, रस, ध्वनि औचित्य, बिम्ब ।

(क) **धार्मिक आयाम -**

धर्म को आधार बनाकर जो अध्ययन किया जाता है उसको धार्मिक अध्ययन कहते हैं । संस्कृत साहित्य में रामायण और महाभारत दो अमरग्रन्थ हैं । प्रथम को हम कुटुम्ब का काव्य कह सकते हैं तो दूसरे को समाज का, रामायण में यद्यपि इन कथाओं का समावेश है नर, वानर और राक्षस जिनके सम्बन्ध में दिनकर ने संस्कृति के चार अध्ययन में प्रतिपादित किया है कि रामायण में तीन संस्कृतियों का समावेश है।[1]

नर संस्कृति , वानर संस्कृति एवं राक्षस संस्कृति । नर (मानवीय) संस्कृति का प्रतिनिधित्व अयोध्या करती है । वानर संस्कृति का किष्किन्धा एवं राक्षस संस्कृति लङ्का से प्रसरित होती है । इन तीन भिन्न भिन्न संस्कृतियों का गुम्फन रामायण में इस प्रकार हुआ है कि वह तीनों एक रस हो गये हैं।

---

(1) संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर

और रामकथा की पहले से दोनो कथायें अधिगृहीत हो जाती है । या यों कहा जाय कि राम कथा में यह दोनों कथाएँ अन्तर्भूत हो गई हैं।

जैसा कि ऊपर निर्देशित किया गया है कि रामायण कौटुम्बिक काव्य है किन्तु इस कौटुम्बिक कथानक के माध्यम से कवि ने जिन नैतिक तत्वों या मानव के उदात्त चरित्रों को रूपायित किया है, वह अद्भुत तथा अपूर्व था । यहाँ पर हम रामायण के धार्मिक अध्ययन के सन्दर्भ में यह कहना चाहते हैं कि भगवान व्यास ने जिस तत्व को धर्म के नाम से अभिहित किया है, कालिदास ने जिसको शील का नाम दिया है, महर्षिवाल्मीकि उसी को चरित्र कहते हैं । उनको अपनी रचना करने का प्रयोजन ही एक मात्र था, मानवीय चरित्र की उदान्तता का अंकन । जैसा कि कवि ने रामायण की रचना की अभीप्सा में देवर्षि नारद से स्वयं जिज्ञासा प्रकट की थी ।

"चारित्रेण च कोयुक्तः"[1] इति । कहने का तात्पर्य यह है कि रामायण के अध्ययन की एक विधा उसके चरित्रगत विशेषताओं के विश्लेषण के रूप में हो सकती है । यहाँ पर यह लक्ष्य कर देना आवश्यक है कि यद्यपि कालान्तर में वाल्मीकि के महापुरूष राम परब्रह्म परमेश्वर के रूप में लोक मानस में घर कर गये और कवि की रामायण धार्मिक पूजा पाठ का ग्रन्थ बन गया । किन्तु हमारा यहाँ धार्मिक अध्ययन से तात्पर्य यह नहीं है कि रामायण का धार्मिक अनुष्ठान के रूप में अध्ययन का क्या प्रकार है । क्यो कि रामायण के अनुशीलन में इस आयाम की कोई आवश्यकता नहीं है ।

यद्यपि उपर्युक्त विधा के अनुसार रामायण का अनुशीलन किया जा सकता है, किन्तु यह प्रकार अध्ययन का एक अंग तो हो सकता है किन्तु सर्वाङ्गपूर्ण नहीं ।

(ख) सांस्कृतिक आयाम -

यद्यपि आज के युग में संस्कृति शब्द विवादास्पद हो गया है । एवं उसकी व्यापकता देश जाति धर्म आदि विभेदों के कारण खण्डशः विभक्त होती जा रही है । संस्कृति की परिभाषा में इसी लिये विद्वानों में मतभेद उभरते रहते हैं । किन्तु इस सन्दर्भ में डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के द्वारा निर्देशित संस्कृति की परिभाषा अधिक युक्ति युक्त तथा हृद्य कही जा सकती है ।उन्होने एक जगह कहा

---

(1) बा०रा०, बा०/सर्ग 1/3

है - कि मानव ने अपने आन्तरिक विकासके लिए जो कुछ भी शोभन प्रयास प्रस्तुत किये हैं उसी को हमसंस्कृति कह सकते हैं । आज कलतो पाश्चात्य संस्कृति पौरस्त्य संस्कृति आदि के रूप में मानवीय संस्कृति अनेक रूपा दृष्टिगोचरित होती है । किन्तु एक वह भी समय था कि जब पूरे विश्व में भारत अपनी सांस्कृतिक चेतना की रश्मियाँ विकीर्ण करता था , जिसको मानवीय संस्कृति कहा जाता था और उसके जनक थे सूर्यवंश के महान सम्राट् मनु । मनुस्मृति में इसका संकेत प्रस्तुत अनुष्टुप् में मिलता है ।

" एतद् देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः।
स्वं स्वं प्रसूतिम् शिक्षेरन् प्रथिव्याम् सर्व मानवाः ।।" 1

इसी मानवीय संस्कृति का व्याख्यान बाल्मीकीय रामायण जो राम कथा के माध्यम से रूपायित की गयी है । रामायण के अध्ययन का इस प्रकार मानवीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में रामायण का अध्ययन सांस्कृतिक अध्ययन कहा जा सकता है किन्तु इस अध्ययन में उसकी साहित्यिक विशेषतायें गौण पड़ जाती हैं ।

(ग) ऐतिहासिक आयाम -

कहा गया है कि- " इतिहास पुराणाभ्याम् वेदं समुपवृंहयेत् ।" अर्थात वेद(ज्ञान) की उपलब्धि के लिए इतिहास और पुराण यह दोनों आँखों का काम करते हैं । सौभाग्य से वाल्मीकीयरामायण आदि काव्य ही नहीं वह इतिहास का अनुन्तम ग्रन्थ भी है । इति+ह+आस अर्थात अतीत का इतिवृन्त ही तो इतिहास है किन्तु इतिहास मात्र सन् संवतों एवं नामों की तालिका का नाम नहीं प्रत्युत इतिहास का अर्थ है तत्कालीन मानवीय सभ्यता संस्कृति आदि का अंकन । यद्यपि इतिहास अतीत की वस्तु है किन्तु किसी भी व्यन्क्ति जाति समाज या राष्ट्र के उत्थान के लिए यह अतीत का इतिवृन्त भविष्य के निर्माण में योगदान करता है । क्योंकि इतिहास से हम अपनी विशेषताओं या त्रुटियों से अवगत होते हैं । फलतः इसी परिप्रेक्ष्य में वर्तमान में अपने क्रिया कलाप के द्वारा भविष्य को शोभन बनाने की चेष्टा करते हैं ।

यह कहने में हमें तनिक भी संकोच नहीं कि इस अर्थ में रामायण की मूल्यवत्ता अक्षुण्ण है भारतीय इतिहास में सूर्य और चन्द्रवंश अतिशय महन्त्व पूर्ण हैं। जिनमें ऐसे ऐसे महापुरूष अवतरित हुये हैं

---

(1) मनुस्मृति - अध्याय 2, श्लोक 20.

जिनके जीवनवृतो के अध्ययन से मानवीय चेतना का विकाश होता रहा है और आज भी हो रहा है । रामायण के पात्र या कथानक प्राचीनतम भले ही हों किन्तु उनको कल्पित कहना बुद्धि के दिवालियापन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ।

यह तो हुई राम कथा की ऐतिहासिकता की बात, इसके अतिरिक्त भी रामायण में ढेर सारी ऐसी अन्तः कथाएँ है जो इतिहास की बहुमूल्य वस्तु हैं । इस दृष्टि से रामायण का अध्ययन ऐतिहासिक कहा जा सकता है । किन्तु ऐसा अध्ययन इतिहास के शोधार्थी के लिए ही उपयुक्त है ।

(घ) सामाजिक आयाम :

यद्यपि भारतीय मनीषा साधना की दृष्टि से ऐकान्तिक रही है जो उचित भी है । प्रत्येक मानव का वाह्य आकार प्रकार ही नहीं उसकी अन्तश्चेतना भी विभिन्न प्रकार की होती है इस लिए साधना की दृष्टि से स्वाधीन चिन्तन वैयक्तिक ही हो सकता है । आजकल पाश्चात्य प्रभाव के अनुकरण से जो सामूहिक साधना की बाढ़ आ गयी है उसमें वास्तविकता कम दिखावे और दम्भ की मात्रा ही अधिक है । यही कारण है कि हमारे ऋषियों ने वैयक्तिक जीवन के विकाश हेतु चार आश्रमों की परिकल्पना की थी, किन्तु इसके साथ ही सामाजिक व्यवस्था के सन्तुलन हेतु ऋषियों द्वारा वर्ण व्यवस्था की प्रतिष्ठापना की गयी थी । यद्यपि आज उपर्युक्त दोनों व्यवस्थायें विकृत एवं जीर्ण शीर्ण अवस्था में है , किन्तु सिद्धान्ततः उनकी उपयोगिता नकारी नहीं जा सकती । आज संसार का ऐसा कोई भू-भाग नहीं जो भारतीय मस्तिष्क की इस परिकल्पना का उपयोग न कर रहा हो । इन दोनों के आकार-प्रकार या संज्ञायें भले ही बदल गयी हों किन्तु वैयक्तिक विकास तथा सामाजिक सन्तुलन का आधार उपर्युक्त दोनों व्यवस्थाएँ हैं ।

आज विश्व के कोने कोने में समाजवाद की ध्वनि ही गुंजरित हो रही है किन्तु विडम्बना तो यह है कि आज की जैसी व्यक्तिवादी विचार धारा अतीत में कभी नही रही आज प्रत्येक व्यक्ति जाति, राष्ट्र, समाजवाद की आवाज तो बुलन्द करता है किन्तु भीतर से वह घोर व्यक्तिवादी है ।

यद्यपि परःशत समाजशास्त्री इस विसंगति के दूरीकरण हेतु (निवारणार्थ) परस्पर विचार विमर्श एवं तात्विक अनुसंधान करते रहते हैं किन्तु समस्या का समाधान हस्तगत नहीं हो पा रहा है।

इस संदर्भ में कथ्य यह है कि जिस विषम समस्या के समाधान हेतु मनीषीवर्ग चिन्तित है उसका निदान हमारे पूर्वजों ने पहले ही खोज लिया था भारतीय संस्कृति के अनुसार व्यन्ति की जीवनचर्या की तीन कक्षायें हैं । वैयन्तिक पारिवारिक और सामाजिक । आज की बिडम्बना यह है कि विश्व में पारिवारिक भावना बड़ी द्रुतगति से टूट रही है । सामाजिकता की बात तो की जाती है, किन्तु प्रत्येक स्वार्थान्ध व्यन्ति या व्यन्तियों समूह (जिसको समाज कहना समाज शब्द की अपव्याख्या है) अलगाव पार्थक्य क्षेत्रीयता जातीयता साम्प्रदायिकता आदि के विषाक्त वातावरण को फैला रहा है । परिणामतः औरों को सुख दे ही नही पा रहा , अपनी भी सुख शान्ति खो रहा है । इस सन्दर्भ में एक पाश्चात्य विचारक की खेदोन्ति हमें याद आती है जिसका भावानुवाद यह है कि आज के युग में (हाउस (House तो बहुत है किन्तु home समाप्त होते जा रहे हैं । भारत जिसने इस पद्धतिका अविष्कार किया था वहाँ भी पारिवारिकता की जड़ें क्षीण होती चली जा रही हैं । संयुन्त परिवार तो अब नाम शेष रह गये हैं । एक समय था जब प्रत्येक व्यक्ति का प्रशिक्षण पारिवारिक जीवन में होता था परिवार की पाठशाला में उत्तीर्ण व्यन्ति सामाजिक व्यवस्था के व्यवस्थापन में अग्रसर होता था । सच तो यह है कि परिवार समाज का एक लघु संस्करण ही है । जो व्यन्ति परिवार का संचालन एवं संगोपन नहीं कर सकता वह समाज का क्या कर सकेगा । किन्तु आज यही हो रहा है । परिणामतः चतुर्दिक विघटन, अशान्ति एवं आतंक का कुहासा छाया हुआ है । जैसा कि हमने ऊपर संकेत किया है । कि वाल्मीकीय रामायण कौटुम्बिक काव्य है । रामायण एक ऐसी शाला हैं जिसमें पुत्र पिता भ्राता,पत्नी, माता, राजा , भृत्य, शत्रु, मित्र आदि मानव के समग्र जीवनोपयोगी शिक्षाओं का विनियोजन वर्तमान है । इस अर्थ में सामाजिक व्यवस्था के व्यवस्थापन में की रामायण का योगदान भी बहुमूल्य है । इस अध्ययन को सामाजिक अध्ययन कहा जा सकता है । इतना ही नहीं शोधार्थी रामायण कालीन सामाजिक व्यवस्था क्या थी ? इस दृष्टि से भी रामायण का अध्ययन कर सकता है।

(ड) साहित्यिक आयाम -

रामायण ' इतिहास ' है वह समाज के लघुरूप कुटुम्ब के प्रशिक्षण का एक अद्भुत साधन है । धार्मिक एवं सांस्कृतिक धरोहर है । तथापि वह एक उत्कृष्ट काव्य ग्रन्थ भी है । जो आदिकाव्य होकर भी काव्य के समस्त तन्त्वों से भरपूर है यह एक आश्चर्य ही कहा जायेगा । कि वाल्मीकि की तलस्पर्शिनी प्रज्ञा का आयाम इतना विस्तृत एवं विशाल था कि उसमें समूची काव्यगत विशेषतायें जैसे स्वतः ही वहाँ आकर समाहित हो गई हों । वाल्मीकि की यह अद्भुत कृति आगे के कवियों के लिए

मार्ग दर्शक बन गयी और आज भी वह अपनी उपयोगिता ज्यों की त्यों अक्षुण्ण रखे हुए है । चाहे कालिदास हों या भवभूति भास हों या कुमारदास सभी का उपजीव्य वाल्मीकीय रामायण है । परवर्ती कवियों ने मुक्तकंठ से रामायण का ऋण स्वीकार किया है । रामायण की सबसे बड़ी विशेषता उसकी मौलिकता है । अन्य कवियों ने तो रामायण से प्रेरणा प्राप्त की इसलिए उनकी रचनाओं में रामायण की छाप है । किन्तु वाल्मीकीय रामायण अक्षर अक्षर मौलिक है । क्यो कि उनकी कविता स्रोतस्विनी स्वतः उद्भूत है पर प्रेरित नहीं ।

यों तो जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है । रामायण के अध्ययन के अनेक प्रकार हो सकते हैं, किन्तु इसका साहित्यिक अध्ययन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है । साहित्य शब्द का अर्थ ही होता है, सहित का भाव । सहितस्य भावः साहित्यम् । काव्य अपने आप में स्वतः कान्ता सम्मित उपदेश होता है जिसका जन जीवन पर निष्कारण प्रभाव पड़ता है । यदि काव्य वास्तव में काव्य है तो उसकी प्रत्येक पंक्ति ही नहीं एक एक शब्द हृदय को छूता है और अन्तःकरण का परिष्कार करता है । किसी भी काव्य के साहित्यिक अध्ययन के निम्नलिखित तत्व सहायक होते हैं जिससे काव्य के रस चर्वण में सौकर्य होता है । वे तत्त्व हैं-

भाषा , छन्द , अलंकार , रीति , गुण , रस , ध्वनि , औचित्य बिम्ब । इनमें सभी तत्त्व काव्य के विश्लेषण में एवं उसको हृद्गत करने में बहुत सहायक होते है किन्तु उनमें भी काव्यगत बिम्बों का अध्ययन सर्वाधिक प्रभावी होता है ।

[2] बिम्ब परक अध्ययन की उपयोगिता

अनुभूति और अभिव्यक्ति ही काव्य की प्रमुख सम्पदा है । अनुभूति की रस मयता अभिव्यक्ति की रमणीयता के बिना सम्भव नही हो पाती । इसीलिये, दोनो का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। कवि, जब अपने विविध अन्तः अनुभवों को वहिर्गत करना चाहता है, अदृश्य से दृश्य में अवतरित होने की समीहा करता है । अथवा अमूर्त से मूर्त में रूपान्तरित होने को व्याकुल हो उठता है , तब प्रयोग की उस बेला में अनायास ही उसकी कल्पना, बिम्बों का भव्य वितान खड़ा करती है । अतः बिम्ब काव्याभिव्यक्ति के अनिवार्य उपादान हैं ।

पाश्चात्य काव्य जगत में बिम्ब को काव्यालोचन का महत्वपूर्ण मापदण्ड माना गया है । परिणामतः वहाँ इसकी सूक्ष्म सैद्धान्तिक मीमांसा भी होती है । तथा कवि-कृतियों का बिम्ब विधान की दृष्टि से पर्याप्त अध्ययन भी मिलता है । पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से अपने देश कों भी हिन्दी जगत में कवियों की रचनाओं का अध्ययन इस दृष्टि से किया जाने लगा है । पर अभी तक संस्कृत के कवियों का स्वतंत्र अध्ययन इस दिशा में प्रवृन्त नहीं हुआ है । प्रस्तुतः प्रत्येक देश व जाति की अपनी एक साहित्यिक विशेषता होती है । काव्य के मूलभूत तत्वों में अन्तर न होते हुए भी सृजन-प्रक्रिया और समीक्षण - सरणि में व्यवहारिक भेद तो होता ही है । इसलिये यह कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतीय-चेतना-प्रसूता समीक्षा-पद्धति संस्कृत-कवि -कृतियों के मूल्यांकन में निश्चय ही अधिक अनुकूल उपयुन्क्त एवं उपयोगी है । तथापि , निरन्तर बहुमुखी विकासमान आधुनिक विशाल साहित्य के परिप्रेक्ष्य में उनकी उत्कृष्ट काव्य कला को समुपस्थित करने की दृष्टि से पाश्चात्य समीक्षा शास्त्र की प्रमुख स्वीकृति बिम्ब परक अध्ययन के आधार पर संस्कृत कवियों की रचनाओं की गवेषणा भी कम महन्त्व पूर्ण नहीं हैं ।

बाल्मीकि संस्कृत साहित्य के शीर्षस्थ कलाकार हैं । महाकाव्यकार आदिकवि वाल्मीकि को प्रथम स्थान पर गिना जाता है । संस्कृत का प्रत्येक अध्येता उन्हें पढ़कर ही अपने को कृतार्थ मानता है । और समीक्षक उस पर दो शब्द लिख कर तृप्ति का अनुभव करता है । कवि की इन उपयोगिताओं के मूल में उसकी बिम्ब-विधायिनी प्रतिभा ही हेतु है । कवि की इस बैम्बिक कला से प्रभावित होकर विद्वानों ने समय समय पर बहुत कुछ लिखा है। बिम्ब परक अध्ययन अपनी चित्रात्मक अभिव्यन्क्ति के कारण माध्यम के रूप में ही प्रशस्त है । बिम्ब सोपान के माध्यम से कवि के तात्पर्यार्थ तक पहुँचने में सुकरता होती है और यह तात्पर्यार्थ या बिम्ब से विद्योतित सूक्ष्म अर्थच्छबि की व्यंजना का प्रकाश ही वास्तव में , काव्य का सर्वस्व है । बिम्ब एक प्रयोग है, काव्यात्मक अभिव्यन्क्ति का माध्यम है । इसी कारण बिम्ब परक अध्ययन की उपयोगिता सिद्ध होती है ।

बिम्ब परक अध्ययन अपनी काव्य बिम्ब की विशेषताओं के कारण अपनी उपयोगिता की उत्तरोत्तर बृद्धि करता है । निम्न बिन्दुओं के अनुसार जिसका स्पष्टीकरण सम्भव है ।

1- सन्तुलित शब्दचित्र.

2- इन्द्रिय संवेदन तथा हृदय संवाद.

3- मानवीय संवेग

(4) बुद्धितत्व और भावतत्त्व

(5) संप्रेषणीयता

(6) कवि-तात्पर्य का समग्रता में प्रकाशन

बिम्ब-स्वरूप के अधिक स्पष्टीकरण के लिए हम इन आधारभूत तथ्यों में से एक-एक पर पृथक्-पृथक विचार कर सकते हैं :-

1- शब्द-चित्र -

शब्द -चित्र से आशय भाषा की चित्रधर्मिता से है जो सम मूर्तीकरण का प्रमुख उपादान है । बिम्ब का यह अविच्छेदक धर्म है ।[1] मात्र भाव या विचार तो मनोविज्ञान के विषय हैं । उनका काव्य में तभी महत्व है जब,वे शब्दों में रूपायित हों । यह रूपायन या सम्मूर्तन चित्रात्मक शब्द-प्रयोगों से ही सम्भव है । यह प्रतिक्रियात्मक न होकर मानस प्रतिभा का पुनरूत्थापन होता है । सौन्दर्यानुसन्धायिनी प्रतिभावशः कलाकार की मानस-छबि को रूप प्राप्त होता है ,[2] जो प्रेक्षक के लिए वस्तु के सौन्दर्य से न्यून नहीं ठहरता अपितु, विलक्षणता के कारण तथ्यात्मक वस्तु की अपेक्षा अधिक आह्लादक होता है ।[3] भाषा की इसी चित्रधर्मिता के कारण चित्रणकला या बिम्ब-विधान चित्रकला की अपेक्षा अधिक व्यापक है ।[4]

2- ऐन्द्रिय संवेदन-

यह चित्रात्मक पद-विन्यास की सम्मूर्तन प्रक्रिया का स्वाभाविक परिणाम है । इसलिए इन्द्रिय-संवेदना के संस्पर्श से समन्वित शब्द-चित्र ही काव्यात्मक बिम्ब है । कलाकार को इस विशाल भू-संवदेना के संस्पर्श से समन्वित शब्द-चित्र ही काव्यात्मक बिम्ब है । कलाकार इस विशाल भू-मण्डल पर विस्तीर्ण विविध पदार्थो के रूप -रसादि गुणों को अपनी पंच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष करता है ।

---

(1) 'It(the poetic image) is Picture made out of words'. -पो0इ0,पृ0

(2) हि0सा0को0, प्र0भा0, पृ0 514

(3) Like a green field reflected in a calm and perfectly transparent lake, the image is distinguished from the reality only by its greater softness and lusture.'
--बायो प्रो0, लिट्0 वा0 II, चै0 XXII, पृ0 121

(4) हि0 छा0 क0 वि0 , पृ0 180

पदार्थों के साथ कवि का यह ऐन्द्रिय सन्निकर्ष उसके मन में तदनुरूप ऐन्द्रिय संवेदनायें उत्पन्न करता है । ये संवेदनात्मक संस्कार-सर्जना के क्षणों में ऐन्द्रिय बिम्बों के रूप मे कविता में प्रस्फुटित हो पड़ते हैं । बिम्ब का यही प्रधान वैशिष्ट्य है जो उसे " चित्र " से अलग करके महत्त्व प्रदान करता है । बिम्ब पच ज्ञानेन्द्रिय- जन्य समस्त सवेदनों से युक्त होता है, जबकि चित्र में मात्र चाक्षुष धर्म ही पाया जाता है । इस प्रकार बिम्ब-विधान कविता में संवेदनात्मक अभिव्यक्ति है ।[1] इस सम्बन्ध मे आइ० ए० रिचर्ड्स के वाक्यों का उल्लेख यहाँ प्रासंगिक होगा ।

'Too much importance has always been attached to the sensory qualities of images. What gives an image efficacy is less its vividness as an image than its character as a mental event peculiarly connected with sensation.'[2]

3- संवेग या रागात्मकता-

ऐन्द्रिय बोधात्मक गुण-संवलित काव्यांश भी रागतत्त्व या भावनात्मक स्निग्धता के अभाव में बिम्ब नहीं कहा जा सकता । बिम्ब का मूल्य उसकी संवेगात्मक संदीप्ति में है । कभी-कभी समाचार पत्रों की इतिवृत्तात्मक भाषा या विज्ञापन आदि भी अपनी शाब्दिक चित्रधर्मता के कारण अति आकर्षक प्रतीत होते हैं किन्तु, संवेग के अभाव में उन्हें साहित्यिक बिम्ब को कोटि में परिगणित नहीं किया जा सकता । अपने संवेगात्मक वैशिष्ट्य के ही कारण बिम्ब कवि के व्यक्तित्व को प्रकाशित करने की क्षमता से संयुक्त होते हैं , अन्यथा वे कविगत वैशिष्ट्य को प्रतिपादित नहीं कर पाते । उन्हें मौलिक प्रतिभा का प्रमाण तभी माना जा सकता है जब वे कवि की सशक्त वासना या संवेग से समन्वित हों।[3]

---

(1) 'To psychologists and to many critics imagery in poetry is the expression of sense-exprience channeled through sight, hearing, smell, touch and taste through these channels impressed upon the mind and setforth inverse in such fashion as to recall as vlvidly and faithfully as possible the original sensations.' इ०की०शै०, पृ०-3

(2) प्रि०लि०क्रि०,पृ० 119

(3) ' Images, however, beautiful...do not of themselves characterise the poet. They become proofs of original genius only as for as they modified by predominant passion or by associated thoughts or images awakened by that passion.' कॉलरिज, पो०इ०, पृ० 19.

4- **बौद्धिकता** -

बिम्बवादियों का लक्ष्य था कविता में एक-एक बारीकी को यथातथ्य उतारना । इसलिए स्वाभाविक था कि दृश्यात्मकता को सर्वाधिक महत्त्व मिलता क्योंकि, जीवन में चाक्षुष अनुभूति का प्रभाव ही अधिक रहता है । किन्तु तथ्यात्मक मूर्ति-विधान को जिस मूल प्रेरणा से बिम्बवाद अपने प्रारम्भिक दिनों में अनुप्राणित था, कालान्तर में उसका निर्वाह न हो सका और स्थूलता ने सूक्ष्मता को और उन्मुख कलाकार की सहज सौन्दर्येषणा के फलस्वरूप रहस्य-विवृति के निमित्त ऊहात्मक आनन्दोल्लास ने काव्य-बिम्ब में बौद्धिकता को प्रतिष्ठा दे दी । बुद्धि-विलास बढ़ा तो अलंकार-भेद की भांति बिम्ब-भेद भी बढ़ा और प्रतीकात्मक बिम्ब की बात की जाने लगी । इतना ही नहीं, यह धारणा बलवती हुई कि प्रतीकवाद से सर्वथा पृथक् रहकर बिम्ब-विधान का अध्ययन संभव नहीं है ।[1] यह आकस्मिक नहीं था क्योंकि, बिम्बवादी प्रमुख नेता एजरापाउण्ड ने ही क्षणमात्र में एक साथ बौद्धिक और भावनात्मक जटिलतन्त्र को प्रस्तुत करने की बात कही थी ।

वस्तुतः बुद्धि का उतना ही सहयोग अपेक्षित रहता है जितने से उसका भावना के साथ समंजस रूप बना रहे ।[2] बुद्धि का आधिपत्य स्वीकार्य नहीं होना चाहिये । बिम्ब-निर्माण-प्रक्रिया की दृष्टि से कल्पना, बुद्धि का महत्त्व निःसन्देह सर्वमान्य है । काव्यानुभूति -पक्ष में भी जिस भाव के लिए बिम्ब सृष्ट हुआ है उनके अन्वेषण में ही बुद्धि की चरितार्थता है । अतः काव्य-बिम्ब के क्षेत्र में बुद्धि भाव की अनुगामिनी रहे, यही वरेण्य है ।

5- **सम्प्रेषणीयताः** -

बिम्ब अपनी विशदत्ता, मूर्तिमत्ता, ऐन्द्रियता और समर्थ संवेगात्मकता के कारण पाठक के चित्त को काव्यास्वादजन्य अलौकिक अनुभूति से द्रवीभूत कर देता है । बिम्बधर्मी शब्द-योजना वस्तु को समक्ष ला कर खड़ा कर देती है और उसकी ऐन्द्रिय विशेषता काव्यानुभूति में विशेष सहायक सिद्ध होती है । नाट्यशाला में बैठे हुए सहृदय दर्शक को पात्रों के समग्र अभिनय का चाक्षुष प्रत्यक्ष करके काव्यार्थ की अविकल अनुभूति के कारण दृश्यकाव्य के सन्दर्भ में जिस मात्रा में सुख का आस्वाद होता है,

---

(1) 'One cannot discuss imagery without sliding into symbolism' के0वर्क0, प्रि0 एन्सा0 पो0, पृ0 367

(2) सं0 पो0, पृ0 9।

श्रव्यकाव्य के प्रसंग में भी बिम्बों की महत्ता के कारण उसी मात्रा में काव्यानुभव का आनन्द प्राप्त होता है । काव्यबिम्बों की मूर्तिमत्ता और ऐन्द्रियता ही इसमें प्रमुख रूप से हेतु हैं।

(6) अभिव्यक्ति का माध्यम-

बिम्ब भावाभिव्यक्ति का प्रभावी उपकरण है । इसकी उत्पत्ति अप्रस्तुत-विधान-रूपक , तुलना, या सामान्यवर्णनात्मक विधा में भी हो सकती है । यह एक सामान्य लोकोक्ति से भी सृष्ट हो सकता है । प्रायः विशेषण पदों के द्वारा इसकी निर्मिति होती है । इस प्रकार, कथन का कोई भी ढंग बिम्बोंत्पादन में समर्थ हो सकता है ।[1] इस दृष्टि से बिम्ब इतना व्यापक है कि सभी उक्ति भेद उसमें अन्तर्भुक्त हो जाते है ।

निष्कर्षः-

आधुनिक आलोचना-जगत् में 'बिम्ब' शब्द से बड़ा व्यापक अर्थ ग्रहण किया जाता है । आज की समीक्षा में उसकी प्रारम्भिक मूल विशेषता मूर्तिमत्ता गौण हो गयी है और वह समस्त काव्यगत वैशिष्ट्य का बोधक बन गया है । वह दृश्य, श्रव्य, घ्रातव्य, स्पृश्य, आस्वाद्य और अनुमेय सब कुछ हो सकता है ।

आई0ए0रिचर्ड्स, सर हर्बर्ट रोड और सी0डे0 लुईस जेसे समीक्षकों की नवीन मीमांसा के परिणाम स्वरूप 'बिम्ब ' से केवल स्पष्ट स्थूल मूर्त चित्रों की ही प्रत्यक्ष ऐन्द्रिय अनुभूति भर अपेक्षित नहीं है, अपितु क्षणमात्र के लिए चेतना के धरातल पर उद्भूत, एक अस्पष्ट सूक्ष रेखा को अनुमिति भी बोधव्य है । अतः व्यापक परिप्रेक्ष्य में 'बिम्ब' का विशेष समीचीन एवं आदरणीय निष्कृष्ट लक्षण पाश्चात्य कलासमीक्षक कालरिज का माना जा सकता है, जो इस प्रकार :-

' An image may be, for example, a visual image, a copy of sensation or it may be an idea, any event in mind , which represents, something, or it may be a figure of speech a double unit involving comparison.'[2]

---

(1) 'An epithet, a metaphor, a simile may create an image, or an image may be presented to us in a phrase or passage, on the face of its puerly descriptive, but conveying to our imagination something more than the accurate reflection of an external reality.' पो0इ0,पृ018

(2) ःजा0वि0 यो0, पृ0 37

अर्थात् एक बिम्ब दृश्यचित्र, संवेदना की एक अनुकृति, एक विचार, एक मानसिक घटना, एक अलंकार या वस्तुओं की तुलनात्मक इकाई तक हो सकता है ।

वस्तुतः बिम्ब-स्वरूप-सम्बन्धी धारणा मतभेद-संकुल होने के कारण इतनी अस्पष्ट, जटिल एवं गहन है कि उसका कोई सामान्य लक्षण निर्धारित कर पाना सरल नहीं है । फिर भी, उपर्युक्त परिभाषाओं और विवेचना के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है :-

भावनात्मक गंभीरता के साथ बौद्धिकता तथा ऐन्द्रिय संवेदनक्षमता से युक्त चित्रात्मक व्यापक प्रभावी शाब्दी अभिव्यक्ति ही काव्य-बिम्ब है ।

तृतीय अध्याय

•

बिम्ब–परिचय

तृतीय अध्याय

बिम्ब परिचय-

क- संस्कृत अलंकार शास्त्र और बिम्ब

ख- बिम्ब की शास्त्रीय मान्यता

1- पौरस्त्य दृष्टि

2- पाश्चात्य दृष्टि

क- संस्कृत अलंकार शास्त्र और बिम्ब :-

भारतीय काव्यालोचन के प्रारम्भिक युग में काव्य सिद्धान्तों को व्याख्यायित करने वाले ग्रन्थों के अलंकार परक अभिधान काव्य में अलंकारों की महत्ता में प्रमाण हैं । इनका कारण अलंकारों का केवल सौन्दर्याधायक होना नहीं है अपितु उसकी स्वरूपाधायक विशेषता ही है ।[1] यही हेतु है जिससे काव्य के सम्पूर्ण सौन्दर्य के अभिव्यंजक के रूप में उसका मूल्यांकन होता था ।[2] सामान्य " वार्ता कवि-क्रिया कल्प में समादृत नहीं होती । रमणीय अर्थ की अच्युत उपस्थिति में समर्थ, उपयुक्त एवं विशिष्ट चित्रात्मक पदावली ही कवि की भावनिधि को प्रतिबिम्बित और अलंकृत करती है । स्पस्ट है कि जब कवि अपनी सान्द्र अनुभूतियों को रमणीय रूप प्रदान करने के लिये कलात्मक अभिव्यक्ति की समीहा करता है, अमूर्त भावों को मूर्तन करना चाहता है , तो सहज ही उसे अलंकारों का सहारा लेना पड़ता है । इसलिये अलंकार जहाँ बिम्बन-व्यापार के माध्यम है, भाव-प्रकाशन के चमत्कार पूर्ण विविध सोपान हैं, अनुभूति सम्प्रेषण के कौशल पूर्ण उपाय हैं वहीं, काव्य सौन्दर्याधान के प्रमुख उपकरण भी हैं वस्तुतः, प्रमातृ-निरपेक्ष काव्य का अपना जो कुछ भी रूप है, वह अलंकार मय ही हैं ।[3] इस तरह शास्त्रीय दृष्टि से संस्कृत अलंकार शास्त्र और बिम्ब का घनिष्ठ सम्बन्ध है क्यो कि, दोनों ही सम्मूर्तन

---

(1) " तत्वं सालंकारस्य काव्यता"/वक्रो0,1/6 एवं वृत्ति , पृ017

" किंच सौन्दर्यातिरेक निष्पत्तयेऽर्थस्य काव्य क्रियारम्भः कवेः न त्वलंकार निष्पत्तये, तेषां नान्तरीयकतयैव निष्पत्तिसिद्धेः । व्य0वि0,पृष्ठ 397.

'Effective expression, "The embodiment of the poet's ideas, is alankāra',- स0 क0 अ0, पृ0 90

(2) काव्य शोभाकरान् धर्मान् लंकारान् प्रचक्षते । काव्या0, 2/1.

(3) अ0स0- भूमिका पृ0 56-60

प्रक्रिया के प्रभावी उपादान हैं फिर भी दोनों एक नहीं है अलंकार मात्र अलंकरण के निमित्त भी प्रयुक्त होता है , चित्रमयता उसकी अनिवार्य विशेषता नही है किन्तु बिम्ब की मूल प्रवृत्ति ऐन्द्रिय गोचरत्व-संवलित है । अलंकार की अपेक्षा बिम्ब अधिक व्यापक है- उसका सम्बन्ध काव्य के विषय वस्तु और रूप-विधान दोनों से है । इसके अलावा अलंकार और बिम्ब के मध्य संदर्भगत भेद भी है । बिम्ब संदर्भच्युत होकर कभी महत्त्वपूर्ण नही होता । लेकिन, अलंकारों के लिये यह सदा आवश्यक नहीं । वे स्वतंत्र और अविभाज्य होते हैं । अलंकारों में भी, सादृश्यमूलक अलंकारों का ही बिम्ब का निकट का सम्बन्ध है । शव्दालंकारों में केवल अनुप्रास का नाद-बिम्ब विधान की दृष्टि से कुछ महत्त्व स्वीकार्य है । वस्तुतः निर्माण प्रक्रिया की दृष्टि से बिम्बों का उत्स कवि मन का उपचेतन स्तर है । इस लिये उपमारूपक आदि सादृश्यगर्भी अलंकार ही अपने उद्‌गम साम्य के कारण बिम्बों के समीपी ठहरते हैं । पर यमक, श्लेष, काव्यलिंग, विभावना आदि जिनका निर्माण स्वतः कल्पना के प्रस्फुरण से न होकर, मन के चेतन स्तर से तर्क, बुद्धि के विशेष अनुसंधान पूर्वक होता है, बिम्ब से बहुत दूर पड़ जाते हैं ।

ख- बिम्ब की शास्त्रीय मान्यता -

पौरस्त्य दृष्टि-

जैसा कि प्रारम्भ में उल्लेख किया जा चुका है, बिम्बन शिल्प कबिकर्म का अविच्छेद्य अंग है किन्तु काव्य शास्त्रियों ने इस काव्य तत्व को कब किस रूप में मान्यता प्रदान की इसकी गवेषणा बहुत महत्त्व पूर्ण है, तथा भारतीय विचारधारा से परिचित होना आवश्यक है ।

अमूर्त भावों को मूर्तित करने की मूल धारणा पर आधृत बिम्ब जब कवि कर्म की स्वाभाविक और सार्वभौमिक विशेषता है तब भारतीय काव्य शास्त्रियों की सूक्ष्म काव्य चिन्तन की परिधि में उसका समाहार क्यों नहीं हुआ ? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है । क्या वे काव्य के बिम्बात्मक वैंशिष्ट्य से अनभिज्ञ थे यदि नहीं, तो फिर उनके द्वारा विवेचित विविध काव्य तत्त्वों में से कौन से तत्त्व इस बिम्ब विषयक धारणा के समीप आते हैं, यह अन्वेषण बिम्ब के शास्त्रीय परिचय के सन्दर्भ में संकेत रूप में ही सही विशेष उपयोगी है । इसलिये सर्व प्रथम संस्कृत लक्षण ग्रन्थों में इस तत्त्व के अन्वेषण का प्रयास किया जा रहा है, कि प्राचीन आचार्यो ने रस, भाव, अलंकार, ध्वनि आदि की भांति शब्दतः स्पष्ट

रूप से " बिम्ब " शव्द का प्रयोग भले ही न किया हो किन्तु इसका संकेत उन्होने अपने लक्षण ग्रन्थों में किस रूप में किया है इसके परिज्ञान की चेष्टा यहाँ की जा रही है क्यों कि काव्य के तत्त्वो में इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, इसलिए हम देखेगें कि प्राचीन संस्कृत के समीक्षा शास्त्री दण्डी प्रभृत्ति विद्वानों ने इस तत्त्व को किस रूप में संकेतित किया है ।

यह ध्यातव्य है कि काव्य के प्रकारो में जिस चित्र-काव्य का भेद[1] आचार्य मम्मट ने निरूपित किया है उसका प्रयोग इस अर्थ में नहीं किया गया, पाश्चात्य समीक्षा शास्त्रियों के इस परिभाषित शब्द का उसके साथ कोई साम्य नही है । वस्तुतस्तु भामह , दण्डी आदि की समीक्षा प्रणाली में ही इसके संकेत सूक्ष्म रूप में ही सही, अन्वेष्टव्य हैं ।

वस्तुतस्तु समीक्षा के क्षेत्र में बिम्ब शब्द पाश्चात्य समीक्षा शास्त्रियों की देन है जो ' इमेज ' शब्द का पर्यायवाची है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी में आलोचना के क्षेत्र में इसका सर्व प्रथम प्रयोग किया जैसा कि हम आगे देखेंगे कि हिन्दी काव्य के समीक्षकों ने आगे चलकर इस (बिम्ब) को शास्त्रीय अर्थ में मान्यता दी ।

भारतीय काव्य शास्त्र में " काव्य - बिम्ब " शब्द का प्रयोग नहीं है, फिर भी उसमें विविध काव्य सिद्धान्तों के मध्य उसके महत्त्व पूर्ण अस्तित्व के पर्याप्त संकेत उपलब्ध हैं।[2] वस्तुतः प्रत्यक्ष सौन्दर्य की दिदृक्षा ही भारतीय काव्यालोचन के उद्गम का मूल है । यह तथ्य केवल दृश्य काव्य के सन्दर्भ में ही आदरणीय नहीं है ।[3] अपितु, श्रव्य काव्य के परिवेश में भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है नाट्य काव्य की महत्ता उसकी दृश्यात्मक विशेषता के ही कारण है । [4] जब कवि दृश्य काव्य की भांति श्रव्य काव्य में भी साक्षात् प्रतीति के मूलाधार ऐन्द्रिय तत्त्व की अवतारणा करना चाहता है तो

---

(1) काव्य प्रकाश-प्रथम उल्लास, कारिका 05

(2) सं० पो० पृ० 207

(3) क- " नाट्य नाम----- आस्वादन रूप संवेदन संवेद्यं वस्तु--- " (अभि न० पृ० 26)

ख- " रूपं दृश्य तयोच्यते' । दश० पृष्ठ-4

(4) क- काव्यं तावन्मुख्यतो दशात्ममेव । तत्र हि उचितैभाषावृत्ति काकुनेपथ्यं प्रभृतिभिः पूर्यते रसवत्ता----- काव्यं च नाट्यमेव ।" अभि न०- पृष्ठ-504-5

ख- संदर्भेषु दशरूपकं श्रेयः । का० सू० 1/3/30

तद्विचित्र चित्र पर बृद्धि शेष साकल्पात् । का० सू०-1/3/33

उसे सहज ही बिम्ब विधान का सहारा लेना पड़ता है, क्यों कि बिम्बात्मक प्रयोगों के बल पर ही प्रत्यक्ष मानसी उपस्थिति जो पूर्ण रसवत्ता का प्रमुख हेतु है, अपेक्षाकृत अधिक सुकर हो पाती है । इस प्रकार स्पष्ट है कि श्रव्य काव्य में भी बिम्बों के माध्यम से दृश्य काव्य जैसी पूर्ण काव्यार्थानुभूति की स्थिति प्राप्त की जा सकती है ।[1] बिम्बन-शिल्प के बिना श्रव्य काव्य में काव्यास्वाद संभव नहीं है।[2] यहाँ स्वल्प विभावादिकों के प्रकाशन से भी जो रसानुभूति पाठक या श्रोता को होती है, उसका कारण शब्दों का बिम्बात्मक होना ही है ।[3] वस्तुतः बिम्ब प्रयोक्ता कवि, अभिनेता की भूमिका निभाता है । और उसके द्वारा प्रयुक्त बिम्ब अभिनय का काम करते हैं । इसी लिये बिम्ब प्रधान काव्य ही विशेष समादरणीय है । [4] क्यों कि रस की साक्षात् अनुभूति का हेतु वही है । अभिनेता की अभिनय कुशलता की अपेक्षा कवि की प्रौढ़ बिम्ब कला कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होती है । इस प्रकार बिम्बनशिल्प, दूसरे शब्दों में कवि का वागभिनय कहा जा सकता है जो नाट्याभिनय की अपेक्षा व्यापक अर्थ परक [5] है।

---

(1) If we realise Rasa in Kavya also, it is because of the intrinsic dramatic quality of the poem,- भो0 श्रृं0 , पृ0 79

(2) न नाट्य एव च रसाः काव्येऽपि नाट्यमान एव रसः ।

काव्यार्थ विषये हि प्रत्यक्ष कल्प संवेदनोदये रसोदयः इत्युपाध्यायाः ।।

यदाहुः काव्य कौतुके-

प्रयोगत्वमनापन्ने काव्ये नास्वादसंभवः ।

वर्णनोत्कलिकाभोग- प्रोढ़ोक्त्या सम्यगर्पिताः

उद्यानकान्ताचन्द्राद्या भावाः प्रत्यक्षवत्स्फुटाः।। इति।। -- अभिन0 पृ0 504

(3) परिमितविभावाद्युन्मीलनेऽपि परिस्फुट एवं साक्षात्कार कल्पः काव्यार्थःस्फुरति- अभिन0 पृ0-492

(4) अतोऽभिनेतृभ्यः कवीनेव बहुमन्यामहे, अभिनयेभ्यश्च काव्यमेवेति' । भो0श्रृं0पृ0पृष्ठ-8।

(5) क-The word 'abhinaya' is usually translated A 'acting' but as it is used in Natya-Sastra,it has a very wide meaning, a meaning that includes not only what we understand by 'acting' but other things which go to make up the medium of expressiion'.- इ0 भ0 ना0 , पृ0 28

(5) ख- ना0 8/6

संस्कृत काव्य शास्त्र के प्रथम आचार्य भरत ने वागभिनय रूप बिम्बन-शिल्प को 'लक्षण' के रूप में प्रस्तुत किया है " काव्य-बन्धास्तु कर्तव्याः षट्त्रिंशल्लक्षणान्वितः"[1] कहते हुए उन्होने उसे सामान्य काव्य का वैशिष्ट्य स्वीकारा है न कि, मात्र नाट्य का यद्यपि सभी लक्षण भेद बिम्बात्मक है । फिर भी " भूषण "[2] " दृष्ट "[3] " सारूप्य "[4] काव्य बिम्ब की धारणा से अधिक पास हैं । रसवादी आचार्यभरत की दृष्टि में बिम्ब काव्य का सुन्दरताधायक तत्त्व होते हुए भी अपनी भावान्विति और रस पेशलता के कारण ही अधिक महत्त्वपूर्ण है।[5] साथ ही उन्हें यह काव्य-बिम्ब मात्र बाह्य अलंकरण न होकर काव्य के अन्तरंग तत्त्व के रूप में मान्य है । इसके अतिरिक्त श्लेष, प्रसाद, समता , समाधि , माधुर्य, ओज, पद, सौकुमार्य, अर्थाभिव्यक्ति , उदारता और कान्ति इन दश काव्य-गुणों का उल्लेख करते हुये मानो प्रकारान्तर से उन्होने बिम्ब गुणों को ही गिनाया है।[6]

दण्डी ने भी काव्य में मूर्तिमत्ताको महत्त्व दिया है । उनकी दृष्टि में तो प्रत्येक भाव या विचार बिम्ब रूप है और उसकी अभिव्यक्ति भी बिम्बात्मक है । प्रत्येक शब्द स्वतः एक बिम्ब है । लोक व्यवहार का हेतु यही शब्द बिम्ब है ।[7] सारा इतिहास, सम्पूर्ण संस्कृति इसी दर्पण रूपी वाङ्मय-बिम्ब में सुरक्षित है । जो आज हमारे समक्ष नहीं है । उनकी कीर्ति, उनकी निलिखल-सम्पत् इन्ही शव्द बिम्बों, के माध्यम से आज भी हमारे समक्ष उपस्थित है । [8] यही कारण है कि दण्डी ने "अभीष्ट अर्थ- संवलित पदावलि " को ही काव्य माना ।[9] वास्तव में भाव बिम्बन के माध्यम तो शब्द

---

(1) ना0 16/169/2

(2) अलंकारै गुणैश्चैव बहुभिः समलंकृतम् ।
भूषणैरिव चित्रार्थैस्तद भूषणमिति स्मृतम् ।। ना0 17/6

(3) यथाकलां यथा देशं यथा रूपं च वर्ण्यते ।
यत प्रत्यक्षं परोक्षं वा दृष्टं तद्वर्णतोऽपिवा ।।------ ना0 17/23

(4) दृष्टश्रुतानुभूतार्थ कथनाभिः समुद्रवम् ।
सादृश्यक्षम जनितं सारूप्यमिति संज्ञितम् ।। ना0 17/35

(5) षट्त्रिशदेतानि हि लक्षणानि, प्रोक्तानि वै भूषण सम्मितानि ।
काव्येषु भावार्धगतानि तज्जैः, सम्यक प्रयोज्यानि यथारसन्तु ।। ना0 17/42

(6) ना0 17/96

(7) काव्या- 1/3 तथा 4

(8) आदिराजयशोबिम्बादर्शं प्राप्य वाड्मयम् । तेषामसंनिधानेऽपि न स्वयं पश्य नश्यति।। काव्यादर्श 1/4

(9) शरीरं तावदिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली काव्यादर्श 1/10

ही हैं । उनके अभाव में कवि कर्म असम्भव है ।[1] इस दृष्टि से सोचें तो काव्य का यथार्थ शरीर तो शब्द ही ठहरता है, जो उसे अस्तित्व प्रदान करता है, उसकी सन्ता का प्रकाशक है, उसके रूप का आधायक हैं, उसका सही कलेवर है एवं उसके पठन, श्रवण, अवगमन की सार्थकता का हेतु है । दण्डी की दृष्टि में काव्य बिम्ब, की सृष्टि का मूल विचित्र मार्गों वाली वाणी की क्रिया-विधि है ।[2] जिसके फलस्वरूप काव्य शोभा के जनक समस्त काव्यात्मक बिम्ब अलंकार की उत्पन्ति होती है ।[3] ये अलंकार मात्र वाणी की सजावट के लिये नहीं है । प्रत्युत अपने बिम्बात्मक वैशिष्ट्य के कारण व्यापक अर्थ में काव्य शोभा के मूल हैं । दण्डी की काव्य बिम्ब की मूल्य परक दृष्टि का सही ज्ञान तव होता है जब हम अलंकारों की बिम्बोत्पादक प्रकृति को ध्यान में रखकर पहले अर्थालंकार और उस पर भी उसकी सर्व प्रथम उन्क्ति स्वभावोन्क्ति की उसकी निरूपण पद्धति पर ध्यान देते हैं । इस वर्गीकरण क्रम से यह निष्कर्ष निकलना उपयुन्क्त है कि जहाँ दण्डी अप्रसतुत विधान जन्य बिम्बों की अपेक्षा अभिधापरक वर्णनात्मक प्रस्तुत बिम्बों को अधिकस्वाभाविक समझते थे । वही बिम्ब गुण समाधि[4] को कार्य सर्वस्व[5] कहकर अप्रस्तुत विधान से उत्पन्न बिम्ब को भी काव्य का प्रमुख धर्म समझते थे ।

भामह की बिम्बन शिल्प विषयक धारणा का उपस्थापक उनका " भाविक " नामक प्रबन्ध गुण है, जिसके द्वारा कविभूत एवं भावी अर्थ को , वर्तमानवत् नयन गोचर करता है । इस बिम्बन कर्म के लिये भामह कथा में जिन गुणों को आवश्यक हेतु मानते हैं वे हैं- अर्थ की चित्रात्मकता, उदान्तता,

---

(1) तथा हि दर्शने स्वच्छे नित्येऽप्यादिकवैर्मुनेः ।
नोदिता कविता लोके यावज्जाता न वर्णना ।। भट्टन्तौत

(2) काव्या0 1/9

(3) काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान् प्रचक्षते । काव्या0 2/1

(4) अन्यधर्मस्ततोऽन्यत्र लोक सीमा नुरोधिना ।
सम्यगाधीयते तत्र समाधिः स्मृतो यथा ।। काव्य 1/93

(5) तदेतत्काव्य सर्वस्वं, समाधिनामयो गुणः ।
कविसार्थः समग्रोऽपि तमेनमनुगच्छति ।। काव्या0 1/100

अद्भुतन्त्व , सुन्दरढंग से अभिनीतिता और शब्द की अनुकूलता तथा प्रसाद गुण युन्क्तता।[1] यहाँ स्पष्टतः वे ' चित्र' और ' स्वअभिनीतिता" शब्दों से काव्य के रूप तत्व की मह-त्वपूर्ण स्वीकृति का संकेत कर रहे हैं । यह तन्त्व जितना उपादेय " प्रबन्ध " के लिये है उतना एक मुन्तक के लिये भी । साथ ही यह बिम्बात्मक भाव कवि और सहृदय दोनों के लिये समान रूप से ग्राह्य है । क्यों कि कवि के भाव बिम्बों के साथ उसी स्तर पर तादात्म्य स्थापित करने पर ही पाठक या श्रोता की रस तृप्ति संभव है । यह तभी हो सकता है जब कवि अपने भावों को शब्दार्थों के सन्तुलित काव्य बिम्बों द्वारा रूपायित करता है । [2]

वामन का काव्य-बिम्ब अलंकार जन्य है ।[3] यह अलंकार कवि कर्म की समग्र सुन्दरता का द्योतक है ।[4] इस काव्य सौन्दर्य की उत्पन्ति का मूल रीति है [5] जिसका आधार शब्दों का विशेष नियोजन है । [6] और शब्दों का यह विशेष प्रयोग गुणों की सम्यक् उपस्थिति में ही सम्भव है [7] अर्थात् वामन के विचार में गुण संवलित शब्दों का विशेष प्रयोग ही काव्य-बिम्ब का नियामक तन्त्व है। भरत और दण्डी द्वारा मान्य पूर्वोन्क्त दशगुण वामन को भी इष्ट हैं । इन दशगुणों से युन्क्त वैदर्भी रचना पद्धति को वे श्रेष्ठ बिम्ब के सृजन में हेतु समझते हैं । लगता है कि दण्डी की भांति वामन भी अभिघात्मक विधा में निर्मित वर्णनात्मक बिम्ब को ही आदर्श मानते हैं । काव्य बिम्ब की रचना का यही प्रकार कलाकार की वाणी की शोभा है । और सहृदयों के लिये काव्यास्वाद का उन्तम पाक भी।[8]

---

(1) भाविकत्वमिति प्राहुः प्रबन्ध विषयं गुणम् ।
प्रत्यक्षा इव दृश्यन्ते यत्रार्थाः भूत भाविनः ।।
चित्रोदा-ताद् भुतार्थत्वं कथायाः स्वभिनीतता ।
शव्दानुकूलता चेति तस्य हेतुं प्रचक्षते ।। काव्यालं0 3/53-54

(2) शव्दार्थो सहितौ काव्यम् - काव्या लं0 1/16

(3) काव्यं ग्राह्यमलंकारात् । काव्या0 सू0 1/1/1

(4) सौन्दर्यअलंकारः । काव्यासू0 1/1/2

(5) रीतिरात्मा काव्यस्य- काव्या0सू0 1/2/6

(6) विशिष्ट पद रचना रीतिः । काव्या0सू0 1/2/7

(7) विशेषो गुणात्मा । काव्या0 सू0 1/2/8

(8) काव्या0सू0 1/2/21

वैसे, ' समग्र रूप से वैदर्भी, गौडी और पांचाली ' इन तीनों काव्य शैलियों में ही काव्य उसी प्रकार मूर्तिमान हो उठता है जिस प्रकार रेखाओ में चित्र,[1] यह कहकर निश्चय ही वामन ने काव्य-बिम्ब के दृश्यात्मक वैशिष्टय का स्पष्ट उल्लेख किया है ।

बिम्ब सिद्धान्त का सर्वांगीण एवं पूर्ण विवेचन हमें ध्वन्यालोक में प्राप्त होता है । ध्वन्यालोक कार आनन्दवर्धन की काव्य बिम्ब विषयक चिन्तना का प्रमुख आधार प्रतीयमान अर्थ है जो वाच्य की अपेक्षा सूक्ष्म तो है ही, उसका श्रृंगार भी[2] है और जिसके अभाव में काव्य-मर्मज्ञ सहृदय को कार्यानुभव का सही आनन्द प्राप्त नहीं हो पाता ।[3] इस अर्थ और इसके अभिव्यंजक शब्द दोनों के सुन्दर प्रयोग ही महा कवित्व के मानदण्ड हैं।[4]

स्वरूप बोध की दृष्टि से वाच्य साधन है तथा प्रतीममान साध्य ।[5] पर जहाँ तक सौन्दर्य बोध का प्रश्न है वहाँ दोनों में कभी सन्तुलन और कभी न्यूनांधिक्य भी हो सकता हैं, क्यों कि प्राधान्य की विवक्षा का आधार चारूत्व है ।[6] अर्थात् चारूत्व, सौन्दर्य और आह्लाद की मात्रा में जो उत्कर्ष का बोध है प्राधान्य का नियामक तन्त्व है । डा0 रेवा प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा है कि इससे यह अर्थ निकलता है कि काव्य का निर्णायक काव्य निष्ठ धर्म नहीं, अपितु अनुभाविता की आनन्द-यात्रा है।[7] यही कारण है कि रसध्वनि को ही काव्यात्मकता महत्वपूर्ण पद प्राप्त हुआ है।[8] वस्तुतः, भाव या रस ही एक मात्र प्रमुख तत्व है । काव्य सर्जना की दृष्टि से काव्य की प्रादुर्भाव भूमि भी वही है एवं अनुभूति के क्षणों में कवि कर्म की चरितार्थता भी उसी रूप में होती है । इसलिये ऐसे रसात्मक अर्थ वस्तु परक काव्य बिम्ब का निर्माण महाकवि की प्रतिभा का निकष हो, यह उचित ही है ।[9]

---

(1) एतासु तिसृषु रीतिषु रेखास्विव चित्रं काव्यं प्रतिष्ठितमिति । काव्या0 सू0 1/2/13 की वृ-ति.

(2) ध्व0 1/4

(3) ध्व0,पृ0 506

(4) ध्व0 1/8

(5) ध्व0 1/9

(6) ध्व0, पृश्ठ 114

(7) आ0 व0,पृष्ठ 88

(8) ध्व0 1/5, लो0, पृ0 86 और पृष्ठ 92

(9) ध्व0 1/6

वाच्यार्थ की बिम्बात्मकता का निरूपण तो पूर्ववर्ती सभी आचार्यो ने किया था इसीलिये आनन्द वर्धन उसकी पुनरावृत्ति करके अपनी समीक्षा का विस्तार नहीं करना चाहते ।[1] लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नही है कि वे उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। यह सम्भव हो ही कैसे सकता है ? परवर्ती प्रतीयमान की आधार भित्ति तो यही वाच्यार्थ देह है अस्तु वे प्रतीयमान का बिम्बात्मक विश्लेषण प्रस्तुत कर , देह में देही की प्रतिष्ठा करके जीवन्त काव्य बिम्ब सिद्धान्त की एक सूक्ष्म एवं मौलिक उद्भावना के द्वारा अबतक के शेष कार्य को ही पूर्ण करने के लिये कृत संकल्प हैं । सर्वथा उपयुक्त है यह । क्यों कि, हृदय का यात्री जब प्रारम्भिक शब्दार्थ के वाह्य प्राचीर को विवक्षा के द्वार से पार करता और प्रतीति के गर्भगृहतक पहुँचता है तो तात्पर्य के रस-सिंहासन पर उसी अर्थ को प्रतिष्ठित पाता है । "[2] इस तरह इसमें सन्देह नहीं है कि आनन्दवर्धन की दृष्टि में मात्र अभिधा में वाच्य-अर्थ की चित्रच्छवि उपस्थित कर देना कवि कर्म का नैपुण्य नहीं है अपितु, व्यंजना के द्वारा व्यंजक पदों से तात्पर्यार्थ का छायांकन ही बिम्बन - शिल्प की उत्कृष्टता का परिचायक है इस सम्वन्ध में डा0 रेवा प्रसाद द्विवेदी का कथन विशेष महत्वपूर्ण है '------ शब्द अपने आपको काव्य शब्द तब बना सकता है जब वह कवि के तात्पर्य - विषयी भूत अर्थ तक पाठक को ले जा सके, कोष और व्याकरण की क्षुद्र सीमाओं से आगे बढ़ वह अपनी अर्थ पिण्ड में छिपी विशेषताओं का निर्देश कर सके, अर्थ रूपी चित्र का बिम्ब मात्र न प्रस्तुत कर उसकी एक एक रेखा की ऋजुता और वक्रता में छिपी अपनी मूल भाषा को भी पाठक के चिन्तन में जगा सकें।[3] अस्तु, प्रतीममान अर्थ भी बिम्बात्मक ही होता है ।[4] यह प्रतीयमान वस्तुतः अलंकार और रस इन रूपों में आक्षिप्त होता है । ' मन धम्मिआ वीसध्यों [5] ----- इत्यादि उदाहरण में गोदावरी नदी के किनारे गहन लता बन में वसने वाले उन्मत्त सिंह के द्वारा कुत्ते का मारा जाना रूप वाच्य बिम्ब तो स्पष्ट है ही किन्तु इस बिम्ब माहत्म्य से आक्षिप्त " भ्रमणनिषेध" रूप प्रतीममान वस्तु बिम्ब की बौद्धिक प्रतीति ही वक्ता का अभिप्रेत अर्थ है । भ्रमण एक मूर्त क्रिया व्यापार है,

---

(1) ध्व0 1/3

(2) आ0 व0 पृ0 93

(3) आ0 व0 पृ0 114

(4) ध्व0 तु0 सा0 पृ0 444

(5) ध्व0, पृ0 52

अतः उसकी बिम्बात्मक प्रतीति यहाँ पाठक को होती है । इसीतरह " अत्रान्तरे कुसुम समय युगमुपसंहरन्नजृम्भृत गीष्माभिधानः फुल्लमालिका धवलाट्टहासों महाकालः " [1] में शिव के अनेक पर्यावाची शब्दों के रहते हुये भी महाकाल का प्रयोग प्रलयंकारी भगवान् शिव का चित्र प्रस्तुत करने के साथ ग्रीष्म काल की प्रचण्डता की प्रतीति कराने के निमिन्त हुआ है । इस प्रकार ग्रीष्म पर प्रलयंकारी शिव का आरोप रूप एक इतर चमत्कारी अर्थ जो यहाँ प्रतीयमान है- ग्रीष्म का महाकालत्व, वह रूपक अलंकार है । यहाँ भी अपनी दृश्यात्मक विशेषता के कारण ही ग्रीष्मकाल का महाकालत्व अच्छी तरह प्रतिबिम्बित हो उठता है । रस की अनुभूति तो विभावादिकों की बिम्ब धर्मिता के कारण प्रत्यक्ष होती ही है । [2]

एवं वादिनि देवर्षो पार्श्वे पितुरधोमुखी ।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ।। [3]

इस उदाहरण में ' पार्वती द्वारा पिता के पास नीचे मुहँ करके लीला कमल की पंखुडियो का गिनना, ' वाच्य बिम्ब लज्जात्मक भाव के संगोपन के निमिन्त, प्रयुन्क्त हुआ है । यहाँ क्रमशः लज्जा अवहित्था शिवगत पार्वती की रति के साथ सम्बन्ध जोड़ने वाला प्रमाता स्वयं जिस रति की रसानुभूति करता है,वह साक्षात् मानस अनुभव बिम्बात्मक ही होता है । [4]

इसप्रकार स्पष्ट हुआ कि वाच्य बिम्बों की तरह प्रतीयमान बिम्ब भी ऐन्द्रिय- वैशिष्ट्य संबलित होते है । दृश्यात्मकता उनका भी गुण है। इतना अवश्य है कि अर्थ की सूक्ष्मता के कारण प्रतीयमान बिम्ब की आकारवन्ता वाच्य की अपेक्षा सूक्ष्म होती है । कहा जा सकता हे कि वाच्य बिम्ब दीप शिखा की भांति स्थायित्व लिये होता है । जब कि प्रतीयमान की बिम्ब छाया विद्युत्-द्युति

---

(1) ध्व0 पृ0 259

(2) 'यस्मादवस्तुसंस्पर्शिता काव्यस्य नोत्पद्यते । वस्तु च सर्वमेव जगद् गतमवश्यंकस्यचिद्रसस्यभावस्य वांगत्वं प्रतिपद्य अंततो विभावत्वेन । चिन्त वृन्ति विशेषा हि रसादयः, न च तदस्ति वक्तु किंचिद् यन्न चिन्तवृन्ति विशेषमुपजनयति, तदनुत्पादने वा कवि विषयश्च चित्रतया कश्चिन्निरूप्यते। ध्व0, पृ0 526-27

(3) कु0 6/84

(4) (क) काव्य व्यापारैकगोचरो रसध्वनिरिति । - लो0 पृ0 50

(ख) वस्तु चारूत्व प्रतीतये स्वशव्दानभिधेयत्वेन यत्प्रतिपादयितुमिष्यते । तद् व्यङ्ग्यम् ।।ध्व0वृ0,पृ0466

सृदश क्षणिक होती है । नारी की लज्जा की भांति यह प्रतीयमान बिम्ब[1] अपनी सूक्ष्मता के कारण ही बहुधा सहज गोचर नहीं हो पाता इसलिये सम्भवतः कुछ समीक्षक ध्वनि सिद्धान्त पर दृश्यता के अभाव का आरोप लगाते है ,[2] जो समीचीन प्रतीत नहीं होता ।

ध्वनिकार बिम्ब विधान को कवि कर्म का एक अविच्छिन्न अंग मानते हैं अर्थ विशेष प्रकाशन का द्वार है बिम्ब-विधान,क्यों कि बिम्बधर्मी शब्द शारीरिक चेष्टाओं- अभिनयों की तरह अर्थ प्रतिपत्ति में उपकारक होते हैं । अपनी अधिक रूप धर्मिता के कारण वाच्य बिम्ब स्वार्थाभिधायित्व की कोटि में आता है और इतर अर्थों के अवगमन की कारणता के कारण प्रतीयमान बिम्ब अर्थान्तरावगममहेतुत्व की।[3] प्रकारान्तर से दृश्यता का निरूपण ही आनन्दवर्धन को यहाँ अभीष्ट है।

----

(1) मुख्य महाकवि गिरालङ्कृतिभृतामपि ।

प्रतीयमानच्छायैषा भूषा लज्जेव योषिताम् ।। ध्व0, 3/37

डॉ0 उदयभानसिंह ने लिखा है कि- " आनन्द वर्धन की " छाया " से भी बिम्ब-विधान या चित्र-विधान का अभिप्राय ग्रहण किया जा सकता है।

- प्रि0लि0क्रि0सं0(आर0सी0द्विवेदी) पृ0 229

वास्तव में, इस " छाया " पद के साथ पूरे बिम्ब-सिद्धान्त का सामंजस्य स्थापित नहीं किया जा सकता । हाँ, मात्र प्रतीयमान बिम्ब के स्वरूप का समर्थक इसे माना जा सकता है । ध्वन्यालोक में सर्वत्र इसका प्रयोग शोभा, कान्ति, चमत्कार के अर्थ में मिलता है, जो प्रतीयमान अर्थ की प्रकृति के ही अनुरूप पड़ता है । अस्तु, आनन्दवर्धन की " छाया " चित्र नहीं, चित्र का सौन्दर्य है ।

(2) क- " दृश्यत-त्व का जो अनादर, उपेक्षा और कहीं-कहीं दुर्दशा भी ध्वनिमत के अन्तर्गत हुई है ------। नं0 स्व0 सी, पृ0 60

ख- " रस के भीतर व्यक्त होने वाले रूप-तत्त्व पर, जहाँ तक मेरा ज्ञान है, किसी भारतीय काव्य-विवेचक के दृष्टिपात नहीं किया । - - न0 स्व0 स0, पृ0 57

(3) अवाचकस्यापि गीतशब्दादे रसादिलक्षणर्थावगमदर्शनात् । अशब्दस्यापि चेष्टादेरर्थविशेषप्रकाशनप्रसिद्धेः । तथाहि ' ब्रीडायोगान्तवदनयो इत्यादिश्लोके चेष्टाविशेषः सुकविनार्थप्रकाशनहेतुः प्रदर्शित एव । तस्माभ्दिन्नविषयत्वाभ्दिन्नरूपत्वाच्च स्वार्थभिधायित्वमर्थान्तरावगमहेतुत्वं च शब्दस्य यन्तयोः स्पष्ट एव भेदः ।--- ध्व0 पृ0 458-59

बिम्ब-प्रयोग के बारे में भी ध्वनिकार बहुत सजग हैं। उनके मत में भाव-संस्पर्श-शून्य बिम्ब 'वाग्विकल्प-मात्र' है । बिम्ब-योजना के लिए उन्हें अतिरिक्त प्रयत्न अभिप्रेत नहीं । बिम्बों का रसानुगुण स्वतः प्रस्फुरण ही कला का उत्तम कल्प है । बिम्बों का आग्रहपूर्वक प्रयोग उन्हें अप्रिय है इस प्रकार बिम्ब-विधान के सम्बन्ध में ' अपृथक्-यत्न-निर्वर्तित और " नातिनिर्वहणैषिता " के वे समर्थक हैं।[1]

इस प्रकार विवेचन के आधार पर आनन्दवर्द्धन की बिम्ब-रचना-सम्बन्धी दृष्टि के बारे में कहा जा सकता है कि विविध वाच्य-वाचकों के रचना-प्रपंच की चारुता से युक्त गुण, रीति, अलंकार का भावानुरूप विशदशैली में किसी तात्पर्यार्थ-विवृत्ति के निमित्त औचित्य-संमित सहज एवं सरस पद-निबन्धन ही बिम्बन-शिल्प की सफल विधि है । प्रतिभा ही इसका उत्स है । औचित्य ही प्रमुख गुण एवं ध्वन्यात्मक नूतन अर्थवत्ता की उद्भावना ही जीवन्त बिम्ब की विशेषता है ।

राजशेखर बिम्ब-बिधान में निपुण कवि को ही सर्वश्रेष्ठ अलौकिक कलाकार की संज्ञा प्रदान करते हैं।[2] ऐसे प्रतिभाशाली कवि के मतिदर्पण में सम्पूर्ण विश्व प्रतिफलित रहता है ।[3] जिसका उपयोग वह प्रतिपाद्य की रसात्मक पृष्ठभूमि में ही करता है ।[4] क्योंकि स्वतः वस्तु नहीं अपितु, कवि का बिम्बन शिल्प ही महत्वपूर्ण होता है ।[5] यही कारण है कि कवि यथा-प्रसंग एक ही " चन्द्र " को कभी " अमृतांशु" और कभी "दोषाकर" इन पृथक् शब्द-बिम्बों से चित्रित करता है । [6] यही बिम्बन-रीति काव्य का उत्कर्ष है, जिसके लिए गुण और अलंकार का समुचित सन्निवेश आवश्यक है।[7] राजशेखर मुक्तक और प्रबन्ध दोनों के लिए ही अर्थ की बिम्बात्मकता को अनिवार्य समझते हैं [8] और उसके लिए विस्तृत चित्रण को उपयोगिता पर विश्वास रखते हैं।[9] अर्थ-चित्र के उदाहरण के रूप में

---

(1) रसाक्षिप्ततया यस्य बन्धः शक्यक्रियो भवेत् ।

अपृथग्यत्ननिर्वर्त्यः सोऽलंकारो ध्वनौ मतः ।। - ध्व0 2/16

विवक्षातत्परत्वेन नांगित्वेन कदाचन ।

काले च ग्रहणत्यागौ नातिनिर्वहणैषिता ।। - ध्व0 2/18

(2) चिन्तासमं यस्य रसैकसूतिरूदेति चित्राकृतिरर्थसार्थः ।

अदृष्टपूर्वो निपुणैः पुराणैः कविः स चिन्तामणिरद्वितीयः ।। - काव्यमी0, अध्याय 12 पृ0 202

(3) मतिदर्पणे कवीनां विश्वं प्रतिफलति ।। -- का0 मी0, पृ0 197

(4) का0मी0,अ0 9, पृ0 141

(5) का0मी0,अ09,पृ0 144

(6) का0 मी0,अ0 9, पृ0 146

(7) का0 मी0, अ0 6, पृ0 81

(8) का0 मी0 , अ0 9, पृ0 146

(9) स एव प्रपंचश्चित्रः । - का0मी0,अ09,पृ0146

उन्होंने जिस श्लोक को प्रस्तुत किया है वह ' निराकरण के बाद प्रसादनार्थ, नायक के पुनः उपस्थित होने पर मानिनी के नेत्र-व्यापार का सुन्दर दृश्य-बिम्ब है' ।[1] इस प्रकार रसोद्रेक में सहायक गुण एवं अलंकार के समुचित सन्निवेश से अर्थ की बिम्बात्मक उपस्थिति ही, राजशेखर की दृष्टि में , एक सफल कवि का काव्य-कर्म है ।

भट्टनायक के अनुसार रस की आधार-भूमि का निर्माण बिम्बन-व्यापार है । भावों के विषय का कल्पना-वैभव से पूर्ण प्रत्यक्षीकरण कवि-कर्म का प्रधान अंग है । इस बात की महत्ता समझकर ही भट्टनायक ने "भावकत्व" और " भोजकत्व " इन दो शब्द-व्यापारों की उद्भावना की थी ।[2] क्योंकि संवेदन अथवा साक्षात्कारात्मिका प्रतीति और उसकी आस्वाद्यता ही काव्य-बिम्ब का प्रयोजन है ।[3] जिसको लक्ष्य करके उनका विभावन-व्यापार प्रवृ-त हुआ था ।[4]

कुन्तक का वक्रोक्ति-सिद्धान्त तो प्रकारान्तर से काव्य की सम्मूर्तन-प्रक्रिया का ही आख्यान करता है,[5] क्योंकि वक्रता वस्तुतः , रूपगत धर्म है,[6] और वही इस काव्य-सौन्दर्य का आधार है ।[7] षड्विध विवेचित वक्रत्व-प्रकारों में से मुख्यतः 'उपचार-वक्रता' और 'विशेषण-वक्रता' ही बिम्बन-शिल्प के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं ।

---

(1) दूरादुत्सुकमागते विवलितं सम्भाषिणि स्फारितं
संश्लिष्यत्यरुणां गृहीतवसने कोपाञ्चितभ्रूलतम् ।
मानिन्याश्चरणानतिव्यतिकरे वाष्पाम्बुपूर्णेक्षणा-
च्चक्षुर्जातमहो प्रपंचचतुरं जातागसि प्रेयसि ।। अमरूशतक

(2) अभिधातोद्वितीयेनांशेन भावकत्वऽव्यापारेण भाव्यमानो रसः ----- , भोगेन परं भुज्यते।।- अभिन0, पृ0 465

(3) संवेदनाख्याया व्यंग्यः परसंवि-तिगोचरः ।
आस्वादनात्मानुभवो रसः काव्यार्थ उच्यते ।। अभिन0 , पृ0 467

(4) यत् ' काव्येन भाव्यन्ते रसाः ,इत्युच्यते तत्र विभावादिजनितचर्वणात्मकास्वा-दस्यप्रत्ययगोचरतापादनमेव यदि भावनं तदम्युपगम्यत एव' ।--- अभिन0 पृ0 467

(5) 'चित्रस्येव मनोहारि कर्तुः किमपि कौशलम्" । वक्रो0 3/4

(6) उदारस्वपरिस्पन्दसुन्दरत्वेन वर्णनम् ।
वस्तुनो वक्रशब्दैकगोचरत्वेन वक्रता ।। ----- वक्रो0 3/1

(7) उभावेतावलंकार्यौ तयोः पुनरलंकृतिः ।
वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभंगीभणितिरूच्यते ।। ---- वक्रो0 1/10

उपचार-वक्रता के अन्तर्गत भिन्न स्वभाव वाले दो पृथक् पदार्थों का परस्पर सम्बन्ध-आरोपण होता है । इस आरोपण का हेतु प्रस्तुत और अप्रस्तुत का यत्किंचित् साधारण धर्म ही होता है।[1] यही उपचार कहा जाता है । इस विधि में अमूर्त के स्थान पर मूर्ति-विधान, मानवीकरण, सघन वस्तु के स्थान पर द्रव वस्तु का प्रयोग होता है ।[2] जैसे ' हस्तापचेयं यशः ' (हाथ से बटोरने योग्य यश) विशेषण-वक्रता के अन्तर्गत क्रिया- विशेषणों या कारक-विशेषणों के माहात्म्य से वर्ण्य वस्तु का स्वाभाविक सौन्दर्य प्रस्फुटित होता है । [3] पूर्वोदाहृत " ग्रीवाभंगाभिरामम्--- ' श्लोक में विशेषणों के ही वैशिष्ट्य से भीत मृग का गतिमय बिम्ब विशेष मनोरम बन पड़ा है । निश्चय ही वक्रोक्ति का यह प्रकार बिम्बन-कला के लिए अतिशय सहायक सिद्ध होता है । इसीलिए तो कुन्तक ने इसके औचित्य-संमित प्रयोग को काव्य का जीवितत्त्व निरूपित किया है।[4] इसके अतिरिक्त अर्थवक्रता या वस्तुवक्रता के द्वारा भी कुन्तक बिम्ब सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए प्रतीत होते हैं । बिम्बीकरण के लिए सभी शब्द उपयुक्त नहीं होते और पदार्थ को प्रत्यक्ष-तुल्यता हेतु विशेषाभिधान अपेक्षित होता है,[5] इन तथ्यों का स्पष्ट उल्लेख करते हुए उन्होंने बिम्बन-शिल्प के प्रमुख कार्य-विशेषीकरण पर प्रकाश डाला है और कालिदास द्वारा प्रयुक्त ' कपालिनः '[6] शब्द को इसी दृष्टि से उद्घृत किया है ।

---

(1) वक्रो0, 2/13

(2) 'यथा मूर्तस्य वस्तुनो मूर्तद्रव्याभिधायिना शब्देनाभिधानमुपचारत् । -- 1/19 की वृत्ति

'सोऽयं स्वभावविप्रकर्षो विरूद्धधर्माध्यासलक्षणः पदार्थानाम् । यथा मूर्तिमत्व-

ममूर्तत्वापेक्षया, द्रवत्वं च घनत्वापेक्षया, चेतनत्वमचेतनत्वापेक्षयेन्ति" । -वक्रो0 2/13 की वृत्ति,पृ0 226

(3) वक्रो0 2/15 की वृत्ति भी, पृ0 234

(4) वक्रो0 2/15 की वृत्ति पृ0 234

(5) 'कविविवक्षितविशेषाभिधानक्षमत्वमेव वाचकत्वलक्षणम् ' ।- वक्रो0 1/9 की वृत्ति , तथा 'विशेषभिधानकांक्षिणाः पुनः पदार्थस्वरूपस्य तत्प्रतिपादनपरविशेषणशून्यतया शोभाहानिरूपजयते। - ---- वक्रो0 पृ0 42

(6) कुमारसंभव 5/71 , इस पर कुन्तक की समीक्षा, ' अत्र परमेश्ववाचकशब्दसहस्रसंभवेऽपि कपालिनः इति वीभत्सरसालम्बनविभाववाचकः शब्दो जुगुप्सास्पदत्वेन प्रयुज्यमानः कामपि वाचकवक्रतां विदधाति,

-- वृ0 1/9 वक्रो0, पृ0 40

कुन्तक के अनुसार वस्तु, अर्थ या विषय के सहज और आहार्य (कल्पित) दो रूप होते हैं सुकुमारमार्गाश्रयी श्रेष्ठ कवि स्वभाव-रमणीय पदार्थों के सहज वर्णन को ही सर्वाधिक महत्त्व देते हैं।[1] आहार्य वस्तु कल्पना-जन्य चमत्कार से लोकोत्तर रूप ग्रहण करती हैं।[2] कवि किसी वस्तु का निर्माण नहीं करता प्रत्युत, अपनी कल्पना से उसमें रंग भर देता है, जिससे उस अर्थ की प्रत्यक्ष तुल्य प्रतीति हो सके ।[3]

इस प्रकार कुन्तक उपचार-वक्रता और विशेषण-वक्रता रूप द्विविध काव्य-व्यापार के द्वारा बिम्बन-शिल्प की प्रक्रिया पर ही प्रकाश डालते हैं । वक्रोक्ति की परिधि में ही सही, किन्तु वे भी दण्डी की भाँति स्वभावोक्तिमूलक वर्णानात्मक बिम्ब को महत्व देते हैं, द्वितीय कोटि के बिम्ब में अन्य सभी अर्थालंकार आ जाते हैं। उनमें भी नीरस वस्तु को सरस रूप में समुल्लसित करने की अपनी विशेष बिम्बात्मिका प्रकृति के कारण रसवत् अलंकार-जन्य बिम्ब को ही सर्वोत्कृष्ट माना है ।[4] साथ ही वे बिम्ब-विधान की सान्दर्भिक संगति को विशेष महत्त्व देते हैं।[5]

रसवादी आचार्य अभिनवगुप्त का " चमत्कार " शब्द भी बिम्ब-सिद्धान्त का उपस्थापक है । जैसा कि पीछे कहा जा चुका है बिम्ब कोई वस्तु, नहीं है बल्कि, अनुभूत वस्तुओं, घटनाओं की मानसिक प्रतिभा का पुनः प्रस्तुतीकरण है । ऐन्द्रिय संवेदन जिसका प्रमुख वैशिष्ट्य[6] है । यही ऐन्द्रियता अर्थ की प्रत्यक्षता का नियामक तत्त्व है । यदि बिम्ब की इस स्वरूपगत विशेषता को ध्यान में रखकर ' चमत्कार ' का परीक्षण करें तो पता चलेगा कि ' बिम्ब ' और ' चमत्कार ' दोनों समानार्थी हैं, क्योंकि अर्थ की साक्षात् उपस्थिति ही ' चमत्कार ' की प्रकृति है ।[7] यह ' चमत्कार ' अर्थ की बिम्वात्मकता का परिणाम है जो अनुभविता के मानस-पटल पर काव्यार्थानुभव-काल में उद्भूत होता है और सृजन के

---

(1) वक्रो0 1/29

(2) वक्रो0 3/2

(3) ' तदेवं सत्तामात्रेणैव परिस्फुरतः पदार्थस्य---- तत्कालोल्लिखित इव वर्णनीयपदार्थपरिस्पन्दमहिमा प्रतिभासते' । ---- वृति 3/2 , वक्रो0 , पृ0 306

(4) वक्रो0 , 3/15 और उसकी वृत्ति

(5) वक्रो0 , 1/9 की वृत्ति , प्र0 44

(6) प्रि0 एन्स0 पो0 , पृ0 363

(7) ' भुञ्जानस्याद्भुतभोगास्पन्दाविष्टस्य च मनसश्चमत्करणं चमत्कार इति । स च साक्षात्कारस्वभावो मानसोऽध्यवसायो वा, संकल्पो वा, स्मृतिर्वा तथात्वेन स्फुरन्नस्तु ।' ---- अभिन0 , पृ0 472

क्षणों में बिम्बन ही ' विभावन व्यापार ' है । इस प्रकार आचार्य अभिनवगुप्त की दृष्टि में 'बिम्ब' काव्य-रचना का उपादान भी है और काव्यास्वाद का हेतु भी । इतना ही नहीं अभिनवगुप्त ने कवि-कल्पना को तीन प्रक्रियाओं का उल्लेख करके बिम्ब-निर्माण-विधि पर भी प्रकाश डाला।[1] इसके अतिरि-क्त संभवतः ये ही प्रथम भारतीय आचार्य हैं जिन्होंने बिम्बन-शिल्प के आधार पर काव्य मूल्यांकन भी प्रस्तुत किया । अभिनवभारती के रस प्रकरण में ' ग्रीवाभगांभिरामम् ----' श्लोक, को उद्धृत करते हुए उन्होंने लिखा है कि उसमें मृगशावक आदि अनेक विषयों को साक्षात् मानसी प्रतीति होती है।[2] इससे स्पष्ट होता है कि मूर्तिमन्ता या बिम्ब की काव्यात्मक और काव्यालोचन सम्बन्धी उभय धारणा से भारतीय आचार्य भली-भाँति परिचित थे।[3] बिम्ब के आधार पर काव्य का मूल्यांकन तान्त्विक दृष्टि से कोई नवीन उपलब्धि नहीं है ।[4]

महिमभट्ट ने भी रसानुभूति के विवेचन-संदर्भ में बिम्ब-प्रतिबिम्बन्याय,[5] की चर्चा की है। महिमभट्ट की " प्रतिबिम्बवाद" की यह नवीन कल्पना आधुनिक ' बिम्ब ' का ही दूसरा नाम जैसा है, क्योंकि वे रस को ' प्रतिबिम्ब-कल्प' कहते हैं।[6] जिसके अनुसार काव्य या नाट्य पाठक या दर्शक के चिन्त पर जिन-जिन पदार्थों के प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करते हैं, उनमें रति आदि भाव भी हुआ करते हैं। इन भावों के प्रतिबिम्ब-जैसे ही रति आदि भाव प्रमाता के अपने चिन्त में भी संस्कार रूप में विद्यमान रहते हैं। प्रमाता, पाठक या दर्शक इन्हीं भावों का आस्वाद लेता है । ये भाव काव्यादि से आहित भावप्रतिबिम्बों के समान ही हुआ करते हैं, अतः इन्हें प्रतिबिम्बतुल्य या 'प्रतिबिम्बकल्प ' कहा जाता है । स्पष्ट है कि महिमभट्ट का 'प्रतिबिम्बवाद' और पहले कहे गए सन्दर्भों के सभी ' प्रतिबिम्ब' आज के काव्यालोचन में प्रयु-क्त 'बिम्ब' की धारणा से अति साम्य रखते हैं। अतः,कहा सकता है कि

---

(1) प्रि0लि0क्रि0 सं0, पृ0 296-97 और इ0 पो0 इ0 ए0 पृ0 67

(2) ---- इत्यादिवाक्येभ्यो वाक्यार्थप्रतिपत्तेरनन्तरं मानसी साक्षात्कारात्मिका-- प्रतीतिरूपजायते------ साक्षादिव हृदये निविशमानं, चक्षुषोरिव वि-परि-वर्तमानं भयानको रसः'।---- अभिन0,पृ0 470-71।

(3) क0 ए0 , पृ0 553-54 और इ0 ए0 , पृ0 34

(4) क0 प्र0 , पृ0 122.

(5) स्थाय्यनुकरणात्मनो हि रसा इष्यन्ते, ते च प्रधानमिति तल्लक्षणमुखेनैव तेषां स्वरूपावगमसिद्धेः, तेषां बिम्बप्रतिबिम्बन्यायेनावस्थानात् । -व्य0वि0,पृ073

(6) अ0 व0, पृ0 536

संस्कृत- अलंकार शास्त्र में ' प्रतिबिम्ब ' का प्रयोग ही आधुनिक 'बिम्ब' के निकट है।[1]

भोज , शब्दालंकार-निरूपण के प्रसंग में 'छायोन्ति ' के माध्यम से बिम्बात्मक शब्द-प्रयोगों का विवेचन करते हुए--- से प्रतीत होते हैं । 'छाया' एक अनुकृति है।[2] 'बिम्ब' भी कोई वस्तु न होकर एक मानसी प्रतिमा ही है।[3] अनुकरणात्मिका वृन्ति उभयत्र विद्यमान है । वाक्यों का अनुकार या प्रतिबिम्ब ही 'छाया' पद से यहाँ अभिप्रेत है ।[4] इस प्रकार शब्दों में भेद होते हुए भी अर्थ-साम्य के कारण आज का यह काव्य- 'बिम्ब' भारतीय 'प्रतिबिम्ब' के अत्यधिक समीप है । लोक, छेक, अर्भक, उन्मन्त, पोट और मन्तोन्ति ये सभी छायोन्ति के छः भेद बिम्बात्मक है ।[5] यहाँ एक लोकोक्ति छाया का संकेत मात्र पर्याप्त होगा ।

शापान्तो मे भुजगशयनादुस्थिते शार्ङ्पाणौ ।
मासानेतान्गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ।।[6] -

यहाँ ' लोचने मीलयित्वा ' (आँख मीचकर) एक लोकप्रचलित प्रयोग है, जिसका उपयोगाकाव्य-बिम्ब के रूप में हुआ है । शीघ्र समागम की संभावना एवं चार माह की अल्प अवधि को आसानी से काटने की भाव-व्यंजना ही इसका प्रयोजन है । इस प्रकार भोज की दृष्टि में प्रतिभाशाली कलाकार सामान्य लोक-जीवन या दैनन्दिन व्यवहार, कहीं से भी बिम्ब-ग्रहण कर सकता है।[7]

इसके अतिरिन्त ' अर्थव्यन्ति' गुण की विशेष विशद एवं बिम्बधर्मी परिभाषा[8] ,अर्थालंकारों

---

(1) का0 वि0 , पृ0 40
(2) 'अन्यो-क्तीनामकुकृतिश्छाया' । स0 क0 2/36
(3) प्रिय0 एन्सा0 पो0, पृ0 363
(4) ' लोके बिम्ब-प्रतिबिम्बयोः प्रतिबिम्बं चमत्कारितया प्रसिद्धम् ' । अतएव श्रव्यात्प्रेक्ष्यं ज्यायः 'इत्याह। शब्दालंकारकाण्डे वाक्यानुकरणमेव प्रतिबिम्बवाचिना छायापदेन गुणवृन्तेनाख्यायते'।-रामसिंह स0क0,2/39की टीका
(5) अग्निपुराण मे शब्दालंकार के रूप में 'छाया' का विवेचना उपलब्ध है। वहाँ उसके चार भेद किये गये हैं वो इस प्रकार हैं:-
तत्रान्योक्तेरनुकृतिश्छाया सापि चतुर्विधा । लोकच्छेकार्भकोक्तीनामेकोक्तेरनुकारतः ।।-342/2।
आभाणकोक्तिलोकोन्तिः सर्वमामान्य एव ताः । यानुधावति लोकोन्तिश्छायामिच्छन्ति तां बुधाः।।-342/22
(6) उ0 मेघ- 47
(7) तुलनीय-' "It (iamage) may be a simple analogy from everyday things 'they' ll take suggestion as a cat laps milk'.- शैक्स0 इ0 पृ0 5
(8) ' अर्थव्यन्तिः स्वरूपस्य साक्षात्कथनमुच्यते' । स0 क0 पृ0 76

में सर्वप्रथम जाति या स्वाभावोक्ति का ही निरूपण[1] और प्रत्यक्ष , नामक अलंकार की प्रतिष्ठा[2] ऐसे तथ्य है जिनसे भोज की बिम्ब-विषयक धारणा का पता चलता है और जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय आलोचकों की दृष्टि से काव्य का ऐन्द्रिय तन्त्व ओझल नहीं था जिसके प्रति आज के कुछ समीक्षक या अनुसंधाताओं को भ्रान्ति हैं, [3] भोज के द्वारा प्रत्यक्ष अलंकार के लिए दिया गया " क्रान्तकान्तवदनप्रतिबिम्बे---' आदि शिशुपालब्ध का उदाहरण पंचज्ञानेन्द्रियों से सम्बिन्धित दृश्य, आघ्रेय आदि विषयों का सुन्दर संश्लिष्ट बिम्ब है ।

सरस्वतीकण्ठाभरण में 'उपमान' विश्लेषण के प्रसंग में भी, ' अभिनय' ' आलेख्य', 'मुद्रा' और 'बिम्ब' का निरूपण किया गया है । वक्ता अपने अभिप्राय को अधिक स्पष्ट करने के निमिन्त वाणी के साथ-साथ हाथ आदि शारीरिक अवयवों से कुछ संकेत या चेष्टाएं भी करता है, यहीं ' अभिनय ' है 'आलेख्य' चित्र है । 'मुद्रा ' से आशय चिन्ह से है। ' बिम्ब' का प्रयोग प्रतिबिम्ब के अर्थ में हैं। अभिनय, आलेख्य , मुद्रा और बिम्ब ये सभी अपने मूलवस्तु के ही अनुरूप होते हैं । इसीलिए यहाँ सर्वत्र सादृश्य अनुस्यूत रहता है । अर्थ-ज्ञान में उपमान के समान ही सहकारी होने के कारण इनका उपमान से पार्थक्य नहीं[4] है । वास्तव में, भोजराज के ये अभिनयादि चतुष्टय बिम्ब के ही दूसरे रूप हैं।

पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार- बिम्बन व्यापार कवि-कर्म का अविच्छेद्य अंग है । अस्तु , सभी काव्यालोचकों ने उस पर अपने-अपने ढंग से विचार व्यक्त किया है, जिसका समीक्षण किया जा चुका है । अब काव्य-लक्षणों के सन्दर्भ में भी बिम्ब-विषयक चिन्तन आवश्यक प्रतीत होता है । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि कवि की अदृश्य, सूक्ष्म भाव-सम्पत्ति'शब्दार्थों' के माध्यम से ही प्रत्यक्ष-गोचर एवं सहज-संवेद्य बन पाती है । इसलिए , चाहे अभीष्ट अर्थ के अविकल उपस्थापक पद -समूह हों [5] , या शब्दों और अर्थो का सहभाव[6] अथवा रसात्मक वाक्य[7] आदि ये सभी कवि-कर्म

---

(1) 'नास्त्येवासावर्थालंकारो यःस्वरूपं नाश्रयतइति प्राथम्यं जातेरेवेत्याह' ।-रामसिंह,स0क0,पृ0312

(2) प्रत्सक्षमक्षजं ज्ञानं मानसं चाभिधीयते ।
स्वानुभूतिभवं चैवमुपचारेण कप्यते ।। - सह0 क0 3/46

(3) तु0 वि0, पृ0 322

(4) स0 क0 , 3/51

(5) शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली ।- काव्या, 1/10

(6) शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् ।- काव्यालंकार, 1/16
ननुशब्दार्थो काव्यं । रूद्रट, काव्या0, 2/1
तददोषौ शब्दार्थौ, सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि । मम्मट, का0 प्र0, पृ0 13
निर्दोषं गुणवत्काव्यमलंकारैरलंकृतम्
रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति ।। - स0 क0, 1/2

(7) वाक्यं रसात्मकं काव्यम् । - सा0 द0, पृ0 19

बिम्बात्मक ही होते हैं । यही कारण है कि भारतीय काव्यालोचन के अलंकार्य और अलंकार उभय सम्प्रदायों का[1] बिम्ब-सिद्धान्त के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है । फिर भी यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय काव्य-चिन्तन धारा में पण्डितराज जगन्नाथ की प्रतिभा का संस्पर्श होते ही, काव्यमीमांसा के क्षेत्र में बिम्ब को स्पष्टतः प्रतिष्ठा प्राप्त हुई । उनके काव्य-लक्षण -परक वाक्यों पर दृष्टिपात करने से यह तथ्य स्वतः प्रकाशित हो सकेगा । काव्य को पूर्णरूप से परिभाषित करने हेतु उन्होंने तीन वाक्य लिखे हैं :-

" रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम् । रमणीयता च लोकोत्तराह्लादजनक- ज्ञानगोचरता, लोकोन्तरत्वं चाह्लादगतश्चमत्कारत्वापरपर्यायोऽनुभवसाक्षिको जाति विशेषः।[2] अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द ही काव्य है । अलौकिक आनन्दोत्पादन में समर्थ ज्ञान की गोचरता ही रमणीयता है और सहृदय-संवेद्य चमत्कारत्वापरनामा यह लोकोत्तर काव्यानन्द अनुवृत्ति-प्रत्ययरूप (विभिन्न वस्तुओं में एकाकार प्रतीति) एक जाति-विशेष है ।

काव्य के सामान्य लक्षणपरक प्रथम वाक्य में रमणीयार्थ महत्त्वपूर्ण पद है । उसकी विवृत्ति के निमित ही आगे ' गोचरता' और ' अनुभवसाक्षिक ' पदों का प्रयोग किया गया है । अलौकिक आनन्दोत्पादकअर्थज्ञान की सार्थकता उसके गोचरत्व या प्रत्यक्षायमाणत्व में है । गोरचता चाक्षुष ऐन्द्रिय धर्म है । काव्यार्थ-ज्ञान में चाक्षुषत्व तभी संभव है, जब वह बिम्बात्मक हो, रूपधर्मता-युक्त हो । रूपात्मक छबि के अभाव में काव्यार्थ की अनुभावात्मक प्रतीति सहृदय की विस्तृत चित्त भूमिका पर अखण्डतया प्रतिफलित नहीं हो पाती । यही कारण हे कि काव्य-मर्मज्ञ रसगंगाधरकार ने सोद्देश्य 'गोचरता' शब्द का सन्निवेश कर काव्यार्थ-के रूपतत्त्व की महत्ता को निरूपित किया है । स्पष्ट है कि काव्यार्थ में रामणीयत्व तभी उद्भासित हो सकेगा जब उसमें बिम्बात्मकता हो। काव्यार्थ की रमणीयता का यही रहस्य है । जो रूप अनुभव में परिणत हो पाता है वही तो रमणीय है ।

इसके अतिरिक्त , पण्डितराज को केवल वाच्य-बिम्बों की ही स्थूल प्रतीति भर अभीष्ट नहीं है, अपितु, सूक्ष्म प्रतीयमान बिम्बों का बोध भी अभिप्रेत है । इसलिए उन्होंने ज्ञान शब्द का प्रयोग किया है । वस्तुतः, कविता के आधार-तत्व भाव, विचार और संवेदन हैं । मानसिक संस्थान भी तीन

---

(1) अ० मी० , पृ० 94-99

(2) रसगं०, पृ० 10-11

(3) र०का० अ०-पृ० 36

प्रकार का होता है - भावात्मक, बोधात्मक और क्रियात्मक । भाव का सम्बन्ध सहृदय से है, ज्ञान का बुद्धि से और संवेदन का इन्द्रियों से । मनुष्य का सम्पूर्ण अर्जित ज्ञान विषयेन्द्रिय-सम्पर्क-जन्य संवेदन के प्राथमिक तल से प्रारम्भ होकर क्रमशः भावात्मक और बौद्धिक, स्तर तक पहुँचता है । पण्डितराज को यहाँ काव्यार्थानुभव में ज्ञान या बोधात्मक अवयव अभिप्रेत है [1] यह उचित है क्योंकि , बोध एवं अनुभूति की सर्वथा स्वतन्त्र तथा परस्पर-निरपेक्ष कल्पना करना अनुभव-विरूद्ध लगता है । काव्यार्थ के अनुसंधान में बुद्धि की सक्रियता अनिवार्य है ।

दृष्टान्त अलंकार के लक्षण में भी ' बिम्ब' का समानधर्मी प्रतिबिम्ब शब्द मिलता है ।[2] निदर्शना[3] और उपमा-विवेचन[4] के सन्दर्भ में भी ' बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव' की चर्चा की गयी है । 'बिम्ब' मूल वस्तु-उपमेय के लिए और " प्रतिबिम्ब" उसकी प्रतिकृति छाया अर्थात् उपमानस्थानीय रहता है।[5] इस " बिम्ब प्रतिबिम्बभाव ' का आधार सादृश्य ही है ।[6]

काव्य शास्त्रियों के अतिरिक्त स्वयं आदि कवि की दृष्टि में भी बिम्ब का मूल्यांकन उचित होगा । महाकवि वाल्मीकि ने ' बिम्ब' शब्द का प्रयोग प्रतिबिम्ब के अर्थ में ही किया है :-

रूपलक्षणसम्पन्नौ मधुरस्वरभाषिणौ।
बिम्बादिवोत्थितौ बिम्बौ रामदेहात्तथापरौ ।।[7]-

'कुश और लव रूप, लक्षण एवं मधुर स्वर की समानता के कारण राम के शरीर से उत्पन्न दूसरे राम ही जैसे थे, यहाँ राम के शरीर से कुश-लव के शरीर में किसी प्रकार की विभिन्नता नहीं है, सिवाय इसके कि , दोनों का शरीर मात्र पृथक् है । "बिम्ब" के अनुरूप ही "प्रतिबिम्ब" होता है । इस तरह वाल्मीकि की दृष्टि में सफल बिम्ब-विधान वहीं संभव होता है जहाँ, वर्ण्य का ठीक-ठीक उसके आकार-प्रकार ,रूपरंग आदि के साथ उनके अन्तःस्वरूप का भी वर्णन किया जाय अथवा प्रस्तुत के अनुरूप

---

(1) र० का० अ०,-पृ० 36

(2) दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम् ।- का० प्र०, पृ० 636

(3) संभवताऽसंभवता वा वस्तुसम्बन्धेन गम्यमानं प्रतिबिम्बकरणां निदर्शना । -अ०स०,पृ० 269

(4) उपमा-निरूपण।-रसगं०, पृ० 282-84 तथा चि० मी०, पृ० 86

(5) बिम्बं शरीरं प्रतिबिम्बं तच्छाया तयोर्भावः बिम्बप्रतिबिम्बत्वमित्यर्थः आकारप्रत्याकारतुल्यत्वमिति यावत् । - का० प्र०, टिप्पणी पृ० 636

(6) वस्तुतोभिन्नयोर्धर्मयोः परस्परसादृश्यादभिन्नतयाध्यवसितयोर्द्विरूपादानं बिम्ब प्रतिबिम्बभावः । चि०मी०पृ०-89

(7) वा०रा०1/4/11

ही समान विशेषताओं से युन्क्त प्रभावोत्पादक अप्रस्तुतों का विधान किया जाए । पर हर दशा में वे बिम्ब-शिल्प के लिए रूपवन्ता या ऐन्द्रिय-संवेद्यता को आवश्यक मानते थे।[1] और जिसका प्रमुख आधार था सादृश्य । इसका अर्थ यह हुआ कि जिस भाव को मूर्तित करने के लिए जिन शब्दार्थों की योजना की जाती है वे, मूल भाव को अविकल रूप से उपस्थित करने में यदि समर्थ हैं, तभी वह सफल-बिम्ब-विधि कही जायेगी अन्यथा नहीं ।

निष्कर्ष यह निकला कि बिम्बन शिल्प काव्य-क्रिया का अविच्छिन्न अंग है । रूपवत्ता, प्रत्यक्ष तुल्यता अथवा ऐन्द्रिय संवेदन उसकी प्रमुख विशेषता है । काव्योद्भव के प्रारम्भ से ही संस्कृत कवियों एवं काव्यालोचकों का पर्याप्त ध्यान काव्य के इस दृश्य तन्त्व की ओर रहा है । व्यापक अर्थ में प्राचीन भारतीय बिम्बन शिल्प के अन्तर्गत रस : ध्वनि, अलंकार, रीति आदि समस्त रचना विधयों का समाहार हो जाता है किन्तु सीमित अर्थ में अलंकारों के रूप में ही संस्कृत कवियों का बिम्बन कर्म प्रतिफलित हुआ है । [2]

जैसा कि हम ऊपर उल्लेख कर चुके है कि पारिभाषिक रूप में बिम्ब शब्द का सर्व प्रथम प्रयोग हिन्दी साहित्य के आलोचना क्षेत्र में हुआ और उसका सर्व प्रथम प्रयोग आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया ।

काव्य का काम है कल्पना के बिम्ब 'इमेज' या मूर्त भावना उपस्थित करना, बुद्धि के सामने कोई विचार लाना नहीं ।[3] उन्होने कहा था कि " काव्य में अर्थ ग्रहण मात्र से काम नहीं चलता बिम्ब-ग्रहण अपेक्षित होता है जहां कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओं के अंग , प्रत्यंग , वर्ण , आकृति तथा उसके आस पास की परिस्थिति का परस्पर संश्लिष्ट विवरण देता है"।[4] साथ ही बिम्ब जब होगा तब 'विशेष ' का होगा, सामान्य या जाति का नहीं ।[5] इस चित्रण कला के लिए दृश्य धर्मता को

---

(1) चिरनिर्वृन्तमप्येतत्,प्रत्यक्षमिव दर्शितम् :वा0रा0 1/4/18

(2) इ0पो0इ0ए0पृष्ठ0 ।

(3) रस0 पृ0 310

(4) चि0 प्र0 भा0 , पृ0 147-148

(5) रस0, पृ0 310

वे आवश्यक मानते थे किन्तु उसका प्रयोग समस्त ज्ञानेन्द्रियों के लिए व्यापक अर्थ में करते थे । दृश्य शब्द के अन्तर्गत केवल नेत्रों के विषयों का ही नहीं, अन्य ज्ञानेन्द्रियों के विषयों (जैसे शब्द गंध रस) का भी ग्रहण समझना चाहिये।[1] इतना ही नहीं, आचार्य शुक्ल ने बिम्ब-निर्माण प्रक्रिया का भी संकेत प्रत्यक्ष रूपविधान, स्मृत-रूप-विधान और कल्पित-रूप-विधान, इनतीन सोपानों का उल्लेख करते हुये किया है ।[2] इन्हें बिम्बों का वर्गीकरण नही माना जाना चाहिये ।[3] इसलिये डा० नामवरसिंह[4] का यह कथन कि " आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कविता में पुनः विभाजन व्यापार की प्रतिष्ठा की । सन्दर्भ भेद से इसी लिये उन्होने 'मूर्तिमन्ता' और 'बिम्ब ग्रहण' शब्दों का भी प्रयोग किया, तथा बहरहाल, शुक्ल जी के समय तक हिन्दी में काव्य के मूल्यांकन के लिये, मूर्तिमन्ता की कसौटी पूरी तरह प्रतिष्ठित हो चुकी थी, तर्क सम्मत है ।

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने भी काव्य को " सौन्दर्यमय " चित्रण माना है- " काव्य तो मानव अनुभूतियों का नैसर्गिक, कल्पना के सहारे ऐसा सौन्दर्यमय चित्रण है जो मनुष्य मात्र में स्वभावतः अनुरूप भावोच्छ्वास और सौन्दर्य संवेदन उत्पन्न कर देता है ।[4] यह सौन्दर्यमय चित्रण ही बिम्बन-शिल्प है । जय शंकर प्रसाद [5] ने भी " कवित्व वर्णमय चित्र है " कहा है । रामधारी सिंह दिनकर की दृष्टि में कविता की बिम्ब धर्मिता ही उसे सुन्दरतम बनाती है । उनका कथन है । कि जो ज्ञान चित्र में परिवर्तित नहीं किया जा सकता, वह कविता के लिये बोझ बन जाता है । इसलिये जिस कविता में जितने चित्र उठते हैं उसकी सुन्दरता भी उतनी ही अधिक बढ़ जाती है । [6]

इस प्रकार इस तत्तत् संस्कृत ग्रन्थो के परिशीलन से स्पष्ट है कि कवि की सहजानुभूति अभिव्यन्क्त होते समय अनायास बिम्ब में प्रकट होती है । बिम्ब- विधान के द्वारा भाव, प्रभविष्णु और विचार प्राणवन्त हो उठते हैं, कोई भी उन्क्ति अभिनवता और मूर्तिमन्ता के कारण बिम्ब का पद प्राप्त कर सकती है । कथन के जिस प्रकार से मन में एक तस्वीर सी खिच जाये जो सरलता के साथ प्रेषणीय बन जाय, वह सब बिम्ब की परिधि में आ जाता है।

---

(1) चि०-11 , पृ० 1
(2) रस०, पृ० 260.
(3) जा० वि० यो० पृ० 71
(4) न० न० पृ०, 18
(5) स्क० , पृ० अंक, पृ० 20
(6) का० भू० पृष्ठ -09

पाश्चा-त्य-दृष्टिः-

जैसा कि प्रारम्भ में ही उल्लेख किया जा चुका है, बिम्बन -शिल्प कवि-कर्म का अविच्छेद्य अंग है किन्तु , काव्य-शास्त्रियों ने इस काव्य-तन्त्व को कब किस रूप में मान्यता प्रदान की, इसकी गवेषणा बहुत मह-त्वपूर्ण है ।

पाश्चात्य आलोचनाशास्त्र में बिम्ब-विधान को पहले काव्य का बहिरंग अलंकरण ही माना जाता था । सी0डी0लुईस ने एलिजवेदिअन पीरियड् में बिम्ब-विधान की स्थिति का उल्लेख करते हुए कहा है कि सिडनी[1] बिम्बन-शिल्प को काव्य के साधन के रूप में मानता था । वहीं पर उस काल के बिम्बन-शिल्प सम्बन्धी सामान्य दृष्टिकोण की चर्चा करते हुए उसने पुटेनहम[2] के विचारों को भी उद्धृत किया है, जिसके अनुसार बिम्ब भाषा का आलंकारिक प्रयोग है । स्वयं सी0डी0 लुईस ने भी लिखा है कि बिम्बन-शिल्प काव्यालोचन के क्षेत्र में अठारवीं शती के पूर्व तक अलंकार रूप में ही स्वीकृत था ।[3] रोमान्टिक मूवमेन्ट के पश्चात् बिम्ब को काव्य का आन्तरिक तत्त्व मानने की प्रवृन्ति बढ़ी । तथापि, बिम्ब-विधान की दृष्टि से प्रकारान्तर से अलंकारों का ही अध्ययन कतिपय आलोचकों ने किया ।[4] केरोलिन स्पर्जियन[5] ने व्यापक अर्थ में बिम्ब का प्रयोग किया है जिसके अन्तर्गत समस्त सादृश्यमूलक-उपमा, रूपक आदि अलंकारों का समावेश है । मिडिल्टन मरी[6] ने स्पर्जियन की तरह बिम्ब की परिधि को स्वीकार करते हुए भी कल्पनाशन्ति की सर्वाधिक विलक्षणता के परिणामस्वरूप उसे उपमा एवं रूपक की अपेक्षा कहीं अधिक महत्व प्रदान किया । इस प्रकार अपने उद्भवकाल में आलोचकों की दृष्टि में जो बिम्ब-विधान भाषा की साज-सज्जा का मात्र बहिरंग पक्ष था, वह उत्तरोत्तर विकास करते हुए कवि द्वारा प्रयुन्त समस्त शिल्प-विधियों से संयुन्त होकर व्यापक अर्थ में

---

(1) पो0इ0, पृ0 84

(2) पो0 इ0, पृ0 84

(3) पो0 इ0 पृ0 84

(4) इ0 की0 शै0, पृ0 4

(5) शेक्स0 इ0 पृ0 5

(6) क0 मा0पृ0 4

कलाकार की अभिव्यक्ति का पर्याय-सा बन गया । जेम्स आर0 क्रूयूजर ने इसे कविता का समग्र रूप से व्यवस्थित एक अंग माना है।[1] कुछ भी हो, पर बिम्ब सर्वदा कविता का बाह्यपक्ष ही था । वह साधन रूप में ही मान्य था ।[2] इसीलिए आलोचक रेनेवेलेक का निष्कर्ष बड़ा महत्वपूर्ण है कि बिम्ब-विधान किसी कविता की संरचना का नियामक तत्व है । वह शैली के स्तर की चीज है और उसका अध्ययन साहित्यिक कृति की समग्रता और अखण्डता के एक तत्व के रूप में ही किया जाना चाहिए ।[3] किन्तु यह भी महत्वपूर्ण बात है कि अभिव्यक्ति की कला होते हुए भी बिम्बन-शिल्प की महत्ता उसकी भावान्विति के ही कारण थी । अनुभूति से सर्वथा कटकर केवल भाषिक चमत्कार हेतु प्रयुक्त बिम्ब कभी आदरणीय नहीं हो सका । समीक्षक लुईस ने बिम्बन-शिल्प और भाव के सहज सम्बन्ध एवं स्वाभाविक प्रस्फुरण के सन्दर्भ में कीट्स[4] के विचारों का उल्लेख किया है, जो अतिशय महत्त्वपूर्ण है । भाव की सहज् अभिव्यक्ति का माध्यम होकर भी पाश्चात्य-आलोचना-जगत् में यह बिम्ब विधान बुद्धि- निरपेक्ष नहीं रह सका । समीक्षक फ्रेंक कमोर्ड की स्थापना इस सम्बन्ध में विशेष महत्व रखती है, जिसमें उन्होने बिम्ब का बौद्धिक अर्थ के साथ वही सम्बन्ध निरूपित किया है जैसा 'नर्तक का नृत्य के साथ '[5]

इस प्रकार स्पष्ट है कि पाश्चात्य समीक्षालोक में बिम्ब-विधान भावनात्मक और वैचारिक अन्तः-समन्विति के साथ काव्य का एक व्यापक तत्व है, फिर भी साधन है साध्य नहीं, अलंकरण है अलंकार्य नहीं ।

(1.) ए0पो0 , पृ0 121 व 124 उद्घृत छा0 का0 पृ0 276

(2.) 'The image is only a means; it is an instrument by which precisionof emotional effect is obtained". - प्र0 स्टा0 , पृ0 100

(3.) "Like metre, imagery is one component structure of a poem. In terms of our scheme,it is a part of the syntactical, or stylistic,stratum. It must be studied, finally,not in isolation from the other strata but as a element in the totality, the integrity of the literary work". -थि0लि0,पृ0211

(4.) 'The rise, the progress, the setting of imagery should like the sum come natural to him,shine over him and set soberly, although in magnificience, leaving him in the luxury of twilight'.- - पो0 इ0, पृ0 75

(5) The image, Iam at present, in a very general way, discussing, is without simple intellectual content, bearing the same relationship to the thought as the dancer bears to the dance. As in the dance, there is no disunity of being, "the body is the soul".- रो0 इ0 पृ0 84

चतुर्थ अध्याय

रामायण पूर्व-वैदिक साहित्य में प्रतीकात्मक बिम्ब

चतुर्थ अध्याय

रामायण पूर्व-वैदिक साहित्य में प्रतीकात्मक बिम्ब

क- वेद

ख- ब्राह्मण

ग- आरण्यक

घ- उपनिषद

(क) वेद :-

भारतीय काव्य-बिम्ब के प्रथम उन्मेष का दिव्य दर्शन हमें वैदिक वाङ्मय में उपलब्ध होता है ।

वैदिक ऋषि साक्षात्कृत धर्मा थे उनकी तल स्पर्शिनी मेधा के लिए कुछ अज्ञेय नहीं था । सृष्टि के न केवल वाह्य अपितु आभ्यन्तरिक सौन्दर्य के भी वे अद्भुत पारखी थे ऋग्वेद का प्रत्येक मंत्र इसका साक्ष्य देता है । ऋग्वेद की प्रत्येक ऋचा में यह विशेषता अनस्यूत है । जिस भांति वैदिक ऋचाओं में प्राकृतिक हृद्यबिम्ब उभरे हैं उसी भांति उनमें अर्थ या भाव गत बिम्ब भी व्यक्त हुए हैं । वैदिक ऋषियों का जीवन अत्यन्त संघर्ष रहित एवं ऋजु था उनके जीवन की यह छाप उनकी ऋचाओं में पड़े वगैर न रही जिस सादगी एवं बेबाकी के साथ वैदिक ऋषि अपना अभिप्रेत व्यक्त करता है । उसमें काव्य के सभी तत्त्व अनायास ही सहज भाव से समाहित रहते हैं । सर्व प्रथम तों उन्होने इस विराट जगत को जो उस अज्ञात शक्ति का ही बिम्ब है उसको एक काव्य के रूप में उन्होंने साक्षात् कृत किया था, और उस अदृश्य सृष्टि काव्य के निर्माता को एक कवि के रूप में ।

कवि मनीषी परिभूः स्वयंभूः [1] इस श्रुति वाक्य में कवि शब्द परमेश्वर वाचक ही है । इसी तरह ऋषि इस विराट जगत के सौन्दर्य से अभिभूत होकर गाउठता है-

" देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति"[2] वेद परमदेव का वह दिव्य कार्य है जो अजर तथा अमर है ।

---

(1) ईशावास्योपनिषद मंत्र-9

(2) (अथर्ववेद 10/8/32) वेदवाणी पत्रिका पेज -17, वर्ष 44 अंक 5 माह मार्च 1992 पेज '17

इस नश्वर एवं क्षण क्षण परिवर्तन शील जगत् में वह ऐसे सौन्दर्य का साक्षात्कार करता है जो नष्ट होना तो दूर जीर्ण भी नहीं होता । सचमुच ही वैदिक ऋषि सच्चे अर्थ में कवि थे । फिर उनके काव्य में काव्य के सर्वाधिक प्रभावी तन्त्व काव्य बिम्बों के दर्शन क्यों न हों ।

यों तो सारा का सारा ऋग्वेद मनोरम काव्य की छटाओं से ओत-प्रोत है । किन्तु उसके कुछ सून्क तो काव्य की दृष्टि से भी इतने उत्कृष्ट हैं कि कोई भी काव्य मर्मज्ञ यह कहने के लिए बाध्य है कि ऋग्वेद की ऋचाये मंत्र ही नही उच्च कोटि की कविता भी हैं । उदाहरणार्थ उषस् सून्क , नदी सून्क , इन्द्र सून्क आदि में परःशत ऐसी ऋचायें देखी जा सकती हैं जो उच्च कोटि की कविता के उदाहरण हैं । उसमें भी ऋषियों के उदान्त चिन्तन एवं गहन अनुभूति के काव्यात्मक प्रस्फुरण की दृष्टि से ऋग्वेद काव्य का ही विशेष महन्त्व है । उसकी एक एक ऋचा वैदिक कवि की अलौकिक काव्य प्रतिभा का बिम्बात्मक निस्यंद है ।[1] वैदिक ऋषि सामान्य कवि नहीं हैं । उन्होने विराट् अर्थ में भूमा (ब्रह्म) का साक्षात्कार किया है । अपनी साक्षात्कृत अर्थानुभूति को वे पाठक के समक्ष उपस्थित करना चाहते हैं।[2] इसलिए स्वाभाविक है कि उनकी वाणी बिम्बात्मक हो । अमूर्त की मूर्त में अवतारणा ही सृजन का श्री गणेश है । वैदिक ऋषि का दर्शन मूर्तन व्यापार ही इस प्रक्रिया से ही सम्बद्ध है ।[3] ऋग्वेद का ऋषि इतना जागरूक है कि वह प्रत्येक सून्क की प्रत्येक ऋचा में तद्गत वर्ण्य विषय के साथ उसके अनुरूप छन्दो विशेष का भी चयन करता है ।

ऋग्वेद की ऋचाओं में वर्ण्य देवता के साथ हम उनके छन्द और ऋषि का परिज्ञान रखते हैं तभी उसकी भावानुभूति हमारे ह्रदय में बैठती है । यह आश्चर्य ही कहा जायेगा कि वैदिक ऋषि अपनी ऋचाओं में अपने वर्ण्य विषय देवता का भाव या अर्थगत् तथा वर्णन में भाषागत बिम्बन का समन्वय बनाये रखता है । वैदिक ऋचाओं में ऋषि , देवता, तथा छन्द की एकतानता सर्वत्र विद्यमान है । यही कारण है कि ऐसा प्रतीत होने लगता है जैसे वे देवता हमारी आंखों के सामने अपनी दिव्यता विकीर्ण कर रहे हों । इन सून्कों के उद्गार सूर्य, चन्द्र , द्यौः , अग्नि , मरूतः , आपः ऊषः आदि देवी देवताओं के प्रति तो हैं ही साथ ही दिन में दहकता सूर्य रात के आसमान में चमकता चांद, रसोई, जलती आग या फिर अग्नि कुण्ड से निकलती ज्वाला या काले बादल में से फूट निकली विद्युत रेखा, निस्तब्ध आकाश,

---

(1) वै०री०-पृष्ठ-28

(2) साक्षात्कृत धर्माण ऋषयो वभूवुः।

तैऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृत धर्मभ्यः उपदेशेन मंत्रान् संप्रादुः ।" नि० पृ० 30

(3) वे०वि०-पृष्ठ ।16 तथा इ०हे०, पृष्ठ-25-26

तारांकित निशा, गड़गड़ाते तूफान, स्वच्छन्द बहती नदियाँ, बर्षा की फुहार, ताजी-ताजी ऊषा और पुष्पों से भरी यह फैली पृथ्वी-प्रकृति के ये रूप हैं । जो इन सून्क्तों में स्तुति, उपासना, प्रार्थना का जैसे स्वयं विषय बन जाते हैं । बहुत धीमे-धीमे, शायद युगान्तर में , प्रकृति के आगमन में हो रही ये लीलाएं सूर्य, सोम, अग्नि, द्यौः, मरूतः वायुः , आपः उषा पृथ्वी के रूप में देवी एवं देवबन गये, किन्तु फिर भी उनका मूल (प्रकृति) रूप सर्वथा प्रच्छन्न नहीं हो सका ।[1]

वैदिक कवि की बिम्ब धर्मी जीवन्त भाषा की ही यह महिमा है, कि एक साथ स्थूल वर्ण्य-चित्र की मनोहर झॉंकी और उसकीगर्भ-गुहा में अवस्थित परोक्ष रहस्यार्थ उन्मीलित हो जाता है।[2]

वैदिक काव्य-बिम्ब अभिधा, लक्षणा और संकेत या प्रतीक पद्धति पर निर्मित हुये हैं । इसीलिये जहाँ एक ओर वेदों में जीवन के चिरन्तन प्रवाह का प्रकृति के विराटवैचित्र्य के साथ स्वाभाविक अभिव्यंजन प्रतीत होता है, वहीं दूसरी ओर उसकी काव्य ध्वनि का नितान्त गम्भीर एवं ओजस्वी विराट काल्पनिक रूप भी संग्राह्य होता है । वैदिक ऋषि का काव्य, कल्पना की विराट चमत्कृति से सम्पृक्त होने के कारण हीअत्यधिक आकर्षक है । [3] . जब कहा जाता है कि वेदात्मक काव्य अपौरूषेय है,[4] तो निश्चित ही उसके मूल में कवि की विराट् कल्पना आध्यत्मिकसंकल्पादर्शो से संग्रथित सर्वत्र चैतन्यवृन्तिता, सर्वजनीनहितकामिता, औदात्यसंवलित काव्यार्थ की अनन्तता आदि विशेषतायें ही हेतु हैं । यहाँ तक कि स्वभावोन्क्ति पद्धति पर सृष्ट वर्णनात्मक बिम्ब-विधान में भी अखिल भुवन कल्याण परक उदान्त भावना से अनुस्यूत अखण्ड चैतन्य की सूक्ष्म सन्ता का संकेत मिल जाता है ।

स्वभावोन्क्ति बिम्ब-

सर्व प्रथम वर्षा का एक चित्र दृष्टव्य है:-

प्रवाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः ।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथ्वीं रेतसावति ।।

---

(1) प्रा0भा0सा0 पृष्ठ 56

(2) ला0वे0, पृष्ठ 24 तथा वे0वि0, पृष्ठ 29

(3) स कविः काव्या पुरू रूपं द्यौरिव पुष्यतिनमन्तामन्यके सये । ऋ0 -म0 8/ अ041/ सू0 5

(4) आ0व0 पृष्ठ 8

अर्थात् हवायें चलती हैं, बिजलियाँ गिरती है । औषधियाँ अंकुरित होने लगती हैं, आकाश जल की बूंदें टपकाता है । इस प्रकार जब पर्जन्य पृथ्वी को जलाप्लावित कर देता है तो पृथ्वी सम्पूर्ण विश्व के कल्याण में समर्थ हो जाती है ।

इसी तरह,

सद्यो जांतस्य दद्रृशानमोजो यदस्य वातो अनुवाति शोचिः ।

वृणान्कि तिग्मामतसेषु जिह्वां स्थिरा चिदन्ना दयते विजृम्भैः ।।[1]

अर्थात् शीघ्र उत्पन्न अग्नि का पराक्रम देखते ही बनता है । जब वायु उसकी लपटों को हवा करता है । उस समय वह अपनी तीक्ष्ण जिह्वा से सूखी लकड़ियों को चबाता है । यहाँ तक कि खड़े बृक्षों को भी अपने दांतों से खा जाता है । यहाँ वन में विकराल अग्नि का बिम्ब है ।" जिव्हाम्" और " जृम्भैः (दातों से) इन दो विशेषणों से मानवीय व्यापार का आरोप करते हुये अग्नि की भंयकर सर्वग्रासिता को मूर्तित किया गया है । प्रथम बर्षा बिम्ब में भी पर्जन्य चेतन प्राणी की तरह पृथ्वी में रेतस् का आधान करता है और पृथ्वी भी चेतन की ही तरह निखिल भुवन का कल्याण करती है । सम्पूर्ण प्राकृतिक उपादान चेतन धर्मा प्राणी की भाँति कर्म करते हुये से दृष्टिगोचर होते हैं ।

बक्रोक्ति बिम्ब-

द्वितीय कोटि के बिम्बों में उभयात्मक प्रक्रिया पर विरचित काल्पनिक बिम्बों की रमणीयता दृष्टव्य है :-

एषा शुभ्रा न तन्वो निदानोर्ध्वेव स्नातीदृशये नो अस्थात्

अपद्वेषो बाधमाना तयांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात् ।।[2]

यहाँ उदित होती हुयी उषा को सद्यः स्नाता गौरांगी तरूणी के बिम्ब से उद्भासित किया गया है । द्वेषकारी अन्धकार को विनष्ट करके उज्जवल प्रकाश की किरणें विखेरती हुई स्वर्गकन्या उषा, वैसे ही नेत्रों को आनन्द प्रदान करतीहै जैसे, गौरवर्ण युवती सरोवर से बाहर निकलती हो और जिसके अंग भीगे वस्त्रों के शरीरावयवों पर संसक्त हो जाने के कारण बाहर से स्पष्ट झलक रहे हों ।

---

(1) ऋ-म० 4/अ -7/सू० 10

(2) ऋ-म० 5/अ० 80/सू 5

तरूणी - उषा के अवयव स्नानकाल में ही नहीं दिखते बल्कि, नृत्य बेला में भी उसकी मनोहारी आंगिक छवि दृष्टिगोचर होती है :-

अधि पेशांसि वपते नृतूरिवायोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम् ।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः ।।[1]

अर्थात् उषा अपने अनेक रूपों को प्रकट करती हुई अपने वक्ष कावैसे ही प्रदर्शन करती है, जैसे अपने दोहन काल में गाय अपने ऊधस् का ।

अंगो का प्रदर्शन मात्र उषा की प्रकृति नहीं है अपितु , एक सुसज्जित जाया के रूप में अपने प्रियतम के समक्ष वह अपने सम्पूर्ण अंगों को अनावृत कर देती है। अंग प्रदर्शन की युवती उषा की यह चरम स्थिति है :-

अभ्रातेव पुंसि एति प्रतीची गर्तारूगिव सनये धनानाम् ।
जायवे पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव निरिणीते अप्सः ।।[2]

इन तीनों बिम्बों के माध्यम से वैदिक कवि उषा की सर्वांगीण सौन्दर्यात्मक स्थिति को उद्घाटित करना चाहता है । उसके उदय, विकास और पूर्णता सभी आकर्षक हैं । सारा विश्व उषा के इन विविध मनोहारी रूप-छवियों का लोलुप है । अनादिकाल से उषा का यह रमणीय रूप दृष्टिगत होता आ रहा है, किन्तु उसमें कभी पुरानापन नहीं आया । उसके पुनः पुनः सौन्दर्य पान से भी रसिक जगत् कभी तृप्त नहीं हुआ । प्रकृति-उषा का यह नारी यौवन सर्वदा से ही पुरूष मन के आकर्षण का केन्द्र रहा है । यही वह अवस्था है जिसमें नारी सुलभ-लज्जा का क्रमिक विगलन प्रिय-मिलन में पर्यवसित होता है । इसीलिये, तो वैदिक कवि ने ऐसे रमणीय बिम्ब विधान के माध्यम से उषा के शाश्वत प्रदीप्त रूप को चित्रित करने के साथ ही युवती के आकर्षक सौन्दर्य, को उसके विविध विलास भंगिमाओं के साथ चित्रित किया है । वस्तुतः उषा की कल्पना वैदिक ऋषि की सर्वोत्तम काव्य कल्पना है ।[3]

---

(1) ऋ0 म0 1/ अ0 92 / सू 4

(2) ऋ0 म0 1/ अ0 124 / सू 7

(3) *In any Case , she is their most graceful creation, the charm of which is unsurparsed in the dircriptive religious lyrics of any other literature. Here there are no priestly subteties to obscure the brighness of her form , and few allurions to the sacrifice to mar the natural beauty of the imagery.*

हि0सं0लि0 पृष्ठ 81 (मैकडानल) तथा द्र0- वै0 दे0 पृष्ठ 106

आकाश में मडरा रहे मेघों की युद्ध स्थल के भटों से तुलना की गई है ।[1] वर्षा के समय जल के ऊपर तैरते हुये मेढ़कों की टर्र टर्र आवाज को शिष्य द्वारा अनुकृत शिक्षक की वाणी की तरह उपमित किया गया है ।[2] अग्नि की अनिगृह्यमाणता को बताने के लिये उसे मरूतों के शब्द के समान कहा गया है।[3] मूर्त प्रस्तुत करने के लिये मूर्त उपमान विधान करने के कारण सर्वत्र स्पष्ट बिम्ब बन पड़े हैं

प्राकृतिक उपादानों से गृहीत बिम्बों के अलावा इन्द्र वृत्र के युद्ध प्रसंग में भी सुन्दर काव्य बिम्ब गिलते हैं-

' वाश्राइवधेनवः स्पन्दमाना ऋञ्जः समुद्रमवजग्मुरायः '।[4]

जब इन्द्र ने पर्वत पर निवास करने वाले वृत्र को बज्र से मारा तो वछड़े की तरह तेजी से दौड़ने वाली रंभाती हुई गायों की तरह प्रवहमान जलराशि नीचे समुद्र की ओर जाने लगीं । यहाँ कल कल निनाद करती एवं वेग से बहती जलधारा के लिये रंभाती गाय का अप्रस्तुत विधान किया है । यहाँ गत्वर बिम्ब में दृश्यता और ध्वनि का संश्लिष्ट रूप है । नदी का समुद्र से मिलन बहुधा प्रिया-प्रिय मिलन के रूप में कल्पित किया गया है । यहाँ वैदिक कवि की कल्पना में गो-वत्समिलन की भांति माता पुत्र मिलन के रूप में नदी समुद्र सम्मिलन को देखा गया है । यह नूतन बिम्ब-विधान आज भी अपनी उर्वरता के कारण वही प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करता है । इसी तरह कुल्हाड़ी से काटे गये वृक्ष की शाखा की भांति इन्द्र के बज्र प्रहार से धराशायी वृत्र को चित्रित किया गया है ।[5] यह सामान्य जीवन के कार्य व्यापार से गृहीत बिम्ब है । उसी स्थल पर इन्द्र के ' शस्त्र संचालन की निपुणता और वृक्ष की तुच्छता को प्रतिबिम्बित करने के लिये इन्द्र को घोड़े की पूँछ के बाल से उपमित किया गया है :-

अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृकेयत्वा प्रत्यहन्देव एकः ।[6]

अश्व अपनी पूँछ निरन्तर हिलाता रहता है । उस समय तो अतित्वरा से उसको संचालित करता है जब कोई दंश आदि उस पर बैठ जाता है । उस समय वह अपनी पूछ के बालों के तीक्ष्ण आक्रमण प्रकम्पन से उसको ठहरने नहीं देता । कितना सहज, नित नवीन और भावकोद्दीपक बिम्ब

---

(1) रथीव कशयांस्वा अभिक्षिपन आविर्दूतान्कृणुते वर्ष्याअह । ऋ0- म0 5 /अ0 83/ सू 3
(2) यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शावतस्येव वदति शिक्षामाणः । ऋ0- म0 7/ अ0 103/ सू -5
(3) ऋ0 म0 /अ 143 / सू 5
(4) ऋ0 म0 1/ अ0 32/ सू0 5
(5) ऋ0 म0 1/ अ0 32/ सू0 12
(6) ऋ0 म0 1/ अ0 25 / सू0 04

है । अमूर्त प्रस्तुत के निमि-त मूर्त प्रस्तुत के विधान में भी आकर्षक बिम्ब मिलते हैं । एक उदाहरण द्रष्टव्य है:-

परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्य इष्टये । वयो न वसतीरूप [1]

अर्थात जैसे चिडियाँ अपने घोंसले की ओर उडती हैं उसी प्रकार हमारी क्रोध शून्य चिन्तायें धन प्राप्ति की ओर दौड़ती रहती हैं । इस उपमा मूलक बिम्ब में मनुष्य की अर्थ लिप्सा सहज ही प्रतिबिम्बित हो उठी है ।

उपमा के अतिरि-क्त वेदों में ऐसे कई स्थल हैं जहाँ रूपक या रूपकातिशयोन्ति शैली में भाव को व्य-क्त किया गया है । पर रूपकात्मक बिम्ब - विधान प्रायः आध्यात्मिक रहस्यों को उन्मीलित करने के लिये हुआ है ।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषष्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्व-त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।।[2]

अर्थात् ब्रह्म और जीव दो पक्षी की तरह संसार रूपी वृक्ष पर एक साथ निवास करते हैं । ब्रह्म रूपी पक्षी बृक्ष के फल सुख दुःख केवल देखता भर है और जीव उसका स्वाद लेता है । जीव तथा ब्रह्म सखा रूप में एक डाल पर स्थित हैं । फिर भी निर्लिप्त होने से ब्रह्म साक्षी मात्र है, द्रष्टा है, सुख दुःख से परे है । लेकिन जीव सांसारिक भोगों में लिप्त है, सुखादि का अनुभविता है । जीव जगत और ब्रह्म के रहस्य को इस रूपकात्मक बिम्ब-विधान के माध्यम से सुन्दर ढंग से समझाया गया है । दार्शनिक गूढ़ भाव भी बिम्ब योजना के माध्यम से सरल सम्प्रेषणीय बन जाता है , यह उदाहरण से स्पष्ट हैं । इसी सू-क्त में अन्य स्थल पर भी जीवगण को पक्षी और सूर्य को पिता या परमेश्वर बताते हुये यह व्य-क्त किया गया है कि जो इस पिता को नहीं जानता वह परमानन्द को प्राप्त नहीं करता ।[3] इसके अतिरिक्त वात्सल्य भाव के उदा-त चित्रण में भी इसी पद्धति का अवलम्बन लिया गया है :-

---

(1) ऋ0 म0 1/अ0 25/ सू0 4

(2) ऋ0 म0 1/अ0 64 / सू0 20

(3) ऋ0 म0 1/अ0 164/ सू0 22

संगच्छमाने युवती समन्ते

स्वसाराजामी पित्रोरूपस्थे ।

अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं

द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अम्वात् ।।[1]

अर्थात् जिस प्रकार आकाश और पृथ्वी सहोदर भाई बहिन की तरह एक दूसरे से मिले हैं और संसार के केन्द्र को धारण करते हैं । उसी प्रकार हमारे माता पिता बन्धुवत् मिल कर रहें तथा अपने से उत्पन्न बालक की नाभि का प्रेम से चुम्बन करें । यहाँ द्यावा-पृथ्वी का प्रेम माता पिता के प्रेम के समान चित्रित हुआ है पारिवारिक प्रेम की परिधि आकाश के समान व्यापक होकर उदात्त हो गयी है । पृथ्वी और आकाश सहोदर भाई बहिन की तरह मिले हुए हैं, इस कथन में प्रेम निःसीम आकाश को बांध रहा है । द्यावा भुवन की नाभि को सूँघ रहा है इस उक्ति मे स्नेह का कितना व्यापक रूप चित्रित हुआ है ।[2] दिवा रात्रि का वात्सल्य इस मंत्र मे इसी तरह की बिम्बात्मक विधा में देखिये :-

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुपधापयेते ।

हरिरन्यस्यां भवति स्वधावञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ।।[3]

अर्थात् दो विभिन्न रूप वाली स्त्रियाँ अपने शुभ प्रयोजन के निमित्त विचरण करती हैं । वे दोनों एक दूसरे के बच्चे को दूध पिलाती और पोसती हैं । एक की गोद में मनोहर श्याम रंग का बालक है और दूसरी की गोद में शुक्ल उज्जवल वर्ण का बालक । रात्रि के गर्भ से उत्पन्न बालक सूर्य का पोषण दिवा करती है और दिवा से उत्पन्न अग्नि का पोषण रात्रि करती है । दिवा और रात्रि के दो पृथक रूप हैं, गुण हैं । लेकिन दोनों का परस्पर सौहार्द जगती के कल्याण का कारण है । सृष्टि के मूल में वात्सल्य की यह विराट् कल्पना भारतीय प्राचीन कवियों की उदात्त अनवगीत भाववृत्ति का परिणाम है । इसलिये के0गी0 का यह कथन है कि - " अनुभूति की वह प्रथम स्त्रोतस्विता, रूपकों, वक्रोक्तियों की वह निर्भीक वृत्ति , कल्पना की वह उडान ---- "[4] अकारण नहीं है।

---

(1) ऋ0 म0 1/ अ0 185/सू0 5

(2) का0 सौ0 उ0 पृष्ठ 143

(3) ऋ0 म01/ अ0 95/ सू0 1

(4) प्रा0 भा0 सा0 पृष्ठ-55

भाविक बिम्ब-

भावना प्रधान बिम्बों की भीऋग्वेदिक काव्य में कमी नहीं है । इस दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट रचना दशम मण्डल के 34 वे सून्क्त की मानी जा सकती है, जहाँ अनुतापदग्ध जुआड़ी अपनी दयनीय दशा का प्रतिबिम्बन स्वयं स्वगत भाषण के रूप में कर रहा है । द्यूत व्यसन से उसकी सुख-शान्ति समाप्त हो गयी है । वह चाहते हुये भी इस दुर्व्यसन का परित्याग नहीं कर पा रहा है । बल्कि इन अक्षों की आसन्क्ति के कारण वह अपनी पतिब्रता पत्नी का भी परित्याग कर चुका है ।[1] अब उस द्यूतकार की दशा अत्यन्त चिन्त्य है- सासुद्वेष करती है, पत्नी घर आने से रोकती है, कोई दयालु उसकी सहायता नहीं करता ।[2] दूसरे जन उसकी स्त्री का आलिंगन करते हैं । माता, पिता, भाई सभी उसके विषय में कहते हैं कि हम इसको नहीं जानते, इसे बांध कर ले जाओं।[3] आत्मीय जनों और समाज के सभी वर्गो से उपेक्षित होकर वह जुआड़ी इधर उधर भटकता फिरता है । पत्नी और माता अलग परेशान। अन्त में धन के लिये वह रातो में दूसरों के घरों में चोरी करने के लिये पहुँचता है :-

> जाया तप्यते किंकर्तव्यस्य हीना माता पुत्रस्प चरतः क्व स्वित् ।
> ऋणावा विम्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति ।।[4]

दूसरों की सुन्दर सुसज्जित स्त्रियों और सुन्दर गृहों को देखकर वह दुखी होता है, किन्तु इस द्यूतकीड़ा के बिनाशकारी दुर्व्यसन को नहीं छोड़ पाता और रात्रि के समय शीत से ठिठुरता हुआ कहीं आग के पास सोकर रात काटता है ।[5] एक जुआड़ी के सूक्ष्म मनोभावों को बड़ी सफलता के साथ यहाँ निरूपित किया गया है । ऋचाओं में करूणा की मार्मिक अभिव्यंजना अपनी सफल बिम्बात्मक विधा में हुई है । स्पष्ट है कि वैदिक कवियों की वाणी केवल धार्मिक विषयों या देव परक स्तुतियों में ही प्रयुन्क्त नहीं हुई है अपितु , लोकजीवन की सच्चाई का तथ्यात्मक भावपूर्ण चित्रण उनकी कविताओं में हुआ है । इसलियें ओल्डन बर्ग का यह आरोप कि " जिन पुरोहितों का सम्पर्क ही लोक - जीवन से न हो उसकी कविता में लौकिकता अथवा सच्चाई कैसे आ सकती है ?[6] सर्वथा मिथ्या और असंगत है।

---

(2) ऋ0 म0 10/ अ0 34/ सू0 2

(2) ऋ0 म0 10/ अ0 34/ सू0 3
(3) ऋ0 म0 10/ अ0 34 / सू0 4
(4) ऋ0 म0 10/अ0 34/ सू0 10
(5) ऋ0 म0 10/ अ0 34 / सू0 11
(6) प्रा0 भा0 सा0 पृ0 55

अस्तु निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि ऋग्वेद साहित्य मुख्यतः देवता एवं धर्म प्रधान होते हुये भी प्राकृतिक तथा इतर-लोक- जीवन - विषयक उत्कृष्ट काव्य बिम्बों से पूर्ण समृद्ध है इसके बिम्ब-विधान की प्रक्रिया पर दृष्टि पात करने से ज्ञात होता है कि वर्णन- परक प्राकृतिक बिम्बों के अतिरिक्त मानवीकरण [1] की पद्धति बिम्बन शिल्प में विशेष सहायक सिद्ध हुई है । अलंकारों में बिम्ब-विधायक तत्व के रूप में उपमा का सर्वाधिक प्रयोग प्राप्त है । रूपकों का प्रयोग दार्शनिक एवं स्नेह , वात्सल्य आदि भावों के सम्मूर्तन में किया गया मिलता है । विशेषणों की सहायता से भी यत्र तत्र बिम्ब रचना की गई मिलती है । [2] स्वरूप की दृष्टि से दृश्य बिम्बों का प्राचुर्य है । ध्वनि परक बिम्ब भी बहुधा उपलबध हैं । स्पृश्य, आस्वाद्य, पेय, घ्रातव्य अपेक्षाकृत कम हैं । गतिशील तथा स्थिर चित्रों का भर पूर विधान है ।

(ख) ब्राह्मण :

ऊपर हमने वेद के संहिता भाग विशेष कर ऋग्वेद के मंत्रों में उभरे काव्य बिम्बों का निरूपण किया है। यों तो मंत्र और ब्राह्मण दोनोंकी सम्मिलित संज्ञा वेद है । कहा भी गया है। मत्र ब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम् ' अर्थात् मंत्र और ब्राह्मण दोनों का नाम वेद है ।इस तरह वेद शीर्षक में ब्राह्मण भाग का भी अन्तर्भाव हो जाता है । तथापि सुविधा की दृष्टि से हमने ब्राह्मण शीर्षक को पृथक निर्दिष्ट किया है ।

यह ज्ञातव्य है कि चारों वेदों के अपने अपने ब्राह्मण है । ब्राह्मण वेदों का भाग है जिनमें मंत्रों के अतिरिक्त अनेक भाष्य और विनियोग को भी स्थान दिया गया है ।

---

(1) वै0 दै0 , पृ0 2

(2) ऋ0 म0 10/अ0 34/सू0 7 तथा द्र0-सं0 म0 का0 पृ0 36

यहाँ पर हम वेदों के दो एक ब्राह्मणों से भी काव्य बिम्बों को उद्धृत कर रहे है जिससे यह स्पष्ट हो जायेगा कि ब्राह्मण ग्रन्थ केवल कर्मकाण्ड मात्र के प्रतीक ही नहीं उनमें भी काव्य बिम्ब यत्र तत्र अपनाये गये हैं ।

तं हत्रीन्गिरिरूपान विज्ञानिव दर्शयाञ्चकार । तेषां हैकैक-
स्मान्मुष्टिनाऽऽददे स होवाच भरद्वाजेत्यामन्त्र्य ।
वेदा वा एते अनन्तावै वेदाः । एतद्वा एतैस्त्रिभिरायुर्भि रन्ववोचथाः
अथत इतर दननूक्तमेव ।[1]

उपर्युक्त तैतरीय ब्राह्मण के इस अंश में काव्यात्मक भाषा में बिम्बोपस्थापन दर्शनीय है । इस मंत्र भाग में ऋषि यह कहना चाहता है कि वेदो का ज्ञापन इतना अनन्त तथा असीम है । अनन्त जन्मों में भी उसको प्राप्त करने की चेष्टा पहाड़ को मुट्ठीभर वालुका के रूप में समेटने के समान है अर्थात् जिस तरह पर्वत की दो तीन मुट्ठी वालुका विशाल पर्वत के समक्ष नगण्य है उसी भांति श्रुतियों की अगाध ज्ञान राशि की प्राप्ति चेष्टामें मनुष्य का अध्ययन प्रकार अकिंचित् कर है । निम्न मंत्र भी तैत्तरीय ब्राह्मण से उद्धृत है । जिसमे धेनुतर्पण के दृष्टान्त के रूप मे अग्निहोत्र की प्रक्रिया को काव्यात्मक रूप दिया गया है । ऋषि कहता है कि जो व्यक्ति किसी देवता के उद्देश्य से अग्निहोत्र करता है वह मानो तीर्थ में गाय को तृप्त करता है ।

" सर्वाभ्यो वा एस देवताभ्यो जुहोति । योऽग्निहोत्रं जुहोति । यथा खलु वै धेनुं तीर्थे तर्पयति एवग्निहोत्री यजमानं तर्पयति तृप्यति प्रजया पशुभिः । प्र सुवर्गलोकं जानाति । पश्यति पुत्रम् । पश्यति पौत्रम् प्रजया पशुभिर्मिथुनैर्जायते "[2]

जैमिनीय ब्राह्मण के निम्नलिखित अंश में जो शब्दचित्र अंकित हैं वे प्रसाद गुण से भरपूर तो हैं ही उसका अभिप्राय गद्य के रूप में होकर भी संगीत लहरी को उत्थापित करता है । कुल मिलाकर " शब्दार्थौ काव्यं " का एक अच्छा उदाहरण है ।

---

(1) तैतरीय ब्राह्मण 3/10/11/45

(2) तैतरीय प्राह्मण 2 / 1 / 8/ 3

" मनसा सुहार्दसं च दुहार्दसं च विजानाति प्रायेन सुरभि चासुरभि च विज्ञानाति चक्षुषा दर्शनीय चादर्शनीयं च विजानाति । श्रोत्रेण श्रवणीयं चा श्रवणीयं च विजानाति । वाचा स्वादु चास्वादु च विजानाति एताइह विज्ञाः । विहि वैज्ञायते श्रेयान् भवति । य एवं वेद । ता उ एवं संज्ञा । " [1] प्रस्तुत ब्राह्मण की उन्ति में विरोधाभास रूप अलंकार की बिम्बोपस्थिति दर्शनीय है ।

" यद् वै मनुष्याणां प्रत्यक्षं तद्देबानां परोक्षम् यन्मनुष्याणां परोक्षं तद्देवानां प्रत्यक्षम् ।[2]

ब्राह्मण ग्रन्थों में यत्र तत्र छोटी छोटी उन्तियों में ऐसे काव्यात्मक बिम्ब उकेरे गये मिलते है। जो काव्यात्मक सुभाषितों के सुन्दर उदाहरण हैं यथा- सत्यसंहिता वै देवाः अनृत संहिता मनुष्याः इति ।[3]

" सत्यमया उदेवाः " [4]

"आनन्दात्मानो हैव सर्वे देवाः [5]

" न वै देवाः स्वपन्ति " [6]

सारांश यह यह है कि संहिता ग्रन्थों की भांति ब्राह्मण ग्रन्थों में भी प्रतीकात्मक बिम्बों की छटा विखरी हुयी है ।

ग- आरण्यक :-

ब्राह्मण ग्रन्थों की भांति आरण्यक ग्रन्थों में भी किसी वर्ण्य विषय को एक बिम्ब रूप देना, सहज रूप से प्राप्त होता है । इस सन्दर्भ में याज्ञवल्क मैत्रेयी सम्बाद से एक उदाहरण दे रहे हैं- याज्ञवल्क गृहस्थ आश्रय से वानप्रस्थ लेने के विचार से अपनी दोनों पत्नियों से यह इच्छा प्रकट की उन्होने मैत्रेयी से कहा कि हे मैत्रेयि ! क्यो कि में गृह त्याग करना चाहता हूँ इसलिए कात्यांयनी के

---

(1) जै0 ब्रा0 1/269
(2) ताण्य म0 (महा) ब्रा0 22/10/3
(3) ऐतरेय ब्रा0 1/6
(4) कौ0 ब्रा0 2/8
(5) शत0 ब्रा0 10/3/5/13
(6) शत0 ब्रा0 3/2/2/22

साथ तेरा बटवारा कर देना चाहता हूँ । इन दोनो पत्नियो में मैत्रेयी ब्रह्म वादिनी थी और कात्यायनी स्त्री प्रज्ञा प्रधान थी । कात्यायनी को धन दौलत चाहिए इसलिये चुप रही मैत्रीयी ने अपने पति से प्रश्न किया कि हे पति देव जो आप हमे देना चाहते हैं क्या उससे अमृतत्व की प्राप्ति हो सकती है । इस पर याज्ञवल्क ने उत्तर दिया नहीं , भोग सामग्रियों से सम्पन्न मनुष्यों का जैसा जीवन होता है वैसा ही तेरा जीवन हो जायेगा , धन से अमृतत्व की तो आशा हैनहीं इस पर मैत्रेयी ने प्रश्न किया कि " य नाहं नामृतास्यां किमहं तेन कुर्याम् ।' इस उत्तर से याज्ञवल्क्य बहुत प्रसन्न हुए और इस तत्व को व्याख्यायित किया कि प्रियतम आत्मा के लिए ही सब वस्तुए प्रिय होती हैं ।

ब्रह्मवेन्ता याज्ञवल्क्य ने इस तात्विक विवेचन का जो बिम्ब प्रस्तुत किया वह अविकल यहाँ उद्धृत है जिससे परिज्ञान होता है कि रामायण पूर्व आरण्यक ग्रन्थ किसी विवेच्य को हृद्य बनाने के लिए कितना साफ सुथरा बिम्ब प्रस्तुत करते थे ।

" स होवाच न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति । न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति । न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति । न वा अरे विन्तस्य कामाय वितं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय विन्तं प्रियं भवति । न वा अरे पशूनां कामाय पशवः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पशवः प्रिया भवन्ति । न वा अरे ब्रहमणः कामाय ब्रह्य प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय ब्रह्यप्रियं भवति । न वा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय क्षत्रं प्रियं भवति न वा अरे लोकानां कामाय लोकाः प्रियाः भवन्त्यात्मनस्तु कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे देवानां कामाय देवा प्रिया, भवन्त्यात्मनस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे वेदानां कामाय वेदा प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय वेदाः प्रिया भवन्ति । न वा अरे भूतानां कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्त्यात्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति । न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति । आत्मा वा अरे दृष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञात इदँ सर्वं विदितम् ।[1]

उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि आरण्यकों में भी अपने कथ्य को प्रभावी बनाने के लिऐ मंत्रद्रष्टा कितने हृदय स्पर्शी बिम्ब प्रस्तुत करते थे । महर्षि याज्ञवल्क्य का तात्पर्य इस उन्क्ति में है ।

---

(1) बृहदारण्यक–अ0 4 / ब्रा0 5/मंत्र 6

कि आत्मनः कामाय सर्वं प्रियं भवति ।' किन्तु इसकी सम्पुष्टि हेतु जो बिम्ब उपस्थापित किये हैं । वे लक्ष्य करने योग्य है ।[1]

(घ) **उपनिषद्**

मंत्र ब्राह्मण आरण्यक की कतिपय अंशों के माध्यम से हमने तन्तत् उद्धृत अंशों में काव्यात्मक बिम्ब देखे हैं । उपर्युक्त उद्धरणों से यह सिद्ध होता है कि वैदिक वाङ्मय में भी कवित्व ओतप्रोत है और स्थान - स्थान पर हृदयावर्जक बिम्ब के दृश्य विकीर्ण हैं । उपनिषदों में तो बिम्बों के परिदृश्य और अधिक हैं । यद्यपि उपनिषदें प्रायशः मंत्र ब्राह्मण और आरण्यक के ही अंश हैं इसलिए ऐसे उपनिषदों के काव्य- बिम्ब ब्राह्मण आरण्यक से भिन्न नहीं कहे जा सकते किन्तु अनेक ऐसी भी उप निषदें हैं जो स्वतन्त्र रूप से निर्मित हैं । क्योकि उपनिषदों का निर्माण समय समय पर होता रहा है । कुछ उपनिषदें तो ऐसी हैं जिनका निर्माण बहुत ही पश्चात्वर्ती है, अस्तु यहाँ हम कतिपय उपनिषदों से कुछ अंश उद्धृत कर रहे हैं जिनमें मनोरम बिम्बों के दृश्य अंकित है ।

वृहदारण्यक उपनिषद् आरण्यक का ही अंश है किन्तु उसका कुछ भाग उपनिषदों के अन्तर्गत मान्य है । इस उपनिषद् का प्रस्तुत अंश जिसमें अलंकार गत बिम्ब वर्तमान हैं । यहाँ उद्धृत किया जा रहा है जिसमें आत्मा से जगत की उत्पत्ति में ऊर्णनाभि और अग्निविस्फुलिंग को उपमान के रूप में दर्शाया गया है ।

" स यथोर्णनाभिस्तन्तुनोच्चरेद्यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिंग व्युच्चरन्त्येवयेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति तस्योपनिषत्सत्यस्य सत्यमिति प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम् ।[2]

ईशावास्योपनिषद् के प्रस्तुत मंत्र में अर्थगत बिम्ब की प्रस्तुति कम प्रभावी नही है जिसमें सत्य को सुन्हलेपात्र में ढ़का हुआ बताया गया है ।

---

(1) यद्यपियह प्रसिद्ध अवतरण व्रहदारण्यक उपनिषद से लिया गया है फिर भी वह व्रहदारण्यक का ही अंश है । यह ज्ञातव्य है ।

(2) वृहदारण्यक उप0 - अ0 2 /ब्रा0 । / मंत्र 20

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तन्त्वं पूषन्नपावृणु सत्य धर्माय दृष्टये ।।[1]

कठोपनिषद तो जैसे अनेक प्रकार के बिम्बों की खनिही है । प्रस्तुत मंत्र में आलंकारिक बिम्ब दर्शनीय है ।

अविद्यायामन्तरे वर्तमाना:
स्वयं धीरा: पण्डितम्मन्यमाना:
दन्द्रम्यमाणा: परियन्ति मूढ़ा
अन्धेनैव नीयमाना यथान्धा: ।।[2]

इस उपनिषदके मंत्रों की कई पंन्तियाँ तो इतनी हृद्य हैं कि जिनके आगे परवर्ती काल के महा कवियों की वाणी भी फीकी पड़ जाती है ।

' न विन्तेन तर्पणीयोमनुष्य: [3]
नायमात्मा प्रवचनेन लभ्य: [4]
न जायते म्रियते वा विपश्चित्[5]

इस प्रकार के सुभाषित कठोपनिषद् में भरे पड़े हैं । एक और मंत्र द्रष्टव्य है । जिसमें आत्मा को रथ का स्वामी शरीर को रथ बुद्धि को सारथि तथा मन को लगाम के रूप में चित्रित किया गया है । अमूर्त के मूर्तीकरण का यह मंत्र सुन्दर उदाहरण है-

' आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं बिद्धि मन: प्रग्रहमेव च ।।[6]

एक ही परमात्मा अनेक रूप कैसे धारण कर लेता है इसके उपस्थापन में कठोपनिषद् के

---

(1) ईशावास्योपनिषद् मंत्र 15
(2) कठो0-अ0 1/वल्ली 2/ मंत्र 5
(3) कठो0 - अ0 1/ वल्ली 1 / मंत्र 27
(4) कठो0-अ0 1/ वल्ली 2 / मंत्र 23
(5) कठो0-अ0 1/ वल्ली 2 / मंत्र 18
(6) कठो0-अ0 1/ वल्ली 3/ मंत्र 3

ऋषि ने जैसे हृदयावर्जक प्रतीकात्क बिम्बों की योजना की है, उनके उद्धत करने के लोभ का संवरण नहीं किया जा सकता है । ऋषि ने अग्नि वायु एवं सूर्य के दृष्टान्तों से जैसे बिम्ब प्रस्तुत किये है । वे शब्द चित्र निम्नांकित है ।

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।।
वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्व भूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।।
सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षु-
र्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।
एकस्तथा सर्ब भूतान्तरात्मा
न लिप्यते लोक दुःखेन वाह्यः।।[1]

इसी भांति अन्य उपनिषदों में भी ऋषियो द्वारा उपस्थापित बिम्बों के परिदृश्य विकीर्ण हैं । किन्तु स्थानाभाव के कारण यहाँ पर दो तीन उपनिषदों के काव्यगत बिम्बों को ही रूपायित किया गया है ।

इस तरह हम देखते हैं कि बैदिक वाङ्मय में बिम्ब योजना के बीज ही नहीं विद्यमान हैं, प्रत्युत उनके विकसित रूप भी यत्र तत्र विखंरे पड़े हैं । जो स्वतंत्र रूप से शोध के विषय हो सकते हैं । यहाँ पर तो मात्र उनकी वर्णिका (बानगी) प्रस्तुत की गई है । जिससे यह सिद्ध हो सके कि आदि कविं की रचना से पूर्व भी संस्कृत वाङ्मय में बिम्बोपस्थापन की पद्धति बर्तमान थी ।

---

(1) कठो0 - अ0 2 / वल्ली0 2 / मंत्र 9 से ।।

पञ्चम अध्याय

•

रामायण में बिम्ब-विधान-१ सामान्य

पंचम अध्याय

रामायण में बिम्ब - विधान - ।

सामान्य ,

वस्तुगत

अलंकारगत ,

प्रकृतिगत,

वृत्तिगत

सम्वादगत ।

सामान्य :-

संसार में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहा गया है । जैसा कि कहा गया है ' गुह्यं तत्वं तदिदम् ब्रवीमि, नमानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित् । उसकी श्रेष्ठता इस अर्थ में है कि वह जीवन पर्यन्त अपने आपको विकसित करता रहता है जबकि अन्य प्राणियों में मूलप्रवृत्तियाँ आजीवन जैसी की तैसी बनी रहती हैं । यदि थोड़ा बहुत उनमें सीखने सिखाने के कारण कुछ परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है, उसकी मात्रा नगण्य ही होती हैं किन्तु मनुष्य ही एक ऐसा बुद्धिमान प्राणी है कि वह जीवन पर्यन्त कुछ न कुछ सीखता ही रहता है ।

मनुष्य में यह सहज प्रवृत्ति विधाता की देन है । उसने अपने बौद्धिक एवं हार्दिक विकास के लिए समय समय पर अनेक कलाओं का निर्माण किया है जो बहुत ही प्रभावी होती हैं । उनमें कविता सर्वश्रेष्ठ है क्यो कि कविता के माध्यम से मनुष्य जो सीखता सिखाता है उसमें कोई दबाव नहीं होता इसी लिए काव्य के माध्यम से दिये गये उपदेश को कान्तासम्मित उपदेश कहा जाता है । कवि अपने कर्तव्य के द्वारा सौन्दर्य की इस तरह प्रस्तुति करता है कि वह सहृदय के लिए सह्ज रूप में हीं सम्वेद्य तथा ग्राह्य हो जाता है । यही कारण है कि मनुष्य के निर्माण में कविता का जितना प्रभाव रहा

है । कवि मनुष्य के आत्मिक बौद्धिक एवं मानसिक परिष्कार के लिए जो उपाय अपनाता है उनमें बिम्बोपस्थापन का महत्त्व सर्वाधिक है । यद्यपि वह अपने शब्द चित्रों के माध्यम से अपने कथ्य की प्रस्तुति में ही संलग्न दीखता है । किन्तु उसकी इस शब्द सम्पदा में ही जाने कितने ही सतरंगी बिम्ब समाहित रहते हैं । जिनको व्याख्यायित करना दुष्कर नही तो कठिन अवश्य है । कहीं उसकी बिम्ब वस्तुगत, कहीं अलंकारगत, कहीं प्रकृतिगत या वृत्तिगत उन्मिषित होते रहते हैं तो कही संवादगत । यह तो हुई कवि के सामान्य बिम्बों की चर्चा, इसके साथ ही वह बहिरंग और अन्तरंग बिम्बों की भी प्रस्तुति करता हैं । बहिरंग बिम्बो में कहीं दृश्य होते है तो कहीं अदृश्य कहीं मानवीय तो कहीं मानवेतर ऐसे ही सफल कवि की कविता में अन्तरंग बिम्ब भी परिलक्षित होते हैं । जिनके वैचारिक, भावनात्मक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक कौटुम्बिक तथा सामाजिक आदि भेद किये जा सकते हैं । किन्तु कुल मिलाकर कवि की कृति में समष्टिगत जो बिम्ब उपस्थापित होता है , उसकी अनुभूति अपरिच्छिन्न होती है । जैसे किसी एक अनिंद्य सुन्दरी नायिका के सौन्दर्य का नख शिख निरूपण करना उसके सौन्दर्य का खण्डशः चित्रण करना होता है । कालिदास ने शायद शकुन्तला के अपूर्व लावण्य का वर्णन करते हुए अपनी सूक्ष्मेक्षिका का परिचय दिया था । अधरः किसलय रागः कोमल विटपानुकारिणौ बाहू ।, कुसुमिव लोभनीयम् यौवनमंगेषु सन्नद्धम् । कवि पहले तो शकुन्तला के अधर और बाहुओं के सौन्दर्य का वर्णन किसलय और लतायुगल के साथ कर बैठता है किन्तु तत्काल ही उसको अपनी कमी महसूस होती है । परिणामतः वह शकुन्तला के सर्वांगीण सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करके अपने को कृतकृत्य समझता है । ठीक इसी तरह यद्यपि किसी भी कवि की कविता में समाहित बिम्बों का अध्ययन हम पृथक पृथक करते है किन्तु सच तो यह है कि कवि की कृति में बिम्ब योजना अखण्ड या अपरिच्छिन्न रहती है ।

आदि कवि महर्षि वाल्मीकि के रामायण में कुछ इसी प्रकार की बिम्ब योजना है जो पाठक या श्रोता के अन्तस्तल में घर करती चली जाती है । यही कवि की सबसे बड़ी सफलता है । जो कवि बिम्बोपस्थापन की कला में जितना अधिक विदग्ध होता है उसकी कृति उतनी ही अधिक हृद्य तथा सम्प्रेषणीय होती है । महर्षि वाल्मीकि इस क्षेत्र में अद्वितीय हैं । यहाँ पर हम सर्व प्रथम सामान्य बिम्बों का अध्ययन प्रस्तुत कर रहे है जो मुख्यतः वस्तु, अलंकार, प्रकृति, वृत्ति , सम्वाद आदि में अभिव्यक्त होता है ।

वस्तुगत बिम्ब :-

यद्यपि महर्षि वाल्मीकि से पहले भी जाने कितने कवि हो चुके हैं जो सर्व विदित हैं । जिनमें वैदिक ऋषि, ऋषिकाओं के नाम लिए जा सकते है भार्गव शुक्रका तो एक नाम कवि ही ख्यात हो गया था । जैसा कि श्रीमत् भगवद् गीता में उल्लिखित है " कवीनामुशना कविः । किन्तु वाल्मीकि से पूर्व सारे के सारे कवि देव कवि हैं । उनका वर्ण्य वस्तु देव है मानव नहीं । वाल्मीकि ने सर्व प्रथम एक क्रान्ति कीं । उन्होने देवताओं की कथा वस्तु के स्थान में एक मानव के चरित्र को लेकर अपनी काव्य वस्तु का निर्धारण किया बाल्मीकि ने इस पार्थक्य को दूर किया जिसे मानव और देव के रूप में दुनिया अलग अलग जानती थी । उन्होंने एक ऐसे मानव की कथा वस्तु को अपनाया जिसमें देवत्व समाहित था । वाल्मीकि के कथा नायक में मानवीय उत्कर्ष पराकाष्ठा को तो प्राप्त ही है किन्तु साथ ही साथ मानवीय दुर्बलताओं के भी बिम्ब उनकी दृष्टि से ओझल नहीं होते । इसीलिए वाल्मीकि के राम मानव मात्र के राम बन जाते हैं । राम के कथानक को प्रस्तुत कर कवि ने जैसे मानव मात्र के अन्तर्भावों को अभिव्यंजित कर दिया है । जिसे वह मानव मात्र के लिये सम्वेद्य एवं हृद्य बन गया है । बाल्मीकि रामायण में एक ओर जहाँ कौशल्या जैसी माता सीता जैसी पत्नी के चरित्रों के बिम्ब कवि के द्वारा उकेरे गये हैं वहीं कैकेयी जैसी हठी मन्थरा जैसी पिशुन स्वभावा स्त्रियों के दृश्य मानव मात्र के मन को झकझोर देते हैं ।

वाल्मीकि की दृष्टि में मानवमन के अगाध गहराइयों के चित्र जिस तरह समाहित हैं । इसी तरह उनके ओछेपन के भी चित्र उनसे ओझल नही होते हैं यही कारण है कि उनकी कृति ' रामायण ' में मनुष्य की अन्तर्वृत्तियों के इतने बिम्ब प्रकीर्ण है । जिनकी श्रृंखला बहुत ही दीर्घ है । कतिपय वस्तु बिम्ब यहाँ प्रस्तुत हैं । क्रूर कर्मा राक्षसों से उत्पीडित विश्वामित्र राजा दशरथ के समीप पहुँच कर यज्ञ रक्षार्थ राजा से राम की याचना करते हैं । किन्तु राजा दशरथ इसको सहन नहीं करते और एक क्षण के लिए चेतना शून्य से हो जाते हैं । कोई भी पिता अपने जीते जी अपने अल्प वयस्क बालकों को संकट में कैसे डाल सकता है । महाराज दशरथ भी राम को देना नहीं चाहते । वल्कि अपनी सेना के वरिष्ठ भेजने के लिए तैयार हैं । इतना ही नहीं वह स्वयं जाने को तैयार हो जाते हैं । भला वह छल कपट से युद्ध करने वाले राक्षसों के पास अपने राम को कैसे भेजते?

कवि ने इस कथा वस्तु के माध्यम से अपनी सन्तान के प्रति जिस वात्सल्य का परिचय दिया है वह सन्दर्भ आँखों के सामने प्रस्तुत सा हो जाता है । थोड़े ही शब्दों में कवि ने बड़ी ही मार्मिकता के साथ इसकी प्रस्तुति की है -

तच्छ्रुत्वा राजशार्दूलो विश्वामित्रस्य भाषितम् ।
मुहूर्तमिव निःसंज्ञः संज्ञावानिदमब्रवीत् ।।
ऊनषोडशवर्षो मे रामो राजीवलोचनः ।
न युद्धयोग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः ।।
इयमक्षौहिणीं सेना यस्याहं पतिरीश्वर : ।
अनया सहितो गत्वा योद्धाहं तैर्निशाचरैः ।।
इमे शूरश्च विक्रान्ता भृत्यामेऽस्त्रविशारदाः ।
योग्या रक्षोगणैर्योद्धुं न रामं नेतुमर्हसि ।।
अहमेव धनुष्पाणिर्गोप्ता समरमूर्धनि ।
यावत् प्राणान् धरिष्यामि तावद् योत्स्ये निशाचरैः ।।
निर्विघ्ना व्रतचर्या सा भविष्यति सुरक्षिता ।
अहं तत्र गमिष्यामि न रामं नेतुमर्हसि ।।
बालो ह्यकृतविद्यश्च न च वेत्ति बलाबलम् ।
न चास्त्रबलसंयुक्तो न च युद्धविशारदः ।।
न चासौ रक्षसां योग्यः कूटयुद्धा हि राक्षसाः ।
विप्रयुक्तो हि रामेण मुहूर्तमपि नोत्सहे ।। [1]

मंथरा के कुचक्र से कैकेयी ने अपने पति महाराज दशरथ से अपने पुत्र भरत को युवराज पद तथा राम को वनवास का वरदान माँग लिया । कैकेयी के प्रेमपाश मे बंधकर जो राजा कुछ भी दे सकता था वहीं पुत्र वियोग से कातर हो अपनी पत्नी कैकैयी के प्रति कितना विपरीत हो सकता है । कतिपय छन्दों में उभरता हुआ यह बिम्ब देखिए ।

---

(1) वा०रा०-अ०। / सर्ग 20 / 1-8

विनाशकामामहितामभित्रा-

मावासयं मृत्युमिवात्मनस्त्वाम् ।

चिरं बताङ्केन धृतासि सर्पी

महाविषातेनह्रतोऽस्मि मोहात् ।।

मया च रामेण सलक्ष्मणेन

प्रशास्तु हीनो भरतस्त्वया सह ।

पुरं च राष्ट्रं च निहत्य बान्धवान्

ममाहितानां च भवाभिहर्षिणी ।

नृशंसवृत्ते व्यसनप्रहरिणि

प्रसह्य वाक्यं यदिहाद्य भाषसे ।

व नाम ते तेन मुखात् पतन्त्यधो

विशीर्यमाणादशनाःसहस्त्रधा ।।

न किंचिदाहाहितमपियं वचो

न वेन्ति रामः परूषाणि भाषितुम् ।

कथं तु रामे ह्यभिरामवादिनि

ब्रवीषि दोषान् गुणनित्यसम्मते ।।

प्रताम्य वा प्रज्वल वा प्रणश्य वा

सहस्रशो वा स्फुटितां महीं व्रज ।

न ते करिष्यामि वचः सुदारूणं

ममाहितं केकयराजपांसने ।।

क्षुरोपमां नित्यमसत्प्रियंवदां

प्रदुष्टभावां स्वकुलोपघातिनीम् ।

न जीवितुं त्वां विषहेऽमनोरमां

दिधक्षमाणां हृदयं सबन्धनम्

न जीवितंमेऽस्ति कुतः पुनः सुखं

विनात्मजेनात्मवतां कुतोरतिः

ममाहितं देवि न कर्तुमर्हसि

स्पृशामि पादावपि ते प्रसीद मे ।।

स भूमिपालो विलपन्ननाथवत्
स्त्रिया गृहीतो हृदयेऽतिमात्रया ।
पपात देव्याश्चरणौ प्रसारिता-
वुभावसम्प्राप्य यथाऽऽतुरस्तथा ।।[1]

यों तो वाल्मीकि के वस्तु बिम्ब सारे के सारे अत्यन्त आकर्षक एवं हृदयावर्जक है किन्तु रामायण का सुन्दर काण्ड अपने शब्द चित्रों के द्वारा जितना अद्भुत एवं हृद्य है , उसको देखकर यह उन्क्ति यथार्थ सिद्ध होती है ' सुन्दरे किन्न सुन्दरम् । क्या वानरों का सीतान्वेषण ' , क्या आंजनेय हनुमान का समुद्रोल्लंघन और क्या लंका दहन । सभी स्थल हृदय हारी हैं । किन्तु रावण के अन्तःपुर में पवनपुत्र हनुमान के द्वारा निशीथ में सीतान्वेषण को लक्ष्य कर कवि ने राक्षस राज रावण की सुप्त पत्नियों के जैसे बिम्ब उभारें हैं जो पूरे एक सर्ग में अंकित हैं बेजोड़ हैं हनुमान कामा शक्ता, काम एवं मद्य से विह्वला, नग्न प्राया रावण पत्नियों को देखकर एक क्षण के लिए स्तब्ध रह जाते हैं । किन्तु दूसरे क्षण उनका आत्म विश्वास पुकार उठता है ।

कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः ।
न तु मे मनसा किंचिद् वैकृत्यमुपपद्यते ।।
मनो हि हेतुः सवेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने ।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च में सुव्यवस्थितम् ।।[2]

महर्षि वाल्मीकि ने अपने काव्य के कथानक हर एक पात्र के चरित्रांकन में बड़ी ही सूझ वूझ के साथ काम लिया है । उनके पात्रो में दोषों के साथ गुणों की या गुणों के साथ दोषों की अभिव्यंजना साथ साथ पायी जाती है क्यो कि कवि की अन्तश्चेतना को यह पूर्ण आभास है कि मानव जीवन एक ऐसे वस्त्र के समान है जिसके ताने बाने में सफेद और काले रंग के धागों का समावेश पाया जाता है । सारांश यह कि व्यन्क्ति में न तो ऐकान्तिक गुण ही गुण होते हैं और न वह मात्र दोषों का पुन्ज ही होता है । यह बात दूसरी है कि मात्राधिक्य के कारण हम किसी को भला या बुरा

---

(1) वा0रा0 -अयो0 / सर्ग 12/ 105-112

(2) वा0रा0- सु0/सर्ग 11 / 41-42.

कहने लग जाते हैं । उदाहरणार्थ राम रावण युद्ध के सन्दर्भ में तामसी प्रकृति का राक्षस कुम्भकर्ण जिसकी प्रकृति में तामसिकता की ही भर मार थी कवि की अन्तर्दृष्टि में उसकी सजग नीति भी ओझल नहीं होती । रावण के द्वारा जगाये जाने पर कुम्भकर्ण को यह ज्ञात होता है कि उसके भाई राक्षस राज रावण ने राम पत्नी सीता का अपहरण किया है और अब उससे परामर्श चाहता है तो वह रावण के इस कुकृत्य को स्पष्ट रूप से धिक्कारता है । वह कहता है कि हे महाराज अपने बल के घमण्ड से पहले आपने इस दुष्कृत्य की कोई परवाह नहीं की यह नहीं देखा कि इसका क्या परिणाम होगा उसने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में कहा कि जो ऐश्वर्य के अभिमान में आकर पहले करने योग्य कार्यो को पीछे करता है और पीछे करने योग्य कार्यो को पहले कर डालता है । वह नीति तथा अनीति को नहीं जानता । इतना ही नही आगे चलकर वह इतना तक कहता है कि जो पशु की समान बुद्धिवाले किसी तरह मंत्रियों के भीतर सम्मिलित कर लिए गये वे शास्त्र के अर्थ को तो जानते नहीं केवल धृष्टता बस बातें बनाना जानंते हैं ।

यः पश्चात्पूर्वकार्याणि कुर्यादैश्वर्यमास्थितः ।
पूर्वं चोत्तरकार्याणि न स वेद नयानयौ ।।
देशाकालविहीनानि कर्माणि विपरीतवत् ।
क्रियमाणानि दुष्यन्ति हवींष्य-प्रयतेष्विव ।।[1]

× × × ×

काले धर्मार्थकायान् यः सम्मन्त्र्य सचिवैः सह ।
निषेवेतात्मवाँल्लोके न स व्यसनमाप्नुयात् ।।[2]

इस तरह कुम्भकर्ण राक्षस राज रावण और उसके मंत्रियों की भर्त्सना करता है । फिर भी अपने भाई की सहायता के लिए अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होता । बड़े ही आत्म विश्वास के साथ वह अपने युद्ध कौशल के द्वारा रावण विजय की अभिशंसा करता है ।

रमस्व राजन् पिब चाद्य वारूणीं
कुरूष्व कृत्यानि विनीय दुःखम् ।
मयाद्य रामे गमिते यमक्षयं
चिराय सीता वशगा भविष्यति ।।[3]

---

(1) वा0रा0 - युद्ध0 /सर्ग 63 / 5-6
(2) -वही- युद्ध0/सर्ग63/ 12
(3) -वही यु0/सर्ग 63/ 58

इस तरह हम देखते है कि रावण कुम्भकर्ण के सम्बंध में कवि ने जिस तथ्य का बिम्ब बिधान किया है वह हमारे उन्क्त मंतव्य की पुष्टि करता है । एक ओर उसकी सजग नीतिमन्ता तो दूसरी ओर अन्याय प्रवृन्त भाई की सहायता उसकी रक्षः प्रकृति को उजागर करती है । यह बात दूसरी है कि वह विभीषण की भांति उत्पथगामी रावण का परित्याग कर राघवेन्द्र राम के शरण में नहीं जाता किन्तु इससे भी उसकी मनस्विता ही उजृम्भित होती है । निश्चय ही विभीषण की कूटनीति कुम्भ कर्ण की निश्चल नीति के सामने उस समय धूमिल पड़ जाती है जव रावण वध के पश्चात् अयोध्या यात्रा के पश्चात् राम भरत के मिलाप तथा परस्पर दोनों भाइयों का सौहार्द देखते हैं , उस समय सुग्रीव और विभीषण दोनों के अन्तस्तल में जो ग्लानि उमड़ती घुमड़ती है । वह अनिवचनीय ही बनी रही क्यों कि वे दोनों महानुभाव अपने भाइयों का बध करा करके ही राजसिंहासनारूढ हुए थे । जबकि भरत ने अपने अग्रज को सिंहासनारूढ करने के लिए चतुर्दश वर्ष की प्रतीक्षा की थी । कदाचित् भरत, सुग्रीव , विभीषण क्रमशः नर, वानर , रक्षः (राक्षस) संस्कृति के प्रतीक हैं । अस्तु हम देखते हैं कि आज कवि ने अपने काव्य में वस्तुगत जो बिम्ब उभारे है वह संस्कृत साहित्य जंगत की धरोहर बन गये है ।

अलंकारगत बिम्बः-

हम ऊपर देख चुके हैं कि कोई भी सफल कवि अपने काव्य को अधिक प्रभावी बनाने के लिए दन्त चिन्त रहता है । और अपनी कल्पना की तूलिका के द्वारा ऐसे बिम्ब (चित्र) विधान अपनाता है कि उसकी कृति सहृदय सम्बेद्य बन जाती है । अपने इस बिम्ब -विधान के लिए वह अनेक उपाय अपनाता है, जिनमें एतदर्थ सर्वाधिक योगदान अलंकारों का होता है । वैसे तो साहित्य शास्त्रियों नें काव्य के लिए अलंकारों का महत्व अधिक नहीं स्वीकारा जैसा कि ध्वनि प्रस्थापन परमाचार्य मम्मट नें अपने काव्य लक्षण में उसकी अनिवार्यता को नही माना [1] लेकिन कुछ ऐसे भी साहित्य मनीषी हैं जो अलंकारों के बिना काव्य के अस्तित्व को ही नकारते है । चन्द्रालोककार जयदेव इसी के पक्षधर है ।[2] कहते हैं कि जो विद्वान अलंकार रहित शब्द अर्थ को काव्य मानते हैं वे शायद आग को उष्णता रहित सिद्ध करने लग जायेंगे । अर्थात् श्री जयदेव की मान्यता के अनुसार जिस तरह उष्णता के विना अग्नि का अस्तित्व नहीं वैसे ही अलंकार शून्य काव्य काव्य नहीं कहा जा सकता । आचार्य भामह भी काव्य में अलंकारों का होना आवश्यक समझते हैं । [3] उनका कहना है कि रमणीय भी कामिनी अलंकार हीन

---

(1) तददौषौ शब्दार्थो सगुणौ निर्लकृती पुनः क्वापि । - काव्य प्रकाश प्र0 उल्लास कारिका-3(1)।(

(2) अंगीकरोति यः काव्यं शव्दार्थावनलंकृती । असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती । -- चन्द्रालोक

(3) न कान्तमपिनिर्भूषं विभातिवनिता मुखं। --- भामहः (काव्यालंकार)

सुशोभित नहीं होती अलंकारों के विषय में इस तरह आलंकारिकों के घर में अपनें अपने मन्तव्य हैं, किन्तु कुल मिलाकर अधिकांश आचार्य अलंकारों को काव्य में उतना ही महन्त्व देने के पक्षपाती हैं जैसा कि किसी तरूणी के अंकों में कटक कुण्डल आदि उसके सौन्दर्य के अभिवर्धक हो जाते हैं । किन्तु यह तो अलंकार शास्त्रियों की समीक्षा पद्धति की बात थी सच तो यह है कि काव्य मे अलंकारों का महन्त्व सभी कवियों ने समान रूप से स्वीकार किया है और मुक्त हृदय से यथा स्थान सन्निवेश किया है ।

कवि कुल गुरू कालिदास तो " सर्वालंकार जननी " उपमा के लिए प्रसिद्ध ही हैं ।

महाकवि कालिदास ने जिस तरह अपनी रचनाओं में न केवल उपमा का ही प्रत्युत अन्य अलंकारों का जैसा सन्निवेश किया है । इसमें परिलक्षित होता है कि अलंकार कटक कुण्डलादिवत् मात्र सौन्दर्याभिवर्धक ही नहीं होते वे काव्य की आत्मा के साथ ओतप्रोत होकर एकात्म हो जाते हैं ।

कहना नहीं होगा कि आदि कवि वाल्मीकि कालिदास के भी गुरू कल्प हैं । कालिदास पर वाल्मीकि का प्रभाव पदे पदे परिलक्षित है । इस बात को " रघुकार " कालिदास ने स्वयं स्वीकार किया है । वह रघुवंश महाकाव्य के प्रारम्भ में ही इस तथ्य को स्वीकार करते है ,

अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन् पूर्व सूरिभिः ।
मणौवज्रसमुत्कीर्णेसूत्रस्येवास्तिमेगतिः ।।[1]

कालिदास ने अपने काव्यों में बिम्ब योजना के हेतु अलंकारों का जैसा सन्निवेश किया है निश्चय ही इस सन्दर्भ में दिड्निर्देशक वाल्मीकि थे इसमें कोई सन्देह नहीं । हमारा यह अभिप्रेत नहीं कि हम अलंकारिक बिम्ब योजना के परिप्रेक्ष्य में दोनों सिद्ध कवियों की तुलनात्मक समीक्षा करें निवेदनीय तो केवल यह है कि कोई भी सिद्ध कवि अपनी बिम्ब योजना की संसद्धि में अलंकारों का उपयोग अधिक से अधिक करता है । वैसे तो वाल्मीकि रामायण के पारदर्शी बिम्बों में अलंकारों की छटा सब जगह आलोकित होती है । किन्तु यहाँ पर संक्षेप मे ही कुछ प्रमुख अलंकारों को लक्ष्य कर उनके बिम्ब सौन्दर्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है ।

---

(1) रघु0 - सर्ग-1 / श्लोक 4

आलंकारिक बिम्ब सौन्दर्य की प्रस्तुति के पूर्व यह जान लेना आप्रासंगिक न होगा कि कोई भी रचनाकार एतदर्थ अलंकारों का विनिवेश क्यों करना चाहता है ? इस सन्दर्भ में जिसका आशय यह है कि कोई भी व्यक्ति अपने बोधव्य (श्रोता या पाठक) के सामने अपने अभिप्रेत की प्रस्तुति के लिए भरसक यह प्रयास करता है कि उसका कथ्य सम्प्रेषणीय हो और वह श्रोता या पाठक को यथावत् हृदयंगम हो सके । वह इसके लिए पूर्ण प्रयासरत रहता है । उदाहरणार्थ किसी व्यक्ति ने एक बहुत बड़े सरोवर को देखा उस सरोवर की अगाद्यता एवं विशालता का चाक्षुष प्रत्यक्ष कर वह आह्लादित हुआ कालान्तर में उसी सरोवर के सम्बन्ध में जब वह जानकारी देना चाहता है तो उसके सामने वह तालाब बहुत गहरा एवं बड़ा था एतावन् मात्र शब्द अपर्याप्त प्रतीत होते हैं । इसलिए वह साफ साफ कह बैठता है कि वह सरोवर इतना विशाल तथा अगाद्य था जैसे समुद्र । समुद्र की तुलना करके वह कृतकृत्य होता है कि अब वह श्रोता या पाठक के हृदय में तालाब की गहराई एवं विशालता जमा दी है । भले ही वक्ता यह न जानता हों कि इसके लिए उसने जिस उपाय का प्रयोग किया है उसकी परिभाषा क्या है किन्तु वस्तु तथ्य तो यह हैं कि वह तो अलंकार बोल गया ।

हमने ऊपर देखा कि समुद्र की विशालता बतलाने वाला व्यक्ति यह प्रयास नहीं कर रहा था कि वह अपने कथ्य में अलंकार का प्रयोग करे। वक्ता के तात्पर्य बोध के लिए वह मात्र उसका प्रयास था । यही कार्य कवि भी करता है । जो कवि अलंकारों के लिए अलंकारों का विनिवेश न कर मात्र भाव बोध के लिए करता है उसके अलंकार कटक कुण्डल आदि वत् मात्र शोभाधायक की रस्म अदा नहीं करते प्रत्युत उसके काव्य के अंग बन जाते हैं । किन्तु जो कवि कर्मा लेखक अलंकारों के लिए ही अलंकारों का विनियोग करने का आग्रही होता है उसके काव्य में अलंकार शोभाधायक न होकर मात्र भार बन जाते हैं । जैसे किसी कुरूप युवती के अंग कितने ही आभूषणों से लदे हों तो वह उपहासास्पद ही रहते है, न कि शोभाधायक ।

जबकि सर्व साधारण व्यक्ति भी अपने कथ्य को पाठक या वक्ता के भाव बोध के लिए अपनी वाणी को सशक्त बनाने के लिए अलंकारों की सहायता लेता है । तो कवि जिसको शब्द और अर्थ का ही बल है वह अपने कथ्य में बिम्ब प्रस्तुति के लिए सतर्क रहता है उसके लिए स्वाभाविक हैं कि वह ऐसे उपाय अपनाये जिससे वह अपनी दिशा में सफल हो । इसके लिए वह अलंकारों को श्रेष्ठ साधन के रूप में स्वीकारता है । उदाहरणार्थ एक सामान्य व्यक्ति किसी उद्यान में घूमने जाता है तो वहाँ के वातावरण से अभिभूत होकर केवल यही कह बैठता है कि वह उद्यान बहुत ही सुन्दर है । लेकिन कवि की वाणी इतने से सन्तुष्ट नहीं हो जाती । प्रत्युत वह उद्यान के सौन्दर्य की चर्चा में वक्ता या पाठक के सामने ऐसी प्रस्तुति करेगा । वह उद्यान हरे भरे पौधों से और रंग विरंगे पुष्पों से भरपूर

है जिसमें जाने कितने पक्षी कलरव करते रहते हैं । कुसुमावलियों पर भवरों की पांते मडराती रहती हैं " काले काले भवरों की गुंजार आंखों एवं कानों को बहुत ही सुहावनी लगती है । मानो वह साक्षात् इन्द्र कानन नन्दन वन हो । कहना नहीं होगा कि कवि अपने परिमित शब्दों के द्वारा उद्यान का जो बिम्ब प्रस्तुत करता है उसमें निश्चय ही वह श्रोता या पाठक के लिए अतीव सम्प्रेषणीय बन जाता है । इतना ही नहीं उद्यान की तुलना नन्दन कानन से करने के कारण पाठक या श्रोता के हृदय में वह और प्रभावी हो जाता है । और कवि की सौन्दर्यानुभूति के साथ पाठक या श्रोता की सौन्दर्यानुभूति दोनों एकात्म हो जाती हैं । काव्य शास्त्रियों ने इसी को साधारणीकरण कहा है । और यह साधारणीकरण ही जिसमें कवि और पाठक दोनों के बीच की सीमा रेखाएँ समाप्त हो जाती हैं एवं तादात्म्य स्थापित हो जाता है । कवि के काव्य की यह सबसे बड़ी उपलब्धि है । इस क्षेत्र में महर्षि बाल्मीकि अद्वितीय हैं। रामायण में स्थान स्थान पर जितने अलंकारिक बिम्ब उपलब्ध है उन सभी की प्रस्तुति न तो सम्भव ही हैं और न ही आवश्यक ही केवल कतिपय अलंकारो की चर्चा यहाँ की जा रही है । जिनमें बहुत ही हृदय हारी बिम्ब उभर कर हृदय को विभोर कर देते हैं ।

सर्व प्रथम हम उपमा अलंकारगत बिम्बों की यहाँ प्रस्तुति कर रहे है क्यों कि उपमा अलंकार ही उत्प्रेक्षा, अनन्वय, प्रतिवस्तूपमा, रूपक दृष्टान्त , दीपक अर्थान्तरन्यास आदि बहुत सारे अलंकारों का स्रोत है। सम्भवतः इसीलिए काव्य शास्त्रियों ने उपमा को सर्वालंकार जननी कहा है ।

उपमा -

रामायण के आदि काण्ड में ही जिसे बालकाण्ड कहा जाता है उसके प्रारम्भिक श्लोकों में कवि देवर्षि नारद के मुख से अपने चरित्र नायक राम के मानवीय गुणों की चर्चा करायी है । बालकाण्ड का यह प्रथम सर्ग जो मूल रामायण के नाम से प्रसिद्ध है उसमें कवि ने राम के मानवीय गुणों की एक श्रृंखला प्रस्तुत की है । यह कवि की कुशलता है कि वह आगे वर्ण्यमान रामचरित्र के सम्बन्ध में औत्सुक्य हेतु संक्षेप में अपने चरित नायक की विशेषताएँ बता देना चाहता है । किन्तु उसे यह अहसास हैं कि राम के गुणों की मात्रा इतनी विपुल है कि वह शब्दों की सीमित सीमा में नही बांधी जा सकती इसलिए वह एतदर्थ यत्र तत्र आरम्भ में ही अलंकारिक बिम्बों की सहायता लेता है । जिसमें उपमा का प्राधान्य है । इस प्रकरण में कतिपय उदाहरण देखिये ।

कौशल्यानन्द वर्धन राम सर्व गुणोपेत हैं किन्तु उनके सर्वगुणों को प्रस्तुत कर पाना कवि के लिए कठिन सा प्रतीत हो रहा है इसलिए वह अलंकारिक बिम्बों की सहायता लेता है । कवि का कहना है राम सज्जनों से सदैव घिरे रहते हैं जैसे सरिताओं से समुद्र वह गम्भीरता में समुद्र और धैर्य में हिमालय जैसे हैं पराक्रम में विष्णु जैसे और चन्द्रमा की भांति प्रिय दर्शन हैं । क्रोध में कालाग्नि और क्षमा में पृथ्वी के समान है । त्याग में कुबेर और सत्य में साक्षात् जैसे दूसरे ही धर्मराज हों । [1]

कवि के इस कथ्य में उपमाओं की एक श्रृंखला सी बन गई हैं जिसे कुल मिलाकर जो बिम्ब उभरता है उसमें एक मानव नहीं महामानव की छबि मूर्त होती है । जैसे उनके उपमेय के लिए बहुत सारे उपमान चाहिए तभी तो कवि को एकत्र हीं इतनी उपमाओं का सहारा लेना पड़ा है । इनसे और ऐसी ही अन्य उपमाओं के माध्यम से वाल्मीकि ने राम के व्यक्तित्व का बिम्ब-विधान किया हैं । इससे उसकी काव्य प्रवीणता के दर्शन आरम्भ में ही हो जाते हैं । कोई भी पाठक या श्रोता इससे इतना प्रभावित हो जाता है कि उसके अन्तर्मन में सहज ही यह कौतूहल जाग्रत हो जाता है कि ऐसे व्यक्तित्व का विवरण विस्तार के साथ जानने समझने की उत्कंठा को रोक नहीं पाता बहुत सारे रामायण समीक्षक अनजान में ही आपाततः यह आपत्ति कर बैठते हैं कि जब कवि को राम के कथानक का सांगोपाङ्ग चित्रण करना ही था, तो बाल काण्ड के इस प्रथम सर्ग का क्या औचित्य है । जिसमें केवल उनके चरित्र की मात्र संक्षिप्तिका प्रस्तुत है । किन्तु सच तो यह है कि जिस विशाल चरित महातरू का चित्रण कवि को आगे करना है उसी का सुदृढ़ बीज उसने कौशल के साथ आरम्भ में ही पाठक की मनोभूमि में निक्षिप्त कर देना उचित समझा है । कहना न होगा कि महा कवि कालिदास ने भी आदि कवि की इसी सरणि का अबलम्वन किया है । रघुवंश के प्रथम सर्ग में सोऽहमाजन्मशुद्धानां

---

(1) सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः ।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ।।
स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः ।
समुद्रः इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ।।
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः ।
धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः ।। वा0रा0/ वाल0 / सर्ग 1/ श्लोक 16 से 18 1/2

इत्यादि श्लोको सें यह स्पष्ट है ।[1]

आदि कवि का रामायण लिख कर राम के आत्मजद्वय को उसका संगीतबद्ध गायन सिखाना और इस सम्बन्ध में वह कृतकार्य भी हुए इसका उल्लेख कवि ने बालकाण्ड के आरम्भिक सर्गों में किया है । उनकी ऐसी योजना का क्या रहस्य था जिसकी चर्चा यथा स्थान की जायेगी । इस सन्दर्भ में केवल इतना ही निवेद्य है कि कवि राम के दोनों आत्मजों को ठीक वैसा ही बताना चाहते हैं जैसे की स्वयं श्री राम थे । सम्भवतः अपने विलक्षण एवं अद्वितीय चरित नायक की भांति उनके दोनों पुत्रों को चित्रित करने में बहुत ही दत्त चित्त होकर सोचना पड़ा होगा तब कहीं उनकी कल्पना में यह उपमा कोंध उठी होगी । प्रस्तुत अनुष्टुप् में उपमागर्भित बिम्ब-विधान देखिये जिसमें कवि ने बिम्ब प्रस्तुति के लिए शब्दतः बिम्ब शब्द का आश्रय ग्रहण किया जैसे उनकी अन्तश्चेतना को अन्य सारे संसाधन अपूर्ण प्रतीत हो रहे हों ।

रूपलक्षणसम्पन्नौ मधुरस्वरभाषिणौ ।
बिम्बादिवोत्थितौ बिम्बौ रामदेहात् तथापरौ ।।[2]

स्वाभाविक है राम जैसे शक्ति , शील, सौन्दर्यशाली के आत्मजों की तुलना में उनके अतिरिक्त अन्य उपमान कैसे पूरक हो सकते हैं । कवि ने इस बिम्ब प्रस्तुति के द्वारा आत्मावै जायते पुत्रः इस श्रुति वाक्य का पूर्ण समर्थन किया है ।

वाल्मीकि ने अयोध्या नरेश राजा दशरथ के प्रताप और यश का वर्णन करने में एक सर्ग गुम्फित किया है । सर्गान्त में कवि एक उपजाति प्रस्तुत करता है । जिसमें वह यह बताना चाहता है । कि राजा के सभी मंत्री मत्रण को गुप्त रखने राज्य के हित साधन में सन्लग्न रहते थे । जिस प्रकार सूर्य अपनी तेजोमयी किरणों के साथ उदित होकर प्रकाशित होता है उसी प्रकार महाराज दशरथ

---

(1) सोऽहमाजन्मशुद्धाना- माफलोदय कर्मणाम् । आसमुद्रक्षितीशानामा- नाकरथ वर्त्मनाम् ।।
यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम् । यथापराधदण्डानां यथा काल प्रबोधिनाम् ।।
त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम् । यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम् ।।
शैशवेऽभ्यस्त विद्यानां यौवने विषयैषिणाम् । वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां योगेनान्तेतनु त्यजाम्।।
रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभोऽपिसन् । तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः ।। रघु0/सर्ग-1/5 से 9
(2) वा0रा0-बाल/सर्ग 4 /।।

भी उन तेजस्वी मंत्रियो से घिरे रह कर सुशोभित होते थे ।[1] पद्य में राजा और मंत्रियों के सम्वन्ध को सूर्य और उसकी रश्मियों को उपमान बनाकर कवि ने जिस बिम्ब की अवतारणा की है वह बेजोड़ है । सूर्य और रश्मियों से संवलित ही उसकी दीप्ति होती है । राजा और मन्त्रियों की मंत्रणा के ऐकात्म को प्रस्तुत करने के लिए इससे दूसरा उदाहरण क्या हो सकता है ।

मुनि श्रेष्ठ विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को अपने यज्ञ की रक्षा के लिए आश्रम में ले गये है यज्ञ का आरम्भ हो गया , दोनो राजकुमार यज्ञ रक्षा हेतु सन्नद्ध हैं । किन्तु कूरकर्मा राक्षस द्वय सुबाहु और मारीच यज्ञ बिध्वंस करने के लिए अनेक ढंग अपना रहे हैं । राक्षस मायावी तो होते ही हैं इस प्रकरण मे उपमा के माध्यम से जिन दो बिम्बों की प्रस्तुति की यहाँ प्रस्तुत है ।

" आवार्य गगनं मेघो यथा प्रावृषि दृश्यते ।
तथा मायां विकुर्वाणौ राक्षसावभ्यधावताम् ।।
मारीचश्च सुबाहुश्च तयोरनुचरास्तथा ।
आगम्य भीम संकाशा रुधिरौघानवासृजन् ।।" [2]

उपर्यु-क्त अनुष्टुप् में कवि ने राक्षसों की माया को बर्षाकालीन क्षण क्षण परिवर्तन शील मेघों के साथ तुलना की है । जो अत्यन्त ही समीचीन है । इस बिम्ब प्रस्तुति के द्वारा यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि जैसे आकाश में बर्षाकालिक मेघो में क्षण क्षण आकार परिवर्तन अनायास ही होते रहते है । यही स्थिति राक्षसों की माया की थी ।

किन्तु प्रभञ्जन के वेग से मेघों के छिन्न भिन्न होने में देर नहीं लगती यह प्रत्यक्ष हैं कि वायु के असाधारण बेग से बादलों का पता नहीं चलता कि वह आकाश के किस कोने में विलीन हो गये इतना ही नहीं अभी अभी कुछ समय पूर्व जो आसमान मैले कुचैले बादलों से परिपूर्ण था हवा के वेग से

---

(1) तैर्मन्त्रिभिर्मन्त्रहिते निविष्टै-
वृतोऽनुर-क्तैः कुशलैः समर्थैः ।
स पार्थिवो दीप्तमवाप युक्त
स्तेजोमयै र्गोभिरिवोदितोऽर्कः ।। वा0रा0- बाल०/ सर्ग 7 / श्लोक-24

(2) वा0रा0- बाल / सर्ग-30 /।।- ।2

वही एक क्षण मे और अधिक स्वच्छ एवं दर्शनीय हो जाता है । कवि एक दूसरे उपमालंकार के माध्यम से ऐसा ही बिम्ब प्रस्तुत करता है ।

राम राक्षसों की माया को देखकर लक्ष्मण से कहते है " लक्ष्मण ' देखो मानुष भक्षण करने बाले दुराचारी राक्षस आ पहुचे है मै मानवास्त्र से इन सब को मार भगाऊँगा जैसे वायु के वेग से बादल छिन्न भिन्न हो जाते हैं । इन व्राणों को मारना क्या है । [1] विदित है कि इस बिम्ब को प्रस्तुत कर कवि ने अपनी काव्य वैदग्धी का परिचय दिया है । जो स्पष्ट है कि वायु मेघों को नष्ट नहीं करती वह तो आकाश के एक कोने से आकाश के किसी दूसरे कोने में उन्हे उड़ा देती है । राम ने भी तो यही किया था । उन्होने अपने बाण वेग से मारीच को पूरे सौ योजन की दूरी पर समुद्र के किनारे फेंक दिया था । कितना सटीक चित्र है ? आश्चर्य सूचक है ।

विवाहोपरान्त कुछ काल व्यतीत हो जाने के पश्चात् चक्रवर्ती नरेश राम को युवराज पद देना चाहते थे इसके लिए उन्होने अपने सामन्त , सभासद, मंत्रि परिषद आदि को समाहूत किया । यथा निर्दिष्ट सभी के आसनासीन हो जाने के पश्चात् महाराज दशरथ राम को आवाहित करते है इस प्रकरण में कवि ने उपमात्रय के द्वारा जो बिम्बत्रय प्रस्तुत किये हैं वे अत्यन्त हृदय हारी है । अतएव यहाँ हम इन तीनों की प्रस्तुति के लोभसंवरण करने मे अक्षम होने के कारण प्रस्तुत कर रहे हैं ।

राम के सभा भवन मे आ जाने पर राजा ने उनको स्वर्णमणि भूषित आसन पर बैठने की आज्ञा दी जो पहले से वहाँ प्रस्तुत था कवि उस समय राम के द्वारा आसन में आरूढ़ होने पर उसकी शोभा के सन्दर्भ मे कहता है -

तथा ऽऽसनवरं प्राप्य व्यदीपयत राघवः ।
स्वयेव प्रभया मेरूमुदये विमलो रविः । [2]

राम के साथ सूर्य और आसन की मेरू की उपमा देकर कवि ने राम के अमूर्त प्रताप को इस बिम्ब में मूर्त सा कर दिया है ।

---

(1) 'पश्य लक्ष्मण दुर्वृत्तान राक्षसान् पिशिताशनान् ।
मानवास्त्र समाधूताननिलेन यथा घनान् ।।
करिष्यामि न सन्देहो नोत्सहे हन्तुमीदृशान् । वा0रा0- बाल/सर्ग 30/ 15 1/2

(2) वा0रा0/अयो0/सर्ग- 3/35 1/2

राम के आसनारूढ हो जाने पर उस सभा की शोभा इस तरह बढ़ जाती है जैसे निर्मलग्रह और नक्षत्रों से भरा शरत्काल का आकाश चन्द्रमा से उद्भासित हो उठता है ।

' तेन विभ्राजिता तत्र सा सभापिव्यरोचत ।।
बिमलग्रह नक्षत्राशारदी द्यौरिवेन्दुना ।[1].

उपर्युक्त अनुष्टुप् में कवि ने राम के निर्मल यश की प्रस्तुति की है, उस समय दशरथ नृपति राम को देखकर ऐसे प्रसन्न हुए जैसे कोई भी अलंकृत व्यक्ति दर्पण में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर सन्तुष्ट होता है ।

तं पश्यमानो नृपतिस्तुतोष प्रियमात्मजम्।।
अलंकृतमिवात्मानमादर्शतल संस्थिम् ।[2]

उपुर्यक्त पद्य में आदि कवि ने पिता पुत्र की एकात्मकता की प्रस्तुति बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से की है । सम्भवतः कवि को पिता पुत्र की अनन्यता प्रदर्शित करने के लिए यही विधि अधिक प्रशस्त प्रतीत होती है ।

वैसे तो आदि कवि ने अलंकारों का प्रयोग यथा आवश्यक स्थानों पर ही किया है । किन्तु कहीं कहीं पर तो इन्होने अलंकारो की झड़ी सी लगा दी है किन्तु आश्चर्य तो यह है कि इन सभी अलंकारों में जब नये नये बिम्बों की प्रस्तुति की है वे संस्कृत साहित्य की अनुपम धरोहर हैं । ऐसे ही स्थल कवि को आदि कवि की पदवी को सार्थक करते है । उदाहरणार्थ किष्किन्धा काण्ड के अन्तर्गत प्रावृट् वर्णन एवं शरद् वर्णन के सर्ग दर्शनीय हैं । कतिपय बिम्ब यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं निदाघ के पश्चात् वर्षा की फुहारें आरम्भ हो गई इस सन्दर्भ में प्रस्तुत बिम्ब का काव्यास्वादन कीजिए

एषा धर्म परिक्लिष्टा नववारि परिप्लुता ।
सीतेव शोक संतप्ता मही बाष्पं विमुञ्चति ।।[3]

- यहाँ बरसात को देखकर सीता के बिम्ब की उपस्थिति राम के हृदय में कितनी स्वाभाविक है यह सहृदयैक सम्वेद्य है । ऐसा ही एक बिम्ब और है ।

---

(1) वा0रा0- अयो/ सर्ग 3 / 36 1/2

(2) वा0रा0 - अयो/सर्ग-3/ 37 1/2

(3) वा0रा0-किष्कि0/सर्ग 28/ 07

निशीथ मे मेघावृता तमस्विनी की कालिमा में रह रह कर बिजली चमक जाती है । शोक सन्तप्त विरही राम को ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे रावण के अंक में बाध्य होकर प्रतिबद्ध सीता हो । मेघ की कालिमा के साथ रावण के बिम्ब का उपस्थापन एव चंचला बिजली के व्याज से सीता के बिम्ब की प्रस्तुति कितनी सटीक है मानो बारबार बिजली क्या चमक रही है रावण के गिरफ्त मे फँसी हुई जैसे उन्मु-क्त कामा बेचैन होती जानकी हो ।[1] ऐसा ही एक बिम्ब शरद ऋतु के वर्णन के सन्दर्भ में देखिए जो शृंगार विजिम्भृत होकर भी कवि की कल्पना का उत्कृष्ट उदाहरण है ।

वर्षान्त हो चुका है नदियों का जल स्वच्छ प्रवाह मान है । और शनैः शनैः वर्षा के अभाव में यथास्थिति को प्राप्त हो रहा है । स्वाभाविक है कि उत्तरो-तर उसका सैकत प्रदेश जल निर्मुक्त होता जा रहा है । इस बिम्ब की प्रस्तुति अलंकार के माध्यम से देखिए -

दर्शयन्ति शरन्नद्यः पुलिनानि शनैः शनैः ।
नवसंगमसव्रीडा जघनानीव योषितः ।।[2]

आदि काव्य में उपमा ही क्या अनेक अर्थालंकार भरे पड़े है जिनके बिम्बों की प्रस्तुति एक से एक बढ़कर है । यदि अन्य स्थल छोड़ भी दिये जायें तो कवि के प्रावृट् एवं शरद् वर्णन में ही इतनी प्रचुर सामग्री हैं कि यदि उनका क्रमबद्ध अंकन किया जाय तो शोध प्रबन्ध गुरू कलेवर हो सकता है । इसलिए यहाँ पर प्रतीक पद्धति से उपमा अलंकारगत कतिपय बिम्बों की प्रस्तुति की गई है ।

इसी सन्दर्भ में इसी भांति कुछ शब्दालंकारगत बिम्बों की प्रस्तुति की जा रही है ।

आदिकवि की रस सिद्ध वाणी क्या शब्द क्या अर्थ प्रत्येक क्षेत्र में अपना असाधारण अधिकार रखती है । यहाँ क्रियासममिहार गत अलंकारगत बिम्ब प्रस्तुत है ।

वहन्ति वर्ष-न्ति नदन्ति भान्ति ध्याय-न्ति नृत्य-न्ति समाश्वसन्ति ।
नद्यो घना मन्तगजा वनान्ता प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवंगमाः ।।[3]

जिस प्रकार वर्षा एवं शरद वर्णन के सन्दर्भ में कवि ने अर्थालकारों की मालिका सजायी है और उनमें एक से एक बिम्ब उकेरे हैं उसी भाँति सुन्दरकाण्ड के चन्द्रोदय वर्णन में शब्दालंकार गत बिम्बों की छटा दर्शनीय है । यों तो कवि की वाणी में पदे पदे अनुप्रासगत बिम्बों की भरमार है ।

---

(1) वा0रा0- किष्कि0/सर्ग 28/ 12

(2) वा0रा0-किष्कि0/सर्ग 30/ 58

(3) वा0रा0-किष्कि0/सर्ग 28/ 27

तथापि कवि का चन्द्रोदय वर्णन इस सन्दर्भ में विशेष दर्शनीय है यहाँ पर चन्द्रोदय वर्णन के कतिपय छन्द द्रष्टव्य हैं जिनमें शब्दालंकार गत लालित्य तो हैं ही साथ ही प्रत्यग्र अभिनव बिम्बों की भी छटा मिलेगी ।

ततः स मध्यंगतमंशुमन्तं
ज्योत्स्नावितानं मुहुरुद्वमन्तम्
ददर्श धीमान् भुवि भानुमन्तं
गोष्ठे वृषं मत्तमिव भ्रमन्तम् ।।

लोकस्य पापानि विनाशयन्तं
महोदधिं चापि समेधयन्तम्
भूतानि सर्वाणि विराजयन्तं
ददर्श शीतांशुमथाभियान्तम् ।।

या भाति लक्ष्मीर्भुवि मन्दरस्था
यथा प्रदोषेषु च सागरस्था ।
तथैव तोयेषु च पुष्करस्था
रराज सा चारुनिशाकरस्था ।।

हंसो यथा राजतपंजरस्थः
सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः ।
वीरो यथा गर्वितकुंजरस्थ-
श्चन्द्रोऽपि बभ्राज तथाम्बरस्थः ।।

स्थितः ककुद्मानिव तीक्ष्णशृङ्गो
महाचलः श्वेत इवोर्ध्वशृङ्गः ।
हस्तीव जाम्बूनदबद्धशृङ्गो
विभाति चन्द्रः परिपूर्णशृङ्गः ।।

विनष्टशीताम्बुतुषारपङ्को
महाग्रहग्राहविनष्टपङ्कः ।
प्रकाशलक्ष्म्याश्रयनिर्मलाङ्को
रराज चन्द्रो भगवाञ्शशाङ्कः ।।

शिलातलं प्राप्य यथा मृगेन्द्रो

महारणं प्राप्य यथा गजेन्द्रः ।

राज्यं समासाद्य यथा नरेन्द्र-

स्तथा प्रकाशोविरराज चन्द्रः ।।

प्रकाशचन्द्रोदयनष्टदोषः

प्रवृद्धरक्षःपिशिताशदोषः

रामाभिरामेरितचिन्त्तदोषः

स्वर्गप्रकाशो भगवान् प्रदोषः ।।[1]

यहाँ पर हमने जान बूझ कर इतने छन्द प्रस्तुतकिये जो चन्द्रोदय के सन्दर्भ में कवि-वाणी-प्रसूत हैं । प्रस्तुत पद्यों में अनुप्रास गत बिम्बों के माध्यम से चन्द्रोदय का जैसा हृदय हारी वर्णन किया गया है वह अद्भुत है ।

इस तरह हम देखते है कि आदि कवि नें अलंकारगत बिम्बों की प्रस्तुति अत्यन्त ही आकर्षक की है । जो संस्कृत काव्य शास्त्र की अनन्य दुर्लभ निधि है ।

प्रकृतिगत बिम्ब-

प्रकृति के साथ मानव का अविनाभाव सम्बन्ध रहा है बल्कि यह कहना चाहिए कि समष्टि प्रकृति का मानव भी एक अंग है । किन्तु प्रकृति के क्षेत्र में प्रकृति के ही एक विशिष्ट अंग मानव ने अपने बुद्धि चातुर्य से अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व स्थापित किया यहाँ तक कि इस - वैज्ञानिक युग में इसने प्रकृति के ऊपर अपना नियन्त्रण स्थापित करने का दावा प्रस्तुत किया है । उसके बुद्धि कौशल ने प्रकृति के अनन्त क्षेत्र को एक लघु प्रांगण सा बना दिया है वह आज हिमालय के उच्च शिखर पर अपना ध्वज फहरा चुका है । अन्तरिक्ष का अनन्त क्षेत्र उसके लिए कीड़ा कौतुक है, इतना ही नहीं उसने चन्द्र लोक में भी अपना पदार्पण किया है । अणु शक्ति को अपने नियन्त्रण में करके उसके संहारक रूप की करामात से मानव का रौद्र रूप समूची मानव जाति के लिए ही आतंक का स्थान धारण कर चुका है।

---

(1) वा०रा० - सु० / सर्ग-5/ 108

यह सब होने के बावजूद भी मानव आज प्रकृति जननी की गोद में हीं सुख और शान्ति पाता है । क्यों कि प्रकृति का मानव के साथ सम्पर्क अतिपुरातन है, चिरन्तन है और घनिष्ठ भी । इस विशेषता को भारतीय संस्कृति ने बहुत पहले ही अवगत कर लिया था । सारा का सारा ऋग्वेद जो संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ है एवं आर्य जाति का ही नहीं समग्र मानव समाज का सर्वस्व है । उसका तीन चौथाई भाग प्रकृति के गौरवगान से ओत प्रोत है । वैदिक ऋषियों ने प्रकृति सौन्दर्य पीयूष को अपने चक्षुचषकों से जीभरकर पान किया । सारी प्रकृति को उन्होंने परमात्मा की कविता का स्थान दिया था । ऋषि प्रकृति से अभिभूत होकर पुकार उठता है -

' देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ' [1]

उषः सून्क्त जैसे सहस्त्रों सून्क्त ऋषियों के प्रकृति प्रेम के ज्वलन्त निदर्शन है ।

प्रकृति के इस अन्तः रहस्य को सबसे अधिक पहचाना कवियों की तलस्पर्शिनी प्रज्ञा ने जिसका संकेत वैदिक ऋचाएँ पहले ही कर चुकी थीं । एवं ब्राह्मण आरण्यक एवं उपनिषदों में उसके उपबृंहित दर्शन हुए यही कारण है कि इस बीसवी सदी में पर्यावरण के सम्बन्ध में आज विश्व का बौद्धिक वर्ग चिन्तित है एवं यन्त्र दानव उद्भूत प्रदूषण से त्राण पाने के लिए उसने फिर से वन उपवनों की ओर अपना ध्यान आकृष्ट किया है । इस महत्त्व का तात्पर्य बोध हमारे पूर्वजों के अन्तः करण में पहले ही ' प्रबुद्ध हो चुका था । यही कारण है कि चाहे वह महाभारत हो या अष्टादशपुराण वाल्मीकि आदि कवि से लेकर परवर्ती काल तक के कवियों या नाटककारों तक सभी की रचनाओं में प्रकृति कीगुण गरिमा का गान पदे पदे दृष्ट है-

प्रकृतिगत कवियो का यह लगाव कोई आकस्मिक नहीं था प्रत्युत वह सुविचारित था । भारतीय संस्कृति में आश्रम व्यवस्था एवं वर्ण व्यवस्था अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं । दोनों मानव मात्र के जीवन के लिए अतिशय उपयोगी मानकर ही परिकल्पित किये गये थे । मानव मात्र के लिए चार आश्रमों में से तीन आश्रम निश्चय ही आरण्यक जीवन से सम्बद्ध है । इस महन्त्व को सबसे अधिक हृदयंगम किया था आदिकावि वाल्मीकि ने और इसके पश्चात् उन्हीं के अनुगामी विश्व कवि कालिदास ने । महाकवि कालिदास का अभिज्ञान शाकुन्तल जो संसार में एक अनुपम कृति के रूप मे मान्य हो चुका है, उस नाटक की कथा का अंश तीन चौथाई से अधिक आरण्यक जीवन से सम्बद्ध है । इस तरह

---

(1) अथर्व वेद - अ0 10/ म0 8/ सू0 32- वेदवाणी माह मार्च 1992 पेज 17

हम देखते हैं कि संस्कृत काव्य जगत में ही नही भारतीय जन जीवन में प्रकृति के प्रति सहज लगाव सनातन है । आदि कवि वाल्मीकि तो काव्यगत प्राकृतिक बिम्बों के उपस्थापन के आचार्य ही कहे जाते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने प्रसिद्धतम निबन्ध ' काव्य में प्राकृतिक दृश्य ' जो चिन्तामणि प्रथम भाग में संगृहीत है । वाल्मीकि के प्रकृति प्रेम की भूरि भूरि प्रशंसा की है । इतना ही नहीं उन्होने ' इस निबन्ध में अनेक उदाहरणों के द्वारा यह दिखलाने का प्रयास किया है कि मानव जगत के लिए प्रकृति का महत्त्व अति महनीय है ।

सच तो यह है कि रामायण काव्य का उपक्रम प्रकृति के धरातल से हुआ है आदि काव्य रामायण की रचना कैसे हुई किस गोमुख से इस कथा जाह्नवी का उद्‌गम हुआ इसका उल्लेख आदि कवि ने स्वयं किया है । महर्षि बाल्मीकि स्नान करने के लिए तमसा नदी की ओर प्रस्थान करते हैं । ऋषि की सहज सात्विक मनोवृत्ति तमसा के पुनीत जल में अवगाहन करने की थी किन्तु अचानक इसके विपरीत एक अनहोनी घटना घट गई एक बधिक ने क्रौंच दम्पत्ति के जोड़े में से एक को अपने बाण का लक्ष्य बनाया और उसका प्राणान्त कर दिया अकुतो भय क्रौंच क्रौंची सुख पूर्वक आमोद-मग्न थे किन्तु सहसा ही यह वज्राघात हुआ परिणामतः ऋषि का मन इस अप्रत्याशित घटना से विदीर्ण हो गया सहसा उनकी करूणार्द्र वाणी में शोक श्लोक के रूप में प्रस्फुटित हुआ यही कविता का जन्म काल है ।

कवि ने तमसा के नीर की तुलना के लिए मुनियों के मन की प्रस्तुति की है वह कहते हैं

अकर्दममिदं तीर्थं भरद्वाज निशामय ।
रमणीयं प्रसन्नाम्बु सन्मनुष्य मनो यथा ।।[1]

प्रस्तुत छन्द में जिस प्राकृतिक बिम्ब को उभारा है उससे अमूर्त मन मूर्त सा हो गया है । सज्जन के मन को प्रसन्नाम्बु तीर्थ के रूप में अंकन करना कितना सटीक है ।

उपर्युक्त घटना राम कथा का स्रोत बन गई और उन्होंने रघुवंश-विभूषण राम के चरित्र का काव्यबद्ध वर्णन करना आरम्भ किया । रघुवंश-शिरोमणि राम के चरित्र की तुलना कवि समुद्र से करता है ।

---

(1) वा0रा0 - बा0/ सर्ग 2/ 5

कामार्थगुण संयु-क्तं धर्मार्थगुणविस्तरम् ।
समुद्रमिव रत्नाढ्यं सर्वश्रुतिमनोहरम् ।।[1]

इस अनुष्टुप् में रघुवंश के चरित्र को रत्नाढ्य समुद्र कहना विशेष अर्थ रखता है । तात्पर्य यह है कि समुद्र के ऊपरी सतह का प्राकृतिक दृश्य अद्वितीय होता है, जहाँ तक दृष्टि जाती है अनन्त आकाश जैसा नीला सागर अपने भीतर कितने रत्न छिपाये है यह कौन जानता है इसलिए रघुवंश के चरित्र की यही विशेषता है । आदि कवि ने तो उसके कवि ने तो उसके एक ही महार्ध को अपने काव्य का विषय बनाया है । किन्तु कवि कालिदास को इतने से संतुष्टि नहीं हुई उन्होने अपने रघुवंश महाकाव्य मे दिलीप, रघु अज, दशरथ, राम के साथ ही साथ रघुवंश प्रसूत अनेक महापुरूषों के कथानक को अपने महाकाव्य में उपनिबद्ध किया मानो आदि कवि ने रघुवंश के चरित्र को रत्नाढ्य समुद्र की उपमा देकर परवर्ती कवियों को संकेतित कर दिया हो कुछ भी हो, इस पद्य में समुद्र के प्राकृतिक बिम्ब को उभार कर रामायण के कथानक को उजागर करने का सफल प्रयास किया है।

महर्षि वाल्मीकि प्राकृतिक बिम्बों को उभारने में सिद्ध हस्त हैं । यत्र तत्र अपने अलंकारों की सजावट में वे प्रकृति को ही अपना उपादान बनाते हुए दीखते हैं । विश्वामित्र दैनन्दिन कार्यो की परिसमाप्ति के पश्चात् निन्द्रा की मुद्रा में हैं । सूर्य के समान तेजस्वी ऋषि का मुखमण्डल अस्तंगत अंशुमान की तरह प्रतीत होता है ऐसा आदि कवि कहते हैं । जो शतशः यथार्थ ही कहा जा सकता है ।

मुदितैर्मुनिशार्दूलैः प्रशस्तः कुशिकात्मजः ।
निद्रामुपागमच्छमानस्तंगत इवांशुमान् ।।[2]

रामलक्ष्मण श्री विश्वामित्र के साथ मिथिला पहुँचते हैं । मिथिलापति जनक दोनों राज कुमारों को देख कर मुग्ध हो जाते हैं । वह मुनि से उनके विषय में जिज्ञाषु होकर परिचय पूँछते हैं । आदि कवि राम लक्ष्मण के परिचय प्रश्न में उपमाओं की एक तालिका खड़ी कर देते हैं । उनमें यह उपमा विशेष महत्व पूर्ण है । राजा जनक पूछते है कि हे मुनिश्रेष्ठ जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र आकाश को सुशोभित करते हैं । उसी प्रकार इस देश को विभूषित करने वाले ये दोनो राजकुमार कौन है?

वरायुधधरौ वीरौ कस्य पुत्रौ महामुने ।
भूषयन्ताविमं देशं चन्द्रसूर्याविवाम्बरम् ।।[3]

---

(1) वा0रा0 - बा/सर्ग 3/8
(2) वा0रा0 बा0/सर्ग-24/ 22
(3) वा0रा0 - बा0/50/20

वसिष्ठ के द्वारा विश्वामित्र के समस्त पुत्रों एवं सारी सेना को विनष्ट कर दिये जाने के पश्चात् विश्वामित्र की क्या स्थिति हुई वाल्मीकि के इन उपमाओं के द्वारा जो प्रकृतिगत बिम्ब उभरे हैं एतदर्थ इस अनुष्टुप् को देखें -

समुद्र इव निर्वेगो भग्नदंष्ट्र इवोरगः ।
उपरक्त इवादित्यः सद्यो निष्प्रभतां गतः ।।[1]

कैकेयी द्वारा राम के निर्वासन प्रस्ताव को सुनकर महाराज दशरथ की दशा इतनी निःश्रीक हो जाती है । वाल्मीकि ने छिन्न तरू मूलक प्रकृति गत बिम्ब को उकेर कर उसको रूपायित किया है ।

सदेव्या व्यवसायं च घोरं च शपथं कृतम्
ध्यात्वा रामेति निःश्वस्य च्छिन्नस्तरूरिवापतत् ।।[2]

माता कैकेयी के कठोर वरदान से शोक विह्वल पिता के दर्शन हेतु राम रनिवास में प्रविष्ट हुए अवध की जनता इस प्रतीक्षा में है कि राम भद्र कब प्रत्यावर्तित हों और वे लोग दर्शन करें इस दृश्य को कवि ने अलंकार के माध्यम से प्रकृतिगत बिम्ब को अंकित किया जो अत्यन्त प्रभावी है । सरिताओं का स्वामी समुद्र राका पति चन्द्र के उदय की कितनी तत्परता के साथ प्रतीक्षा करता है यह वही जान सकता है , जिसने कभी यह दृश्य देखा हो ।

तस्मिन प्रविष्टे पितुरन्तिकं तदा ।
जनः स सर्वोमुदितो नृपात्मजे ।।
प्रतीक्षते तस्य पुनः स्म निर्गमं।
यथोदयं चन्द्रमसः सरित्पतिः ।। [3]

सीता और लक्ष्मण के साथ राम वन की ओर प्रस्थान कर चुके हैं । अयोध्या की सारी प्रजा इस मार्मिक दृश्य से विभोर हो जाती है । आपस में अनेक प्रकार की बातें होने लग जाती हैं । वाल्मीकि कहते हैं कि राज्याभिषेक में आघात पड़ने से प्रजा की वही गति हुई जोक ग्रीष्म में जलाशय का पानी सूख जाने से तद्गत जीव जन्तुओं की होती है ।

---

(1) वा0रा0 - बा0/सर्ग 55/ 9
(2) वा0रा0 - अयो0/सर्ग-12/54
(3) वा0रा0 - अयो0/सर्ग-17/22

निश्चय ही इस पद्य में प्रकृति के माध्यम से जल जन्तुओं की दशा का वर्णन अतिशय करूणापूर्ण है--

तस्मात् तस्योपघातेन प्रजाः परमपीडिताः ।
औदकानीव सन्त्वानि ग्रीष्मे सलिलसंक्षयात् ।।[1]

बालि सुग्रीव के युद्ध के समय राम के निर्देश से लक्ष्मण सुग्रीव के गले में गजपुष्पी की माला डाल देते हैं । सुग्रीव उस धवल मालिका से ऐसा ही सुशोभित होता है मानो बगुलों की पांति से अलंकृत सांयकालीन मेघ हो । [2]

इस तरह हम देखते हैं कि रामायण में प्रकृतिगत बिम्ब भरे पड़े हैं । किष्किन्धा काण्डान्तर्गत वर्षा एवं शरद के वर्णन प्रसंग में तो प्राकृतिक बिम्बों का एक विशद उद्यान सा फैला है । जिसमें रंग बिरंगे पुष्पों की भाँति शतशः प्राकृतिक बिम्ब ह्रदय को अपनी ओर खींचते है । एवमेव सुन्दर काण्ड का चन्द्रोदय वर्णन भी प्राकृतिक बिम्बों की एक मंजूषा है ।

सच तो यह हैं कि सारा का सारा महाकाव्य प्राकृतिक बिम्बों का एक महा समुद्र है । विशेषकर कवि की अलंकार योजना में 99% प्राकृतिक बिम्बो का ही सहारा लिया गया है । सुतराम् शोध प्रबन्ध का यह एक स्वतन्त्र विषय हो सकता है । यहाँ तो दिग्दर्शन मात्र कराया गया है ।

वृन्तिगत-बिम्ब :-

वृन्ति शब्द अपने में अनेक अर्थ समाहित किए हुए है । व्याकरण , न्याय, मीमांसा, योग , वेदान्त आदि में इसके भिन्न 2 अर्थ दृष्ट है । किन्तु यहाँ पर साहित्यिक वृन्ति से ही तात्पर्य है जिसके अभिधा लक्षणा व्यंजना तात्पर्य आदि भेद होते हैं । कतिपय विद्वान वृन्ति से वैदर्भी सात्वती आदि वृन्तियों को ग्रहण करते हैं किन्तु वे अकिंचित् कर हैं ।

काव्य मर्मज्ञों ने व्यंग्य या व्यंजना मूलक उन्क्ति को उत्तम काव्य कहा है । एवं व्यंजना वृन्ति को कविता का सर्वस्व कहा है । अभिधेय अर्थ की अपेक्षा लक्ष्यार्थ का मह न्त्व भी काव्य जगत में स्वीकृत है । व्यंग्यार्थ और लक्ष्यार्थ की अपेक्षा अभिधेय अर्थ को काव्य के क्षेत्र में कम मह-त्व दिया जाता रहा किन्तु सच तो यह है कि इस रहस्य को सिद्ध कवि की तलस्पर्शिनी प्रज्ञा ही पहचानती है कि किस प्रकार का अर्थ कहाँ उपादेय है । अस्तु रामायण के कतिपय स्थलों से यहाँ पर वृन्तिगत बिम्बों

---

(1) वा0रा0 - अयो0/ सर्ग 33 / 13
(2) वा0रा0 / किष्कि0/ सर्ग 12/ 40-41

के उभारने का प्रयास किया जा रहा है ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने शब्द शन्ति मीमांसा के सन्दर्भ में संस्कृत के साहित्य शास्त्रियों के मत का विवेचन करते हुए यह प्रतिपादित किया है । कि यद्यपि साहित्य शास्त्रियों ने काव्य के उत्कर्ष में व्यंजना वृन्ति को सर्वाधिक महत्व दिया है । किन्तु व्यंजना या लक्षणा सभी स्थलों में अभिधा अपना काम करती है एवं परिष्कृत अभिधेय अर्थ व्यंग्यार्थ या लक्ष्यार्थ से कम महन्त्व पूर्ण नहीं होता है । वाल्मीकि की असाधारण कृति रामायण मे अभिधेय अर्थ सर्वत्र अपनी सम्प्रभुता स्थापित किए हैं । ऐसे स्थल बहुत कम हैं जहाँ कवि को व्यंग्यार्थ या लक्ष्यार्थ की शरण लेनी पड़ी । यह बात दूसरी है कि अभिधेयार्थ के साथ सहज रूप में ही यदि कहीं व्यंजना एवं लक्षणा भी दृष्टिगोचरित हो जाती है ।

विभीषण राम को अजेय बताकर उनके पास सीता को लौटा देने का प्रस्ताव करता है इस संदर्भ में विभीषण की एक उन्ति देखिए जो लक्षणा और व्यंजना दोनो का उत्कृष्ट उदाहरण है-

वृतो हि बाहृवन्तरभोगराशि
शिचन्ताविषः सुस्मिततीक्ष्णदंष्ट्रः ।
पंचागुंलीपंचशिरोऽतिकायः
सीतामहाहिस्तव केन राजन् ।।[1]

इस छन्द में कहा गया है कि सीता एक महान अहि(सर्प) है यह ऐसी उन्ति है जो " आयुर्घृतम् " की तरह लक्षणा मूलक है । व्यंजना से अर्थ यह है कि सीता राक्षस कुल की विध्वंस कारिणी सिद्ध होगी ।

ऐसा ही एक छन्द सुन्दर काण्ड मे पवन पुत्र के शौर्य वर्णन के सन्दर्भ में रावण के द्वारा मेघनाद को संबोधित कर कहा गया है-

न वीर सेना गणशश्च्यवन्ति
न वज्रमादाय विशालसारम् ।
न मारूतस्यास्ति गतिःप्रमाणं
न चाग्निकल्पः करणेन हन्तुम् ।।[2]

---

(1) वा०रा०- युद्ध/सर्ग 14/2

(2) वा०रा०- सु०/सर्ग 48 /11

पवन पुत्र हनुमान रावण की सेना का पर्याप्त ध्वंस कर चुके हैं यहाँ तक कि उसके पराक्रमी वीर योद्धा कुमार अक्ष का भी बध कर चुके है । मारूति के इस विध्वंसकारी तहस नहस से रावण चिन्तातुर होकर हनुमान को नियन्त्रण में लेने के लिए इन्द्रजित् मेघनाद को उत्प्रेरित करते हुए कहता है । कि हे वीर । हनुमान को नियंत्रित करने में सेना अकिंचितकर है क्यों कि बड़े से बड़े सैन्य दल उससे त्रस्त होकर रण भूमि से भाग जाते हैं । ऐसे ही अति कठोर तीक्ष्ण बज्र भी बेकार है । वायु पुत्र हनुमान की गति (शक्ति) का कोई माप तौल नहीं है । अग्नितुल्य उस तेजस्वी वानर को किसी साधन विशेष से भी नही मारा जा सकता । रावण की इस उक्ति में यह कथन कि वहाँ बज्र व्यर्थ सिद्ध होगा यह अर्थ अभिधा से सुलभ नहीं है एवमेव किसी सामान्य साधन विशेष का निषेध भी लक्ष्य करने योग्य है तात्पर्य यह कि व्यंजना से यह अर्थ निकलता है कि रावण मेघनाद को यह परामर्श देता है कि जहाँ अमोघ बज्र भी व्यर्थ सिद्ध होता है ऐसे वीर हनुमान को नियन्त्रित करने के लिए मेघनाद को कोई दिव्य प्रयोग करना चाहिए ।

इस तरह रामायण में यत्र-तत्र वृत्तिगत बिम्ब भी दृष्टि पथ में आते हैं । जो पाठक या श्रोता के अन्तः करण पर अचूक प्रभाव डालते हैं ।

संवादगत बिम्ब-

कोई भी कवि अपनी कविता को प्रभावी बनाने के लिये अनेक साधन सम्पदा जुटाता है वेसे तो संत तुलसीदास ने कवि. की वास्तविक शक्ति , शब्द,अर्थ को कहा है - ' कविहिंअरथ आखर बल सांचा ' अर्थात् कवि की सबसे बड़ी शक्ति शब्द और अर्थ हैं किन्तु यह तो कविता का मूल आधार है । शब्द और अर्थ के बिना कवि कर ही क्या सकता है । किन्तु शब्द और अर्थ को सुसज्जित करने के लिए वह अनेक विधाओं का प्रयोग करता है । जिससे उसका कवित्व निखरता है । आदि कवि वाल्मीकि इस अर्थ में भी समस्त कवियों के आचार्य कहे जा सकते हैं । उन्होंनें अपने काव्य में जो सरणि अपनायी है वह आगे के कवियों के लिए पथ प्रदर्शक बनी ।

हम पहले कह आये हैं कि कवि अपनी कविता में अनेक विध बिम्बों का उपयोग करता है तभी कवि की उक्ति कविता का रूप धारण करती है । रामायण में उन्होने संवादगत बिम्बों की प्रस्तुति

में भी बड़ी सावधानी अपनायी महाकाव्य के आरम्भ में ही नारद और वाल्मीकि का जो सम्वाद प्रस्तुत किया गया है उसी से आगे के संवादों में सम्पादगत बिम्बों के सौष्ठव का संकेत मिल जाता है । रामायण के बाल काण्ड का प्रथम सर्ग जो मूल रामायण से ख्यात है उसके आरम्भगत कतिपय श्लोकों से यह परिज्ञान हो जाता है कि कवि का उद्देश्य क्या है महर्षि बाल्मीकि देवर्षि नारद से जिज्ञासा मूलक प्रश्न करते हैं " चारित्रेण च को यु-क्तः" जैसे चरित्र ही मानवीयता की पूँजी हो इसके उत्तर में देवर्षि ने कहा " रामो नाम जनैः श्रुतः " और राम के व्य-क्तित्व के ख्यापक जिन विशेषणों को उन्होंने प्रयु-क्त किया सूत्र रूप में वही राम के चरित्र का सार है बल्कि यह कहना चाहिए की सारा का सारा आदि काव्य इसी का महा भाष्य है । राम के व्य-क्तित्व के संकेतक अनुष्टुप यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं । जिससे यह स्पष्ट हो जाय कि इस संवाद के श्रीगणेश में ही कवि ने कितनी मह-त्त्व पूर्ण भूमिका निवाही है ।

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् घृतिमान् वशी ।।
बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिवर्हणः ।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः ।।
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिंदमः ।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः ।।
समः समविभ-क्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः ।।
धर्मज्ञः सत्यसंधश्च प्रजानां च हिते रतः ।
यशस्वीज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान् ।।
प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः ।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता ।।
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।
वेदवेदांगतत्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ।।
सर्वशास्त्रार्थत-त्वज्ञ स्मृतिमान् प्रतिभानवान् ।
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ।।
सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः ।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ।।

स च सर्वगुणोपेतः कौशल्यानन्दवर्धनः ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ।।
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः ।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ।।
धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः । [1]

देवर्षि नारद ने महर्षि वाल्मीकि से राम के जिन गुणों की चर्चा की इससे सुस्पष्ट हो जाता है कि इन गुणों से सम्पन्न महापुरूष यदि चारित्र की मूर्ति नहीं होगा तो और कौन होगा । निश्चय ही यह छोटा सा किन्तु अतिशय महत्त्व पूर्ण संवाद राम के व्यक्तित्व का जो बिम्ब प्रस्तुत करता है वह अनुपम है ।

काव्य के सौष्ठव संवर्धन के लिए संवाद की भूमिका महत्त्व पूर्ण होती है । यह एक नाटकीय तत्त्व है जो काव्य में समादृत है । सामान्य से सामान्य कथोपकथन श्रव्य काव्य में नाटकीय वैशिष्ट्य प्रस्तुत कर देता है । अभी तक श्रव्य काव्य में संवादगत विशेषताओं का शोध पूर्ण अध्ययन नही हुआ है, जहाँ तक यह सत्य है । उत्कृष्ट कवियों के महाकाव्यो में सम्वादों का अध्ययन बहुत ही महत्व पूर्ण साबित हो सकता है । इस सन्दर्भ में यह निवेद्य है कि यह मानी हुई बात है कि वार्तालाप में दोनों पक्षों को समान अवसर मिलना चाहिए एवं यह भी अपेक्षित है कि किसी भी वक्ता की उक्ति गुरूकाय प्रवचन का रूप न ले लें । और भी सम्वाद के मानदण्ड निर्धारित किये जा सकते है । जैसे संवाद के शुभारम्भ का ढंग , अपने कथ्य का उपस्थापन एवं बोधव्य या श्रोता के वक्तृत्व को भी अवसर दान आदि । अस्तु इन्हीं दृष्टियों को लेकर हम रामायण के संवादगत बिम्बों के कतिपय अंश यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं ।

अयोध्या पति दशरथ के चिरकाल तक कोई सन्तान नहीं हुई इसी चिन्ता में एक दिन वे विद्वान ऋषियो के समक्ष अपनी इस वेदना को प्रस्तुत करते हैं । प्रस्तुत पद्यों में देखें इस महत्त्व पूर्ण समस्या को सुलझाने हेतु राजा और विद्वान ऋषियों का सम्वाद कितना प्रभावी बिम्ब प्रस्तुत करता है ।

---

(1) वा०रा० - बा०/सर्ग-1 / 8- 18 1/2

मम लालप्यमानस्य सुतार्थं नास्ति वै सुखम् ।
तदर्थं हयमेधेन यक्ष्यामीति मतिर्मम ।।
तदहं यष्टुमिच्छामि शास्त्रदृष्टेनकर्मणा ।
कथं प्राप्स्याम्यहं कामं बुद्धिरत्र विचिन्त्यताम् ।।
ततः साध्विति तद्वाक्यं ब्राह्मणाः प्रत्यपूजयन् ।
वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे पार्थिवस्य मुखेरितम् ।।[1]

परिमित शब्दों में इतने महत्त्व पूर्ण विषय का उपस्थापन यहाँ दृष्टव्य है ।

आदिकवि संवादगत बिम्बो में इसका ध्यान रखते हैं कि उसकी सीमा किस प्रकार की हो कहाँ संक्षिप्तीकरण से काम चलता है और कहाँ उसके विस्तार से इसका उन्हें पूर्णज्ञान है । शतानन्द के पूछने पर विश्वामित्र उन्हें श्री राम के द्वारा अहल्या के उद्धार का समाचार बताते हैं तथा शतानन्द द्वारा श्री राम का अभिनन्दन किया जाता है इसी संदर्भ में वे विश्वामित्र जी के पूर्व चरित्र का वर्णन भी करते हैं । इस संवाद को कविने पूरे एक सर्ग में बांधा है । जो उनकी वाग्मिता का परिचायक है । प्रथम परिचय में अवकाश के क्षणों में बातचीत का ढंग कुछ विस्तार ले लेता है यह सब इसका दृष्टान्त है ।[2]

कैकेयी के दुरभिसंधि से राम वनवास पर हैं चित्रकूट में भरत उनको मनाने के लिए पहुँचते है । परस्पर भेंट होने के पश्चात् यथोचित शिष्टाचार के बाद राम वन आने के सन्दर्भ में भरत से प्रश्न करते हैं । भरत अपना आगमन प्रयोजन बताते हैं । इस संवाद की वैदग्धी वाल्मीकि की वाणी में देखें -

किमेतदिच्छेयमहं श्रोतुं प्रव्याहृतं त्वया ।
यस्मात् त्वमागतो देशमिमं चीरजटाजिनी ।।
यन्निमित्तमिमं देशं कृष्णाजिनजटाधरः ।
हित्वा राज्यं प्रविष्टस्त्वं तत् सर्वं वक्तुमर्हसि ।।
इत्युक्तः केकयीपुत्रः काकुत्स्थेन महात्मना ।
प्रगृह्य बलवद् भूयः प्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ।।
आर्य तातः परित्यज्य कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
गतः स्वर्गं महाबाहुः पुत्रशोकाभिपीडितः ।।

---

(1) वा0रा0- बा0/सर्ग- 8 / 8-10

स्त्रिया नियुक्तः कैकेय्या मम मात्रा परंतप ।
चकार सा महत्पापमिदमात्मयशोहरम् ।।
सा राज्यफलमप्राप्य विधवा शोककर्शिता ।
पतिष्यति महाघोरे नरके जननी मम ।।
तस्य मे दासभूतस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ।
अभिषिंचस्व चाद्यैव राज्येन मघवानिव ।।
इमाः प्रकृतयः सर्वा विधवा मातरश्च याः ।
त्वत्सकाशमनुप्राप्ताः प्रसादं कर्तुमर्हसि ।। [1]

सीताहरण के पश्चात् किष्किन्धा में सीतान्वेषण तत्पर श्री राम लक्ष्मण से हनुमान जी की भेंट हों जाती है । इस संवाद को कवि ने सविस्तर वर्णन किया है । एक अपरिचित व्यक्ति से किस शालीनता के साथ एवं जागरूकता पूर्वक बातचीत करना चाहिए । इससे यह बिम्ब तो उभरता ही है । परन्तु इस संवाद में सबसे बड़ी विशेषता जो है वह यह है कि श्री राम हनुमान के वक्तृत्व की भूरि भूरि प्रशंसा करते है हनुमान की उक्तियो में क्या वैशिष्ट्य है कवि ने श्री राम के माध्यम से उसका अंकन किया है । इस सम्वाद से एक निर्देश भी मिलता है कि किसी भी वक्ता के वक्तृत्व में क्या क्या गुण अपेक्षित हैं? यहाँ हम सारा-सारा संवाद उद्धृत न करके केवल वह अंश प्रस्तुत कर रहे हैं जिसमें मारूति का वाक् चातुर्य समुपवर्णित है ।

राम लक्ष्मण से कहते हैं कि लक्ष्मण! तुम स्नेह पूर्वक सुग्रीव सचिव हनुमान से मधुर वाणी से वार्तालाप करो क्यों कि वह बात के मर्म को समझने वाले हैं ।

तमभ्यभाष सौमित्रे सुग्रीवसचिवं कपिम् ।
वाक्यज्ञं मधुरैर्वाक्यैः स्नेहयुक्तमरिंदमम् ।।
नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः ।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ।।
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम् ।।
न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा ।
अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषःसंविदितः क्वचित् ।।

---

[1] वा0रा0 - अयो0 /सर्ग 101/ 2-9

अविस्तरमसंदिग्धमबिलम्बितमव्यथम् ।
उरःस्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमस्वरम् ।।
संस्कारक्रमसम्पन्नामद्भुतामबिलम्बिताम् ।
उच्चारयति कल्याणीं वाचां हृदयहर्षिणीम् ।।
अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यंजनस्थया ।
कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतारेररेरपि ।।
एवंविधो यस्य दूतो न भवेत् पार्थिवस्य तु ।
सिद्धयन्ति हि कथं तस्य कार्याणां गतयोऽनघ ।।
एवंगुणगणैर्युक्ता यस्य स्युः कार्यसाधकाः ।
तस्य सिद्धयन्ति सर्वेऽर्था दूतवाक्यप्रचोदिताः ।।[1]

ऐसा ही एक संवाद जिसमे श्री हनुमान की वक्तृ-वैदग्धी परिलक्षित है जब मारुति सीतान्वेषण के सम्बन्ध में, समुद्र लांघ कर सीता जी के साथ वार्तालाप करते हैं । कुशल वक्ता को यह लक्ष्य करना होता है कि जिसके साथ वार्तालाप क्रियमाण है उससे कैसी और क्या बात करनी चाहिए । सीता अशोक वनिका में खिन्न बैठी है, हनुमान उनसे बात चीत के पहले सोचते हैं -

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम् ।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति ।।
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत् ।
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता ।।[2]

सीता हरण हो चुका है युद्ध की सम्भावनाएँ राम के सामने हैं विभीषण राम को अजेय बताकर रावण को समझा रहा है । इस सन्दर्भ में जो उक्तियाँ रावण के समक्ष विभीषण ने प्रस्तुत की हैं वह अद्वितीय है । विभीषण का कथन है यदि सीता का प्रत्यर्पण नही किया गया तो राक्षस वंश का परिणाम शोचनीय होगा वह कहता है कि आपको शीघ्रातिशीघ्र सीता लौटा देनी चाहिए । इस संवाद में '

---

(1) वा0रा0 - किष्कि0 / सर्ग 3 / 27-35
(2) वा0रा0 - सु0 / सर्ग 30/ 18-19

' प्रदीयताम् दाशरथाय मैथिली ' इसकी पुनरूक्ति विशेष लक्षणीय है । एक छन्द में कवि ने रावण विनाश के लिए सीता को एक सर्प की भांति रूपायित किया है । वह लक्षणीय है यो तो युद्ध काण्ड का चतुर्दश सर्ग सारा का सारा जो दृश्य प्रस्तुत करता है अपूर्व किन्तु इस सर्ग के तीन चार छन्द अद्‌भुत हैं जिनको यहाँ प्रस्तुत किया गया है ।

वृतो हि बाह्वन्तरभोगराशि-
श्चिन्ताविषः सुस्मिततीक्ष्णदंष्ट्रः ।
पंचांगुलीपचंशिरोऽतिकायः
सीतामहाहिस्तव केन राजन् ।।
यावन्न लकां समभिद्रवन्ति
बलीमुखाः पर्वतकूटमात्रा : ।
दंष्ट्रायुधाश्चैव नखायुधाश्च
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ।।
यावन्न गृह्णन्ति शिरांसि बाणा
रामेरिता राक्षसपुंगवानाम् ।
वज्रोपमा वायुसमानवेगाः
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ।।
न कुम्भकर्णेन्द्रजितौ च राजं-
स्तथा महापार्श्वमहोदरौ वा ।
निकुम्भकुम्भौ च तथातिकायः
स्थातुं समर्था युधि राघवस्य ।।[1]

युद्धकाण्ड में मेघनाद और विभीषण का संवाद भी अत्यन्त मर्म स्पर्शी है । मेघनाद अपने चाचा विभीषण को धिक्कारता है कि कुछ भी हो आपको शत्रुओं से नहीं मिलना चाहिए जो अपने पक्ष को छोड़कर पर पक्ष गामी हो जाता है वह अपने पक्ष के क्षीण होने पर पर पक्ष । के द्वारा विनाश को प्राप्त होता है । मेघनाद अनेक तर्क प्रस्तुत कर अपने पक्ष का समर्थन करता है । किन्तु विभीषण इसका प्रतिवाद करता है । वह कहता है कि धर्म से भ्रष्ट व्यक्ति को छोड़ देना ही अच्छा होता है

---

(1) वा0रा0 - युद्ध०/सर्ग 14 / 2-5

हाथ पर बैठे हुए विषैले साँप को त्याग देने से ही मनुष्य सुखी होता है । परस्पर विरोधी तर्कों से भरपूर इस सम्वाद की विशेषता ज्ञातव्य है ।

न ज्ञातित्वं न सौहार्दं न जातिस्तव दुर्मते ।
प्रमाणं न च सौदर्यं न धर्मो धर्मदूषण ।।
शोच्यस्त्वमसि दुर्बुद्धे निन्दनीयश्च साधुभिः ।
यस्त्वं स्वजनमुत्सृज्य परभृत्यत्वमागतः ।।
नैतच्छिथिलया बुद्ध्या त्वं वेत्सि महदन्तरम् ।
क्व च स्वजनसंवासः क्व वा नीच पराश्रयः ।।
गुणवान् वा परजनः स्वजनो निर्गुणोऽपि वा ।
निर्गुणः स्वजनः श्रेयान् यः परः पर एव सः ।।
यः स्वपक्षं परित्यज्य परपक्षं निषेवते ।
स स्वपक्षे क्षयं याते पश्चात् तैरेव हन्यते ।।
निरनुक्रोशता चेयं यादृशी ते निशाचर ।
स्वजनेन त्वया शक्यं पौरूषं रावणानुज ।।
इत्युक्तो भ्रातृपुत्रेण प्रत्युवाच विभीषणः ।
अजानन्निव मच्छीलं किं राक्षस विकत्थसे ।।
राक्षसेन्द्रसुतासाधो पारूष्यं त्यज गौरवात् ।
कुले यद्यप्यहं जातो रक्षसां क्रूरकर्मणाम्
गुणो यः प्रथमो नृणां तन्मे शीलमराक्षसम् ।।
न रमे दारूणेनाहं न चाधर्मेण वै रमे ।।
भ्रात्रा विषमशीलोऽपि कथं भ्राता निरस्यते ।।
धर्मात् प्रच्युतशीलं हि पुरूषं पापनिश्चयम् ।
त्यक्त्वा सुखमवाप्नोति हस्तादाशीविषं यथा ।।
परस्वहरणे युक्तं परदाराभिमर्शकम् ।
त्याज्यमाहुर्दुरात्मानं वेश्म प्रज्वलितं यथा ।।[1]

---

[1] वा०रा० - युद्ध०/ सर्ग 87/ 12-22

परस्पर विरोधी तर्कों से परिपूर्ण इस संवाद में जो उत्कृष्ट बिम्ब उभर कर आता है वह लक्ष्णीय है ।

इस तरह हम देखते हैं कि आदि कवि की इस अनूठी कृति में संवादगत बिम्ब जिस तरह परिष्कृत रूप धारण कर पाठक या श्रोता को प्रभावित करते है वह अद्‌भुत है । आदिकवि का संवाद सर्जन भी परवर्ती कवियों के लिए कितना मार्ग दर्शक रहा है इसका विचार हम एक अध्याय में पृथक करेंगे । यहाँ तो मात्र इतना कहना पर्याप्त है कि आदि कवि की कृति मे कोई ऐसा सम्वाद नहीं जो अपने आप में सुसंबद्ध अथवा चुस्त एवं दुरूस्त न हो, जैसे किसी प्रासाद की दीवार से एक ईंट भी नहीं खिसकाई जा सकती वैसे ही कवि के संवादों जो शब्द विन्यास एवं उसका अर्थ के साथ सामंजस्य है, उसका एक अंश भी ऐसा नहीं है जिसको व्यर्थ कहा जा सके ।

षष्ठ अध्याय

रामायण में बिम्ब-विधान-२ बहिरंग

षष्ठ अध्याय

रामायण में बिम्ब -विधान -2

बहिरंग-

क- दृश्य बिम्ब

ख- अदृश्य बिम्ब

ग- मानव बिम्ब

घ- मानवेतर बिम्ब

इस अध्याय में हमने रामायण में बिम्ब विधान के बहिरंग पक्ष के उद्घाटन का प्रयास किया है मानवीय भावनाओं को उत्प्रेरित करने वाले कुछ ऐसे बिम्ब होते हैं जो अन्त:करण को तो प्रभावित करते ही हैं साथ ही स्थूल रूप में वाह्य जगत को भी अनुप्राणित करते हैं । इस प्रक्रिया में दृश्य , अदृश्य मानव तथा मानवेतर बिम्बों का आकलन होगा । इसके पश्चात् अगले अध्याय में उसके आन्तरिक पक्ष का अध्यन किया जायेगा ।

(क) दृश्य बिम्ब :-

दृश्य बिम्ब के अन्तर्गत चाक्षुष बिम्ब के वर्णाश्रित बिम्ब का उल्लेख होगा । चूंकि वर्ण नाद स्पर्शादि सम्वेदन परस्पर संश्लिष्ट रहते हैं इसी लिए उसी क्रम में दृश्य बिम्बों को उदाहृत करना अपेक्षित समझा गया । तत्पश्चात् चाक्षुष बिम्बों के इतर आकृति परक स्थिर तथा गत्वर चित्रों को प्रस्तुत किया गया है ।

यों तो यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि कोई भी कवि अपने वर्ण्य वस्तु को अधिक प्रभावी तथा हृद्य बनाने के हेतु ही बिम्बों का सहारा लेता है । उनमें भी वह चाक्षुष बिम्ब का सर्वाधिक उपयोग करता है । क्यों कि चाक्षुष प्रत्यक्ष श्रवण घ्राण स्पृश्य आदि प्रत्यक्षों की अपेक्षा कवि के कथ्य को पाठक या श्रोता तक पहुँचाने में अधिक प्रभावी होता है । इस सन्दर्भ में आदि कवि वाल्मीकि कृत काव्य अन्य कवियों के लिए मार्ग दर्शक प्रतीत होता है , क्योकि उनके काव्यों में भी दृश्य बिम्बों में चाक्षुष बिम्बों का जम कर प्रयोग हुआ है । जिसका अनुसरण कालिदास , बाण आदि ने किया है ।

चाक्षुष वर्ण बिम्ब :-

कवि ने आँखों की लालिमा को प्रतिबिम्बित करने के लिए सामान्य रूप से ' संरक्त लोचने[1] और ' संरक्त नयन' [2] जैसे शब्द बिम्बों का बहुत प्रयोग किया है । पात्रों की मनः स्थिति को मूर्तित करने की दृष्टि से यत्र तत्र इसके पूर्व क्रोध या शोक जैसे अतिरिक्त विशेषण जोड़े गये हैं । पर ऐसे प्रयोग बहुत सामान्य प्रतीत होते हैं । तथा अत्यधिक आवृत्ति के कारण अपनी , प्रभविष्णुता खो देते हैं, लेकिन जब कवि ' रक्ताक्ष' के स्थान पर लोहिताक्ष [3] और'ताम्राक्ष '[4] जैसे पद बिम्ब प्रस्तुत करता है तो ताम्रवर्णी लालिमा का चाक्षुष प्रत्यक्ष अपेक्षाकृत अधिक रोचक लगता है ।

सुग्रीव के प्रमाद पर क्रुद्ध लक्ष्मण की सामान्य कथित ' कोप संरक्त '[5] आखें भी कुछ प्रभावोत्पादक इस लिए है क्योकि वहाँ कुपित लक्ष्मण का रूपउनके उर्ध्वगामी निश्वासों के वर्णन से साकार हो उठता है और साथ ही ' सधूम इव पावक ' [6] के रूप में उपमागर्भित वक्रोक्ति बिम्ब उसको और अधिक संवेद्य बनाने में उपकारक होता है ।

सीता हरण के प्रंसग में सीता द्वारा बहुशः विगर्हित राक्षसेन्द्र की आंखें क्रोध से जल रही हैं-

> एवमुक्तवतस्तस्य रावणस्य शिखिप्रभे ।
> क्रुद्धस्य हरिपर्यन्ते रक्तेनेत्रे बभूवतुः ।।[7]

---

(1) वा0रा0- अयो0/सर्ग 35/2, अरण्य सर्ग 29-15,किष्कि/सर्ग 11/18

(2) वा0रा0 - वाल0 /सर्ग 59/16, वाल/सर्ग 62/15, अरण्य/सर्ग 20/12,अरण्य/सर्ग49/07
किष्कि0/सर्ग 34/05

(3) वा0रा0-अयो0/सर्ग 59/25

(4) वा0रा0- अयो0/सर्ग 92/28

(5) वा0रा0- किष्कि0/सर्ग 31/29

(6) वा0रा0- किष्कि0/सर्ग 31/29

(7) " " अरण्य0/सर्ग 39/05

संरक्तनयनः श्रीमांस्तप्त कांचनभूषणः ।
क्रोधेन महताविष्टो नील जीमूत संनिभः ।।
दशास्यो विंशति भुजो बभूव क्षणदाचरः।[1]

यहाँ कवि ने मेघ के समान कृष्ण वर्ण रावण के शरीर पर तपे पीताभ स्वर्णा भूषणों के साथ उसके संरक्त कोपविष्ट नेत्रो का वर्णन कर कृष्ण, रक्त , पीत की संश्लिष्ट वर्ण विधान के द्वारा रावण का दुर्दान्त रूप उभारा है । ' रक्त ओष्ठ ' , रक्त और ताम्र वर्णी नख, ' ताम्रवर्णी केश', तथा 'ताम्र मुख ' का उल्लेख तो बहुत बार स्वतंत्र रूप से हुआ है । परन्तु जम्बुमाली के बाण से ताम्रमुखी हनुमान का रक्तरंजित मुख दृष्टव्य है -

तस्य तच्छुशुभे ताम्रं शरेणाभिहतं मुखम् ।
शरदीवाम्बुजं फुल्लं विद्धं भास्कररश्मिना।[2]

जहाँ हनुमान पृथ्वीतल के ऊपर आकाश में चैत्य प्रासाद के तोरण विंटक पर स्थित है और नीचे से राक्षण जम्बुमाली तीव्र निश्चित शर से उनके ताम्र वर्णी मुख पर प्रहार किया, जिससे कपीन्द्र हनुमान का मुख लहू लुहान हो गया । इस प्रकृति तथ्य को कवि ने बाण लगने पर मुख की स्थिति को सूर्यरश्मि से संयुक्त होकर विकसित शरद कालीन रक्ताम्बोज से मूर्तित किया है । यहाँ मुख की ताम्रता, अम्बुज की ताम्राभ रक्तिमा, सूर्यरश्मि की कनकद्युति और रक्त की लालिमा के संश्लिष्ट उल्लेख से एक साथ रक्त और ताम्र की प्रतीति होती है ।

जब राम के द्वारा छोड़े गये विराध के शरीर को बेधकर, खून से लथपथ बाण पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं । तब दहकते हुए लाल अंगारों और खून की ललाई की समान धर्मी कल्पना रूचिकर लगती है।[3]

रक्त बिम्बों में लक्ष्मण द्वारा नासाकर्तन लोहूलुहान शूर्पणखा और हस्तक्षेद के कारण कबन्ध के रूप वर्णन में एवं अन्य युद्ध प्रसंगो में प्रायः ' शोणितोक्षित'[4] शोणितौघ परिप्लुत'[5] 'सफेन बुलबुलों

---

(1) वा0रा0 अरण्य/सर्ग 49 / 7-7 1/2
(2) " सु0/सर्ग 44/ 8
(3) " अरण्य/ सर्ग 3/ 12
(4) " " /सर्ग 18/23,26
(5) " " / सर्ग 70 /11

बाले रूधिरं[1] का बहुशः उल्लेख मिलता है । यही नहीं खून से लथपथ छटपटाते क्रौंच को देखकर ही तो कवि की करूण निर्झरिणी फूट पड़ी ।[2]

इन्द्रजित् के निरन्तर वाणों के प्रहार से हुए घावों से राम और लक्ष्मण के शरीर से रक्त की धारा बह निकली उस समय वे दोनों फूले हुए दो पलास के वृक्ष लगें।

ततः शोणितदिग्धांगौ लक्ष्मणेन्द्रजितावुभौ ।
रणे तौ रेजतुर्वीरौ पुष्पिताविव किंशुकौ ।।[3]

इन्द्रजीत के शर जाल से राम लक्ष्मण अचेत हो वीर भूमि में गिर पड़े उस समय वे शिथिल पराक्रम निष्चेष्ट दो सर्पों की भाँति उच्छ्वास लेते अचेत पड़े थे और उनके शरीर से लगातार खून प्रवाहित हो रहा था तो लगा मानों सोने के दो ध्वज पड़े हों

निःश्वन्तौ यथा सर्पौ निश्चेष्टौ मन्दविक्रमौ ।
रूधिरश्रावादिग्धांगौ तपनीयाविव ध्वजौ ।।[4]

इन दोनो योद्धाओं का विस्तार से युद्ध वर्णन मिलता है । जहाँ दोनो के परस्पर, भयंकर शस्त्राघात से अंग छत विछत हो लोहू लुहान हो गये । लक्ष्मण के बाणों से इन्द्रजित् का सोने का कवच टूट कर बिखर गया है, उस समय वह रक्त रंजित होने के कारण बाल सूर्य जैसा दिखा दोनो के स्वर्ण मुख वाण उन दोनों के शरीर में प्रविष्ट हो रक्त से भीग कर निकलते और धरती में समाजाते वहाँ एकत्र बाणों का समूह प्रदीप्त अग्नि के साथ कुशों के ढेर जैसा लगता था । वाणों से ढके और खून से भीगे उन दोनों के शरीर जलती हुई आग के समान दिख रहे थे । यहाँ एक साथ रक्त, पलाश पुष्प, बाल सूर्य, अग्नि की रक्तिमा का प्रत्यक्ष होता है ।

प्रायः महान दुर्धष राक्षसों के मारे जाने पर परम अमर्षी महापाश्र्व बहुत बड़ी सेना लेकर संग्राम के लिए कूद पड़ा उसकी गदा पूर्णतः सोने की बनी थी उसमें सोने की पक्तियाँ जड़ी थी । इसलिए चमचमा रहीं थी । पूरी की पूरी शत्रुओं के रक्त मांस में सनी थीं। लाल मालाओं से अलंकृत थीं।

---

(1) वा0रा0- बाल0/सर्ग 19/ 9 , बाल/ सर्ग 19/19,अरण्य/सर्ग 30/06

(2) तं शोणित परीतांगं चेष्टमानं महीतले । बा0रा0-बाल0/सर्ग 2/11

(3) वा0रा0- यु0/सर्ग 90/37

(4) वा0रा0- यु0/सर्ग 46/05

जग्राहार्चिष्मतीं चापि गदां सर्वायसींतदा ।
हेमपट्टपरिक्षिप्तां मांसशोणितफेनिलाम् ।
विराजमानां विपुलां शत्रुशोणिततर्पिताम् ।।
तेजसा सम्प्रदीप्ताग्रां रक्तमाल्यविभूषिताम् ।[1]

इसी प्रकार कवि वहुधा रक्तमाला और रक्त चन्दन का सामान्य प्रयोग करता दिखाई पड़ता है । पात्रों के अलंकरण प्रसंग में ही ऐसे प्रयोग मिलते हैं कि ' रक्त माल्यदाम ' और शोणित की समन्वित रक्तिमा के साथ कृष्ण तथा पीत का संश्लिष्ट प्रयोग युद्धार्थ प्रस्थान कर रहे कुंभकर्ण द्वारा ग्रहण किए जाते विपुल शून्य के चित्र में दृष्टव्य है-

सर्वं कालायसं दीप्तं तप्तकंचनभूषणम् ।
रक्तमाल्यमहादामं स्वतश्चोद्गतपावकम् ।
आदाय विपुलं शूलं शत्रुशोणितरंजितम् ।। [2]

आदि कवि रामायण में कई वर्णो का संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करने में कुशल हैं । ऐसे स्थलों में भी शिल्प की सादगी बराबर बनी रहती है । लंका युद्ध के उपरान्त अग्नि देव द्वारा सीता की प्रामाणिकता के पश्चात् जब राम ने स्वीकारा, उस समय चरित्र शुद्धा सीता प्रदीप्त रूप देखें-

तरूणादित्य संकाशां तप्तकांचनभूषणाम् ।
रक्ताम्बरधरां बालां नीलकुञ्चितमूर्धजाम् ।।
अक्लिष्टमाल्याभरणां तथारूपामनिन्दिताम् ।[3]

पूँछ में आग लगा देने पर हनुमान अंशुमाली सूर्य की भांति लंका में दिखाई पड़े-

प्रदीप्तलांगूलकृतार्चिमाली
प्रकाशतादित्य इवार्चिमाली।[4]

---

(1) वा0रा0- युद्ध/सर्ग70/51-52 1/2

(2) " " "/सर्ग/65/18,20

(3) " " "/सर्ग 118/ 3 1/2

(4) वा0रा0- सु0/सर्ग 53/44

लंका को जलाने की इच्छा से हनुमान भवनों के शिखरों पर घूमने लगे-

ततः प्रदीप्त लागूंलः सविद्युदिव तोयदः ।

भवनाग्रेषु लकांया विचचार महाकपिः ।।[1]

मृग मारीच का दृश्य तो इस दृष्टि से अति मनोहर है ही, उसके मुख का रंग लाल कमल के समान, उदरभाग इन्द्रनील मणि के समान तथा पार्श्व भाग महुए के फूल के समान है ।

वस्तुतः वर्ण विन्यास विषयक आदि कवि वाल्मीकि की यह दिव्य कल्पना कही जायेगी ।

मणिप्रवरश्रृंगाग्रः सितासितमुखाकृतिः ।

रक्तपद्मोत्पलमुख इन्द्र नीलोत्पल श्रवाः ।।

किंचिदभ्युन्नतग्रीव इन्द्रनीलनिभोदरः ।

मधूकनिभपार्श्वश्च कंज किंजल्क संनिभः ।।

वैदूर्यसंकाशखुरस्तनुजंघः सुसंहतः ।

इन्द्रायुधसवर्णेन पुच्छेनोर्ध्वं विराजितः ।।

मनोहरस्निग्धवर्णो रत्ननाना विधैर्वृतः ।

क्षणेन राक्षसो जातो मृगः परमशोभनः ।।[2]

रैप्यर्विन्दुशतैश्चित्रं[3], ' राजीवचित्र पृष्ठः-----[4] , ' मुक्तामणि विचित्रागं[5] , ' रूचिरदंतोष्ठं रूप्यधातुतनूरूहम्'[6] ' ' हेम राजत वर्णाभ्यां पार्श्वाभ्यामुपशोभितम् '[7]

' नानावर्णविचित्रांग रत्नभूतो ममाग्रतः ।

द्योतयन् वनमव्यग्रं शोभते शशिसंनिभः ।।[8]

' तेनकांचनरोम्णा तु मणिप्रवरश्रृंगिणा ।

तरूणादित्यवर्णेन नक्षत्रपथवर्चसा ।।[9]

---

(1) वा0रा0-सु0/सर्ग 54/06
(2) " " अरण्य/सर्ग 42/15-19
(3) " " " /सर्ग 42/22
(4) " " " " " /24
(5) " " " " " /32 1/2
(6) " " " " " /33
(7) " " " " 43/1
(8) " " " " " /14
(9) " " " " " / 22

' आदि कवि का बिम्बन शिल्प आलोक से भरा है । स्वर्णिमद्युति विराजती है । उस दिव्य कल्पना में मृग की ही देह हेम मय नहीं है, अपितु वृक्ष, वन, महल, रथ, अश्व शास्त्रादि सभी स्वर्णमय है । मय की माया से सृष्ट और तपस्विनी स्वयं प्रभा से परिरक्षित गत्वर का दृश्य इस दृष्टि से उल्लेख्य हैं जहाँ तरूणादित्य वर्णी स्वर्णमय वृक्ष अपने स्वर्णमय कुसुम गुच्छों और स्वर्णिम लताओं के साथ वैदूर्यमणि की वेदिकाओं पर प्रदीप्त हो रहे हैं , तथा उसके स्वर्णमय पुष्पों पर कांचन मय भ्रमर मड़रा रहे है प्रातः कालीन सूर्य की आभा वाले विशाल कांचन वृक्षों से वहाँ के सरोवर आच्छन्न है । एवं उसके भीतर सुनहरे बड़े बड़े मत्स्य और स्वर्णिम कमल सुशोभित हो रहे हैं । वहाँ बने भवन रजत और कनकमय हैं, एवं सोने की बनी खिड़कियों में मोती की जालियाँ लगी हुई है"।[1]

इसी प्रकार जब समुद्रलाघने वाले हनुमान को विश्राम देने के लिए मैनाक सागर मध्य से ऊपर उठता है तब वह शस्य के समान नीले आकाश को अपने आदित्यवर्णी स्वर्णिम उत्तम शिखरों के प्रभापुंज से रेखांकित करता हुआ सैकड़ों सूर्यों के समान उद्भासित होता है-

शातकुम्भमयैः श्रृगैः सकिंनरमहोरगैः ।
आदित्योदयसंकाशैरूल्लिखद्भिरिवाम्बरम्।।
तस्य जाम्बूनदैः श्रृंगैः पर्वतस्य समुत्थितैः।
आकाशं शस्त्रसंकाशमभवत् कांचनप्रभम्।।
जातरूपमयैः श्रृंगैर्भ्राजमानैर्महाप्रभैः।
आदित्यशतसंकाशः सोऽभवद् गिरिसत्तमः ।।[2]

चित्रकूट पर्वत पर की शिलायें तो नीलपीत श्वेत और अरूण हैं ही, उनके प्रदेश भी बहुरंगे है । इसमें से वे कोई चांदी के सामन चमक रहे हैं कोई लोहू की लाल आभा का विस्तार करते हैं। कहीं प्रदेशों के रंग पीले और मंजिष्ठ वर्ण के हैं । कोई श्रेष्ठ मणियों की तरह उद्भासित होते है ।कहीं पुखराज और केवड़े के पुष्प के समान कान्ति वाले हैं ।

---

(1) वा0रा0 - किष्कि0/सर्ग 50/27-32
(2) " " सु0/सर्ग 1/ 104-106

केयचिद् रतजसंकाशाः केचित् क्षतजसंनिभाः ।
पीता आजिष्ठवर्णाश्च केचिन्मणिवरप्रभाः ।।
पुष्पार्ककेतकाभाश्च केचिज्ज्योतरिसप्रभाः ।
विराजन्तेऽचलेन्द्रस्य देशा धातुविभूषिताः ।।[1]

सोने चांदी तथा तांबे के सदृश रंग वाली विविधवर्णी गैरिक धातुओं से युक्त पंचवटी के पर्वत ऐसे प्रतीत होते हैं मानो झरोखे के आकार में की गई नीले पीले सफेद आदि रंगों की उत्तम श्रृंगार रचनाओं से अलंकृत हाथी सुशोभित हो रहे हैं ।[2]

यहाँ उल्लेखनीय है वाल्मीकि एक ही वस्तु के कई सूक्ष्म वर्णभेद एक साथ उपस्थित करते हैं । स्वर्ण के विविध रूपों को उदभासित करने के लिए एक स्थल पर ही शातकुम्भ, जाम्बूनद, कांचन जातरूप[3] जैसे शब्द का प्रयोग वे करते हैं । वैसे ही एकत्र नील रक्त श्वेत कमलों की प्रतीति के लिए नीलोत्पल , रक्तोत्पल, कुमुद का प्रयोग करते हैं । तभी तो पम्पा सरसी अरूण कमलों से ताम्रवर्ण की' कुमुदों से शुक्लवर्ण की तथा नील कमलों से नील रंग की होने के कारण बहुरंगी कालीन की भांति शोभायमान थी ।[4] वानरों के वर्णन में भी कई स्थलों पर उनके विशाल ताम्रपीत श्वेत और सित वर्णो के रोमों की किरणों जैसा कहा गया है केवल रोमराजि भर ही ऐसी विचित्र वर्णा नहीं है बल्कि वानर सेना के कार्य समूह भी कई रंगो के हैं, कोई बाल सूर्य के समान पीताभ और कोई श्वेत ।

अपमानित शूर्पणखा प्रतिशोध हेतु प्रेरित करने के लिए जब रावण के पास लंका पहुँचती है तो उस समय उत्तम स्वर्णिम आसन पर आसीन रावण उसी भांति सुशोभित हो रहा था जैसे स्वर्ण मय वेदिका पर स्थापित अग्निदेव घी की आहुति से प्रज्वलित हो रहे हों -

आसीनं सूर्यसंकाशे कांचने परमासने ।
रूक्मवेदिगतं प्राज्यं ज्वलन्तमिव पावकम् ।।[5]

सूर्य स्वर्ण और अग्नि ज्वाला की सदृश पीतिमा का संश्लेषण आदि कवि को विशेष प्रिय प्रतीत होता है कवि पीत के साथ श्वेत का मनोहारी मिश्रण भी प्रस्तुत करता है । अशोक वाटिका में सीता के पास जाते हुए रावण का चित्र दृष्टव्य है । जहाँ वह आगे आगे चलने वाली रमणियों द्वारा

---

(1) वा0रा0 -अयो0/सर्ग 94/5,6

(2) वा0रा0 - सौवर्णै राजतैस्ताम्रैर्देशे देशे तथा शुभैः ।
गवाक्षिता इवा भान्ति गजाः परमभक्तिभिः ।। वा0रा0-अरण्य/सर्ग15/15

(3) वा0रा0-सु0/सर्ग 1/104-105

(4) पद्म सौगन्धिकैस्ताम्रां शुक्लां कुमुदमण्डलैः ।
नीलां कुवलयोदघाटै बहुवर्णां कुथामिव ।। वा0रा0-अरण्य/सर्ग 75/20

(5) वा0रा0- सु0/सर्ग 32/5

धारण किए गये अनेकों दीप मालिकाओं के प्रकाश से प्रकाशित हो रहा है । वह मथे हुए दूध के फेन की भांति श्वेत वस्त्र धारण किए हुए है ।[1] स्वतंत्र श्वेत वर्ण विन्यास की दृष्टि से भी कुछ स्थल बहुत प्रभावकारी हैं । प्रस्तुत है चन्द्रोदय प्रकट होने पर छिटकती चांदनी का बिम्ब चित्र-

शंखप्रभं क्षीरमृणालवर्ण-
मुद्गच्छमानं व्यवभासमानम् ।
ददर्श चन्द्रं स कपिप्रवीरः
पोप्लूयमानं सरसीव हंसम् ।।[2]

' शंख क्षीर मृणाल की सी कान्ति वाला चन्द्र आकाश में वैसे ही उदित हुआ है , जैसे किसी सरोवर में कोई हंस तैर रहा हो ' । यहाँ सरोवर में हंस के तैरने के हल्के गतिशील अप्रस्तुत बिम्ब के द्वारा कवि ने एक साथ हंस, शंख, दूध और मृणाल इन सब समानवर्णी श्वेत उपमानों को, चन्द्र की धवलिमा अधिक उद्भासित करने के लिए ला खड़ा किया है । श्वेत वर्ण प्रयोग का यह बिम्बन शिल्प अधिक सरल और स्वाभाविक है । उस पर कल्पना का अधिक उपयोग श्वेत रंगों के भव्य वितान में वहाँ देखने को मिलता है । जहाँ त्रिजटा सीता के समक्ष शुभ सूचक अपना सांकेतिक स्वप्न सुनाती हैं-

गजदन्तमयीं दिव्यां शिविकामन्तरिक्षगाम् ।।
युक्तां वाजिसहस्त्रेण स्वयमास्थाय राघवः ।
शुक्लमाल्याम्बरधरो लक्ष्मणेन समागतः ।।
स्वप्ने चाद्य मया दृष्टा सीता शुक्लाम्बरावृता ।
सागरेण परिक्षिप्तं श्वेतपर्वतमास्थिता ।।
पाण्डुरर्षभयुक्तेन रथेनाष्टयुजा स्वयम् ।[3]

---

(1) दीपिकाभिरनेकाभिः समन्तदवभासितम् ।
गन्धतैलावासिकताभिर्ध्रियमाणाभिरग्रतः ।।
मथितामृतं फेनाभमरजोवस्त्रमुत्तमम् । वा0रा0-सू0/सर्ग 18/18, 23 1/2

(2) वा0रा0- सु0/सर्ग 2 /58

(3) वा0रा0 - सु0 / सर्ग 27/ 9-11, 16 1/2

अन्त में वाल्मीकि रामायण में वर्ण योजना के सम्बन्ध में सहमति व्यन्त की जा सकती है ।

" वाल्मीके वर्ण बिम्बेषु तत्काव्यार्थस्यालौकिकत्वमुत्कृष्टत्वंचोद्‌गातुमिव कांचनमति वर्तते । तदनु आदित्य वणोत्कर्ष आदि काव्यस्य सार्वकालिकं महत्वमुदघोषयन्निव संराजते । पाश्चाद्रक्त वर्णस्य विविध भेदाः स्फुरन्ति ।

अनेक वर्णानां संश्लिष्ट चित्रोपस्थापने तु कवि विशेषेण प्रभवति । मधूक गजदन्त मथित दुग्धफेन शशरूधिरादि प्रयोगाः क्वचित्केऽपि वर्ण विन्यास दृष्ट्या नवीनत्वेनोदभावनीयाः ।।[1]

श्रव्य बिम्बः-

संवेदनात्मक बिम्बों की दृष्टि से चाक्षुक्ष बिम्बों के बाद श्रव्य बिम्बों का प्रयोग रामायण में अधिक दिखाई देता है । नाद बिम्बों के विविध प्रकार रामायण में उपलब्ध हैं । क्यों कि कवि का जीवन प्रकृति के साहचर्य में ही अधिक बीता, इसलिए प्रायः पर्वत कन्दराओं , प्रपातों मेघों , गजों, मयूरों, भ्रमरों , सारिका कोयल चक्रवाक क्रौंच आदि की अनेकानेक ध्वनियाँ रामायण में अधिक प्रयुक्त हुई है।[2] इसके अतिरिक्त पर्वतीय प्रदेशों में वायु विघट्टन,[3] मण्डूकराव , नदी संगम का वारि विघट्टन,[4] जल में कुम्भ भरने का जलस्वन[6] आदि सूक्ष्म नाद बिम्ब उपलब्ध हैं ।

जन-उल्लास प्रकट करने वाले हलहला,[7] शब्द बिम्ब का प्रयोग , दुखी जन समूह की पीड़ा को मूर्तित करने के लिए भी किया गया है । राम के राजकुल से मिलते ही राजा की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई , इसलिए लोग दोहरी पीड़ा से राम के वन गमन, और इधर राजा की विपन्नता

ततो हल हलाशब्दो जज्ञे रामस्य पृष्ठतः ।
नराणां प्रेक्ष्य राजानं सीदन्तं भृशदुःखितम् ।।
हा रामेति जनाः केचिद् रामगातेति चापरे ।
अन्तःपुर समृद्धं च क्रोशन्तं पर्यदेवयन् ।।[8]

---

(1) साग0- पृष्ठ 3।

(2) वा0रा0 अयो0/सर्ग ।03/33, किष्किं0/सर्ग ।/15 , अयो0/सर्ग 28/7/ , अरण्य/सर्ग 23/01, किष्कि0/सर्ग 28/11, अरण्य/सर्ग 73/35 , अयो0/सर्ग52/03, किष्कि0/सर्ग 1/39, किष्कि0/सर्ग27/9, किष्कि0/सर्ग 28/18,अरण्य/सर्ग73/12,किष्कि0/सर्ग1/14,18,28,92, अरण्य/सर्ग 23/15, किष्कि0/सर्ग 1 /23,28,31 ,अयो0/सर्ग 95/11 , अरण्य/सर्ग 73/12.

(3) वा0रा0-किष्कि/सर्ग1/15, किष्कि0/सर्ग 28/10

(4) वा0रा0-किष्कि0/सर्ग 27/8

(5) अयो0/सर्ग 54/06

(6) वा0रा0-अयो0/सर्ग 63/22

(7) वा0रा0-अयो0/सर्ग 40/37, अयो0/सर्ग81/15

(8) अयो0/सर्ग 40/37-38,

राम वन जाते समय माताओं से मिल रहे हैं, उस समय माताओं के करूण चीत्कार से पूरा भवन क्रौंची निःस्वन-जैसे नाद से भर गया है । जहाँ पहले मेघ गर्जन तुल्य मुरज, पणव घोष हुआ करते थे । वहीं आज विलाप और क्रन्दन-पणव घोष हुआ करते थे । वहीं आज विलाप और क्रन्दन-

जज्ञेऽथ, तासां संनादः क्रौंचीनामिव निःस्वनः ।
मानवेन्द्रस्य भार्याणामेवं वदति राघवे ।।
मुरजपणवमेघघोषवद्
दशरथ वेश्मबभूव यत् पुरा ।
विलपितपरिदेवनाकुलं
व्यसनगतं तदभूत् सुदःखितम् ।।[1]

जब राम लक्ष्मण और सीता जंगल की ओर रथ पर सवार होकर चल पड़े तो उनके वियोग से मतवाले हाथी दुखी और क्रुद्ध हो चिघाड़ने लगे घोड़े हिनहिनाने लगे । पूरे नगर में महान उद्वेजक ध्वनि फैल गई-

तत्समाकुलसंभ्रान्तं मत्तसंकुपितद्विपम् ।
हयसिंचितनिर्घोषं पुरमासीन्महास्वनम् ।।[2]

जव अरण्य में पितृ शोक से दुखी सीता-सहित राम आदि सभी भाई अतिनाद कर रहे हैं, तो पर्वत से उसकी प्रतिध्वनि निकल रही है ।[3]

इस करूण नाद चित्रण के अतिरि-क्त कांची, नूपुर झंकार[4] तथा विविध वाद्ययंत्रों की ध्वनियाँ[5] भी मिलती हैं ।

युद्ध के प्रसंग में बहुधा भटों का बलाहक संकाश महानाद[6] भी मिलता है ।

---

(1) वा0रा0-अयो0/सर्ग 39/40-41

(2) वा0रा0-अयो0/सर्ग 40 /19

(3) तेषां तु रूदतां शब्दात् प्रतिशब्दोऽभवत् गिरौ ।
भ्रातॄणां सह वैदेह्या सिंहानां नर्दतामिव ।। अयो0-/सर्ग 103/33

(4) वा0रा0/सु0/सर्ग 4/11

(5) वा0रा0- सु0/सर्ग 5/9

(6) वा0रा0- सु0/सर्ग 47/18

अपनी सेना के रथों की घरघराहट , घोड़ों की हिनहिनाहट और हाथियों की भयानक चिंघाड़ से भरे सेना महास्वन से पृथ्वी तथा आकाश को पूर्ण करता अक्ष कुमार हनुमान से लड़ने चला। उस समय पृथ्वी चीख उठी . समुद्र में भयंकर तूफ़ान उठ आया और आकाश गर्जना कर उठा -

स पूरयन् खं च महीं च साचलां ।
तुरंगमातगंमहारथस्वनैः ।
बलैः समेतैः सहतोरणस्थितं
समर्थमासीनमुपागमत् कपिम् ।।
ररास भूमिर्नततापं भानुमान्
ववौ न वायुः प्रचचाल चाचलः ।
कपेः कुमारस्य च वीर्यसंयुगं
ननाद च द्यौरुदधिश्च चुक्षुभे ।।[1]

अशोक वनिका विध्वंस के समय हनुमान की भीषण गर्जना हुई ।[2] वनिका नष्ट कर प्रासाद-विनाश की आकांक्षा से जब वे उसके उन्नत शिखर पर कूद कर चढ़गये तो, अपना शरीर बढाते हुए पूँछ पटक कर महान कर्णोद्वेजक निनाद किया -

पुच्छमास्फोट्यामास लंका शब्देन पूरयन् ।।
तस्यास्फोटितशब्देन महता चानुनादिना ।
पेतुर्विहंगा गगनादुच्चैश्चेदमघोषयत् ।।[3]

लंका में विविध अवसरों पर हनुमान ने अपने भयंकर नाद से दशों दिशाओं को भर दिया-

' उत्पपात नदन् व्योम्नि दिशोदश विनादयन् ।[4]

इन्द्रजित और हनुमान के युद्ध के समय इन्द्रजित के रथ भेरी, कार्मुक रव आदि उल्लेख्य हैं, जिसको सुनकर हनुमान पुनः उछल पड़े -

---

(1) वा0रा0 सु0/सर्ग 47/7,13
(2) वा0रा0-सु0/सर्ग 42/ 30-31
(3) वा0रा0-सु0/सर्ग 42/31-32
(4) वा0रा0- सु0/सर्ग 46/23

ततः स तत्स्यन्दननिःस्वनं च

मृदगंभेरीपटहस्वनं च ।

विकृष्यमाणस्य च कार्मुकस्य

निशम्य घोषं पुनरूत्पपात ।।[1]

सागर में सेतु बन्धन के समय उसमें पटकी जाती विशाल शिलाओं के शब्द[2] शाखामृग यूथपों के तुमुल निनाद,[3] आदि भी स्मरणीय हैं ।

सुग्रीव का गगन भेदी क्रूरनाद सुनकर तो गायें हतप्रभ हो गई, डर गई जैसे राजदोष सें संस्पृष्ट व्याकुल कुल स्त्रियाँ

स तु राम वचः श्रुत्वा सुग्रीवो हेम पिगंलः ।।

ननर्द क्रूर नादेन विनिभिन्दन्निवाम्बरम् ।

तत्र शब्देन वित्रस्ता गावो यान्ति हत प्रभाः ।।

राजदोषपरामृष्टाः कुलस्त्रय इवाकुलाः ।

द्रवन्ति च मृगाः शीघ्रं मग्ना इव रणे हयाः ।

पतन्ति च खगा भूमौ क्षीणपुण्या इव ग्रहाः ।।.

ततः स जीमूतकृत प्रणादो

नादं ह्यमुंचत् त्वरया प्रतीतः ।

सूर्यात्मजः शौर्यविवृद्धतेजाः

सरित्पतिर्वानिलचंचलोर्मिः।।[4]

अशुभ संकेतध्वनियाँ भी बिम्बित हुई हैं। मृग मारीच को मार कर राम ज्यों ही सीता को देखने की उत्कंठा से आश्रम की ओर चले कि पीछे गोमायु का क्रूर स्वर सुनाई पड़ा-

" क्रूरस्वनोऽथ गोमायुविननादास्य पृष्ठतः ।।"[5]

---

(1) वा0रा0- सु0/सर्ग 48/29

(2) वा0रा0- युद्ध/सर्ग 22/67

(3) वा0रा0-युद्ध/सर्ग 42/10.

(4) वा0रा0-/किष्कि0/सर्ग 14/19-22

(5) वा0रा0-अरण्य/सर्ग 57/02

शंकित मन से जब राम आश्रम की ओर जा रहे थे तो खिन्न-मुख-मृग पक्षियों ने बायें तरफ से घोर शब्द किया ।

तं दीन मानसं दीनमारेदुर्मृगपक्षिणः ।।
सव्यं कृत्वा महात्मानं घोरांश्च ससृजुः स्वरान् ।[1]

परम दारूण वंचुलक नामक पक्षी का शब्द सुनाई पड़ रहा है । फिर अचानक उस महारण्य को नष्ट सा करता भयंकर शब्द उत्पन्न हुआ । प्रबल मातरिश्वा ने जैसे सारे वन को अपने में समेट लिया हो उस समय की ध्वनि से पूरा आकाश मण्डल मानो भर गया हो ।

एष वंजुलको नाम पक्षी परमदारूणः ।
आवयोर्विजयं युद्धे शंसन्निव विनर्दति ।।
तयोरन्वेषतोरेवं सर्वं तद् वनमोजसा ।
संजज्ञे विपुलः शब्दः प्रभंजन्निव तद् वनम् ।।
संवेष्टितमिवात्यर्थं गहनं मातरिश्वना ।
वनस्य तस्य शब्दोऽभूद् वनमापूरयन्निव ।।[2]

शूर्पणखा अपने नासिका कर्तन से क्रुद्ध और अपमानित है । उसने बार-बार मेघ जैसा गर्जन करके भाई खर से अपना दुःख सुनाया ।[3] राम के साथ जब खर विशाल सेना लेकर लड़ने आया, तब युद्ध पूर्व भटों का तुमुल निनाद हुआ ।[4]

भरत जब राम को बुलाने के लिए वन में जाते हैं तो प्रस्थान बेला में शंख-तूर्य और मांगलिक स्तवों की ध्वनियों का समिश्रण श्रव्य बिम्ब की दृष्टि से उदाहरणीय है इन बिम्बों के अतिरिक्त नाद

---

(1) अरण्य/सर्ग 57/12-12 1/2
(2) " "/सर्ग 69/23-25
(3) " "/सर्ग 18/23
(4) " "/सर्ग 22/17
(5) ततो नान्दी मुखीं रात्रिं भरतं सूतमागधाः ।
तुष्टुवुः सविशेषज्ञाः स्तवैर्मंगलसंस्तवैः ।।
सुवर्ण कोणाभिहतः प्राणदद्यामदुन्दुभिः ।
दध्मुः शंखश्च शतशो वाद्यांश्चोच्चावचस्वरान् ।।
स तूर्य घोषः सुमहान् दिवमापूरयन्निव ।
भरतं शोकसंतप्तं भूयः शोकैररन्घयत् ।।वा0रा0-अयो0/सर्ग 81/1-3

उत्प्रेक्षण भी आदि काव्य में हुआ है ।

प्रस्रवण गिरि पर निवास करते राम वर्षा काल में सरयू की बाढ़ की कल्पना कर रहे हैं । वे सोचते हैं कि, जैसे उन्हें ' रामको ' वन आते देख अयोध्यावासी लोग शोक से कोलाहल कर उठे थे, वैसे ही इस समय निश्चित ही सरयू का वेग होगा ।

नूनमापूर्यमाणायाः सरय्वा वर्धयते रमः ।
मां समीक्ष्य समायान्तमयोध्यायाइव स्वनः ।।[1]

स्पृश्य बिम्ब-

चित्रकूट में माताओं ने वात्सल्याभिभूत हो राम की पीठ से धूलि पोंछी-

ताः पाणिभिः सुखस्पर्शैर्मृद्वंगुलितलैः शुभैः ।
प्रममार्जू रजः पृष्ठाद् रामस्यायतलोचनाः ।। [2]

कांचन मृग मारीच को लुभाने के लिए पंचवटी में पर्णशाला परिसर के आसपास चक्कर काटता फिर रहा है । उस विचित्र मृग को अन्य मृग देखकर पास आते हैं और उसे सूंघकर चारों ओर भाग जाते हैं । वह मृग मारीच भी उन वन्य मृगों का केवल स्पर्श भर करता है-

समुद्वीक्ष्य च सर्वे तं मृगा येऽन्ये वनेचराः ।।
उपगम्य समाघ्राय विद्रवन्ति दिशो दश ।
राक्षसः सोऽपि तान् वन्यान् मृगान् मृगवधेरतः ।।
प्रच्छादनार्थं भावस्य न भक्षयति संस्पृशन् ।[3]

यहाँ घ्राण और स्पृश्य का तो सकारात्मक स्पष्ट उल्लेख है ही ' मृगवधेरतः भावस्य प्रच्छादनार्थ--- तान् वन्यान् मृगान् संस्पर्शन् न भक्षयति ' इस कथन से रसनेन्द्रिय की स्वाद- संवेदना भी अनुभव में उतरती है । इस प्रकार यहाँ एक साथ घ्राण, स्पृश्य और स्वाद का संश्लिष्ट संवेदनात्मक बिम्ब बनता है ।

न कादली न प्रियकी न प्रवेणी न चाविकी ।
भवेदेतस्य सदृशी स्पर्शेऽनेनेति मे मतिः ।। [4]

---

(1) वा0रा0 - किष्कि/सर्ग 28/56
(2) वा0रा0- अयो0/सर्ग 104/19
(3) वा0रा0-अरण्य/सर्ग 42/28-28 1/2
(4) वा0रा0-अरण्य/सर्ग 43 / 36

राम ने कहा- कि जब इस कांचन त्वचा पर मेरे साथ जानकी बैठेगी तो वह सुख अलग ही होगा।[1] उसके समान न कदली और प्रियंकजाति के श्रेष्ठ मृगों और बकरे तथा भेड़ की त्वचा भी सुखद न होगी ।

आघ्रेय बिम्ब-

वाल्मीकि रामायण में नाना प्रकार के कुसुमों का उल्लेख है, जिसमें वैसी - वैसी सुगन्धि की कल्पना होती है, पर उत्पन्न गंध धूप और अगरू[2] का प्रायः प्रयोग है । ऋषि अगस्त के भ्राता के आश्रम में पके पीपल की गंध का वर्णन है-

पिप्पलीनां च पक्वानां वनादस्मादुपागतः ।
गन्धोऽयं पवनोत्क्षिप्तः सहसा कटुकोदयः ।।[3]

लंकासे सागरानूप तक फैली अरण्य स्थली का वर्णन करते हुए कवि ने आघ्रेय बिम्बों की सृष्टि की है -

निर्यासरसमूलानां चन्दनानां सहस्त्रशः ।
वनानि पश्यन् सौम्यानि घ्राण-तृप्ति-कराणिच ।।
अगरूणां च मुख्यानां वनान्युपवनानि च ।
कक्कोलानां च जात्यानां फलिनां च सुगन्धिनाम् ।।[4]

वर्षा वर्णन के समय गंध और शब्द का संश्लिष्ट चित्र दृष्टव्य है-

प्रहर्षिताः केताकि पुष्पगन्ध
माघ्राय मत्ता वननिर्झरेषु ।
प्रपात-शब्दाकुलिता गजेन्द्राः
सार्धं मयूरैः समदा नदन्ति ।।[5]

---

(1) वा0रा0 अरण्य/सर्ग43/35
(2) वा0रा0 अरण्य/ सर्ग 35/22
(3) वा0रा0- अरण्य/सर्ग 11/49
(4) वा0रा0- अरण्य/सर्ग 35/21-22
(5) वा0रा0- किष्कि0/सर्ग 28/28

वात्सल्य भाव की अभिव्यन्ति के लिए वाल्मीकि रामायण में शिरोघ्राण की बहुशः आवृन्ति हुई है ।[1] लंका के अलंकार भूत रावण भवन के भीतर रक्खे दिब्य पुष्पक वितान पर हनुमान जब चढ़ गये तो वहाँ बैठकर वे सब ओर फैली हुई, नाना प्रकार के पेय, भक्ष्य और अन्न की दिव्य गंध को सूँघने लगे । वह गंध मूर्तिमान पवन के समान प्रतीत हो रही थी । वह गंध हनुमान जी को अपनी ओर वैसे ही आकृष्ट कर रही थी जैसे किसी स्वजन को अपने बन्धु-बान्धव बुलाते हैं-

तत्रस्थः सर्वतो गन्धं पानभक्ष्यान्नसम्भवम् ।।
दिव्यं सम्मूर्च्छितं जिघ्रन् रूपवन्तमिवानिलम् ।
स गन्धस्तं महासत्वं बन्धुर्बन्धुमिवोन्त्तमम् ।।
इत एहीत्युवाचेव तत्र यत्र स रावणः ।[2]

उस गंध का अनुसरण करते जब हनुमान कुछ आगे बढ़े तो एक विशाल शाला हवेली दिखाई पड़ी । उसमें मणियों की सीढ़ियाँ बनी थीं सोने की खिड़कियाँ लगी थीं । फर्श स्फटिक मणि की बनी थीं । जहाँ बीच बीच में हाथी दांत की विभिन्न आकृतियाँ बनाई गई थीं । मोती , प्रवाल, रजत और चामीकर के द्वारा भी अनेकों आकार तैयार किए गये थे । मणियों के बने बहुत से खम्भे जो एक समान सीधे, बहुत ऊँचे और सब ओर से अलंकृत थे । आभूषण की भांति उस हवेली की शोभा बढ़ा रहे थे । अपने स्तम्भ रूपी पंखों से मानो वह आकाश की ओर उठती सी जान पड़ती थीं । उनके भीतर वन-पर्वत आदि के चिन्हों से युन्त एक बहुत बड़ा कालीन बिछा हुआ था मन्त पक्षियों का कलरव गूंजता था । वह अगरू के धुएँ से धूमिल दिखाई देती थीं, पर वास्तव में वह हंस के समान निर्मल और श्वेत थीं । पत्र पुष्प के उपहार से वह शाला चितकबरी सी जान पड़ती थी । अतीव सुन्दरता के कारण वर्ण प्रकर्ष के कारण आंखों और मन को भी मोद प्रदान करने वाली थी । उस दिव्य शाला से माता की भांति शब्द स्पर्श आदि पांचों विषयों के द्वारा हनुमान की श्रोत्रादि पांचो इन्द्रियाँ संतृप्त हो गई[3] यह कवि ने एक साथ ऐन्द्रियिक संवेदन कराया है ।

श्रृंगार भाव से उन्मुन्त युवतियों के मुख-घ्राण की चर्चा है ।[4] पंलग पर सोये राक्षस राज के मुख से आम्र और नागकेसर की सुगन्धि से मिश्रित, मौलसिरी के सुवास से सुवासित और उन्तम अन्न

---

(1) वा0रा0- बाल/सर्ग 22/3 , अयो0 सर्ग ।।8/13
(2) वा0रा0 - सु0/सर्ग 9/19-20
(3) वा0रा0- सु0/सर्ग 9/21-29 1/2
(4) वा0रा0 - सु0/सर्ग 9/56-58

रस से संयु-क्त मधुपान की गंध से मिली हुई जो सौरभ यु-क्त सांस निकल रही थी, उससे सारा गृह परिपूर्ण हो रहा था ।[1]

नहि गन्धमुपाघ्राय रामलक्ष्मणयोस्त्वया ।
शक्यं संदर्शने स्थातुं शुना शार्दूलयोरिव।।[2]

इसमे कु-त्ते की घ्राण क्षमता का उल्लेख है । कु-त्ते का घ्राण संवेदन अत्यन्त प्रखर होता है, यह सर्व प्रसिद्ध बात है । यदि उसे सिंह , बाघ आदि किसी अपने हिंसक जन्तु का पता चल जाए उसकी गंध लग जाए, तो वहाँ कु-त्ता एक क्षण भी नहीं टिक सकता, भाग खड़ा होता है । वैसे ही यदि रावण को राम लक्ष्मण की गंध लग जाती, तो वह कदापि सीताहरण का दुस्साहस न करता । आश्रम सूना था, इसलिए रावण रूपी कु-त्ते ने ऐसा निन्दनीय चौर-कर्म किया ।

आस्वाद्य बिम्ब-

महर्षि भारद्वाज के तपः प्रभाव भरत की सेना के स्वागत के लिए वहुविध खाद्य और पेय सुस्वादु पदार्थ निर्मित हो गये -

वाप्यो मैरेयपूर्णाश्च मृष्टमांसचयैर्वृताः ।
प्रतप्तपिष्ठरैश्चापि मार्गमायूरकौक्कुटैः ।।
पात्रीणां च सहस्त्राणि स्थालीनां नियुतानि च ।
न्यर्बुदानि च पात्राणि शातकुम्भ मयानि च ।।
ह्रदाः पूर्णा रसालस्य दघ्नः श्वेतस्य चापरे ।
बभूवुः पायसस्यान्ये शर्कराणां च संचयाः ।।[3]

मृग रूप में अन्य दो राक्षस मृगों के साथ दण्ड-कारण्य में विचरण करता राक्षस मारीच ऋषियों तपस्वियों का मांस और रूधिर खाता पीता था ।

दीप्तजिह्वो महादंष्ट्रस्तीक्ष्णश्रृंगो महाबलः ।
व्यचरन् दण्डकारण्यं मॉसभक्षो महामृगः ।।
अग्निहोत्रेषु तीर्थेषु चैत्यवृक्षेषु रावण ।
अत्यन्तघोरो व्यचरंस्तापसांस्तान् प्रधर्षयन् ।।

---

(1) वा0रा0- सु0/सर्ग-10/23-24
(2) वा0रा0-सु0/सर्ग-21/31
(3) वा0रा0-अयो0/सर्ग 91/70-73

निहत्य दण्डकारण्ये तापसान् धर्मचारिणः ।

रूधिराणि पिबंस्तेषां तन्मांसानि च भक्षयन् ।।

ऋषि मांसाशनः क्रूरस्त्रासयन् वनगोचरान् ।

तदा रूधिरमत्तोऽहं व्यचरं दण्डकावनम् ।।[1]

यहाँ माँस भक्षी महान मृग के रूप में उसके माँस भक्षण और रूधिर पान संवेदना का ऐन्द्रियिक साक्षात्कार होता है । माँस भक्षी राक्षस मृग की भयंकरता तथा उसके रूधिर स्वादन में प्रमुख सहायक अवयवों का उल्लेख करके कवि ने आस्वाद्य बिम्बों को अधिक प्रभावी बना दिया है । ' महाकायः और महाबलः' से उसकी शारीरिक शक्ति तीक्ष्णमृगः और दीप्त जिह्वः से क्रमशः आक्रमण साफल्य तथा रूधिर पान लोभ प्रतिबिम्बित हुए हैं ।

रावण के अन्तः पुर में जब सीता को ढूँढ़ते हुए हनुमान उसकी मधुशाला में पहुचते तो वहाँ अलग-अलग मृगों, भैसों और सुअरों के मांस रक्खे हुए दिखे । सोने के पात्रो में मोर गैंडा मुर्गे-साही के मांस थे ' जो दही और नमक मिलाकर रक्खे गये थे । भांति भांति के बकरे, खरगोश, आधे खाए हुए भैंसे मत्स्य और भेड़ें ये सब पकाकर रक्खे गये थे उनके साथ अनेक प्रकार की चटनियाँ भी थीं । तरह तरह के पेय और भक्ष्य पदार्थ भी थे । खटाई और नमक के साथ भांति भांति के राग और खाण्डव भी रक्खे थे । मद्यपान के पात्र इधर उधर लुड़के पड़े थे। छौक वघार कर नाना प्रकार के विविध मांस चतुर रसोइयों द्वारा बनाए गये थे । बहुविध कृत्त्रिम शराब जैसे शंकरासव, माध्वीक, पुष्पासव, फलासव आदि नाना प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित किए गये थे । किसी सोने चांदी के घड़े में मदिरा शेष थी तो किसी की सब की सब पीली गई थी कोई घड़ा लबालब भरा था ।[2]

मुक्तासमाभं सलिलं पतद्वै

सुनिर्मलं पत्र पुटेषु लग्नम् ।

हृष्टा विवर्णच्छदना विहंगाः

सुरेन्द्र दत्तं तृषिताः पिबन्ति ।। [3]

---

(1) वा0रा0 - अरण्य/सर्ग 39/ 3-6

(2) वा0रा0- सु0/सर्ग 11/14-27 1/2

(3) वा0रा0- किष्कि/ सर्ग 28/ 35.

आकाश से गिरता हुआ मोती के समान स्वच्छ एवं निर्मल जल प-तों के दोनों में संचित हुआ देख प्यासे पक्षी पपीहे पी रहे हैं । मधुवन में वानरों द्वारा मधुपान का वर्णन है ।[1]

संश्लिष्ट संवेदन-

श्वेत - समवाय का दृश्य राम के राज्याभिषेक के लिए समाहृत सम्भार में द्रष्टव्य है । वहाँ दधि, घृत, लाजा दूध, पद्म, रत्न, व्यंजन, श्वेत आतपत्र श्वेत वृषभ और अश्व आदि वस्तुएँ एकत्र थीं।[2]

ऐसा ही चित्र सुग्रीव के राज्याभिषेक के समय जो सम्भार एकत्र किया गया है, वहाँ भी पाया जाता है । उसमें वर्णगन्ध और स्वाद का संश्लिष्ट संवदेन है । वहाँ स्वर्णिम दण्ड वाले शुक्ल बाल व्यजन बहुविधरत्न, सभी बीज तथा औषधियाँ भांति भांति के पुष्प, दुग्ध वाले वृक्षों के प्ररोह, श्वेत वस्त्र और श्वेत ही अनुलेप अनेकों प्रकार के सुगन्धित चन्दन मालाएँ आदि स्वर्णिम अक्षत, प्रियंगु, मधु, सर्षप, दही व्याघ्र चर्म आदि वस्तुएँ थीं । [3]

नीलेषु नीला नववारि पूर्णा ।
मेघेषु मेघाः प्रतिभान्ति स-क्ताः ।
दवाग्निदग्घेषु दवाग्निदग्धाः
शैलेषु शैला इव बद्धमूलाः ।।[4]

वर्षा काल में नये जल से भरे काले मेघ खण्ड दूसरे काले मेघ खण्डों के साथ इतनी सघनता के साथ जुड़े प्रतीत होते हैं । कि जैसे दावाग्नि से जले हुए पर्वतों के साथ दूसरे दावाग्नि दग्ध पर्वत मिलकर साकार हो गये हैं । यहाँ कृष्ण वर्ण का ही बिम्ब प्रस्तुत है । दावाग्नि का नाम लेने से अवश्य अग्नि की ललाई का आभास होता है, लेकिन उसमें जले पर्वत का बुझा हुआ रूप तो काला ही होगा । यहाँ अग्नि की ज्वाला से जलते पर्वतों के साथ सादृश्य अभिप्रेत नहीं है अपितु, जलकर बुझे नीलवर्णी पर्वतों के साथ ।

---

(1) वा0रा0 - सु0/सर्ग 61/ 11-12
(2) वा0रा0 - अयो0/ सर्ग 3/8-15
(3) वा0रा0 - किष्कि/ सर्ग 26/23-27
(4) वा0रा0- किष्कि/ सर्ग 28/40

अंगारचूर्णोत्करसंनिकाशैः

फलैः सुपर्याप्तरसैः समृद्धैः ।

जम्बूद्रुमाणां प्रविभान्ति शाखा ।

निपीयमाना इव षट्पदौघैः ।।[1]

यहाँ कोयल भ्रमर और पके जामुन की एक सम कृष्णवर्णी ,कल्पना का सुन्दर विन्यास है । ' सुपर्याप्त रसै और निपीयमानाः ' पदों से जामुन के स्वाद का भी अनुभव होता है ।

पम्पा पुष्करिणी के वर्णन में सश्लिष्ट संवेदन वर्ण, ध्वनि स्पर्श, घ्राण और स्वाद सभी का धरातल दृष्टव्य है-

तत्र हंसा प्लवाः क्रौच्चाः कुरराश्चैव राघवः ।।

वल्गुस्वराः निकूजन्ति पम्पासलिलगोचराः ।

नोद्विजन्ते नरान् दृष्ट्वा वधस्याकोविदाः शुभाः ।।

घृतपिण्डोपमान् स्थूलांस्तान् द्विजान् भक्षयिष्यथः ।

रोहितान् वक्र तुण्डांश्च नलमीनांश्च राघव ।।

पम्पायामिषुभित्स्यांस्तत्र राम वरान् हतान् ।

निस्त्वक्पक्षानयस्तप्तानकृशानैककण्टकान् ।।

तवभक्त्या समायुक्तो लक्ष्मणः सम्प्रदास्यति ।

भृशंतान् खादतोमत्स्यान् पम्पायाः पुष्पसंचये ।।

पद्मगन्धि शिवं वारि सुखशीतमनामयम् ।

उद्घृत्य स तदाक्लिष्टं रूप्यस्फटिक संनिभम् ।।

अथ पुष्करपर्णेन लक्ष्मणः पाययिष्यति ।

स्थूलान् गिरिगुहाशय्यान् वानरान् वनचारिणः ।।

सायाह्ने विचरन् राम दर्शयिष्यति लक्ष्मणः ।

अपांलोभादुपावृत्तान् वृषभानिव नर्दतः ।। [2]

चाक्षुष स्थिर बिम्बः-

अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा जीवन में आंख का अधिक उपयोग अनुभूत होता है । उसी प्रकार काव्य में भी चाक्षुष बिम्बों का आधिक्य पाया जाता है । वस्तुतः काव्य बिम्बों के श्रोत का प्रचुरांश

---

(1) वा0रा0-किष्कि0/सर्ग 28/30

(2) वा0रा0 अरण्य/सर्ग 73/ 12-19

रूपकात्मक जगत से ही गृहीत होता है । रामायण काव्य बड़ा व्यापक है । अनेकानेक आकृतियाँ उभरी हैं । यहाँ कतिपय स्थिर और गत्वर चित्रों का दिग्दर्शन कराया जा रहा है ।

पर्णशाला -

वनवास काल में जिस पर्णशाला में राम लक्ष्मण और सीता निवास करते थे , उसका चित्रण भरत ने किया है, जब वे उनको मनाने जाते हैं । वह साल, ताल और अश्वकर्ण नायक वृक्षों के बहुसंख्यक पत्तों से छायी थी । अतः यज्ञशाला की विशाल वेदी के समान जानपड़ती थी, जिस पर कोमल कुश बिछाये गये थे । वहाँ इन्द्रधनुष के समान बहुत से धनुष रक्खे थे । उन धनुषों के पृष्ठ भाग स्वर्ण निर्मित थे । तरकसों में बहुत सारे बाण भरे थे जो सूर्य की किरणों जैसे चमकीले और भयंकर थे । उनवाणों से वह पर्णशाला उसी प्रकार शोभित हो रही थी, जैसे दीप्तिमान् मुख वाले सर्पों से भोगवतीपुरी । सोते के म्यान में रक्खी दो तलवारें और स्वर्णमय बिन्दुओं से विभूषित दो विचित्र ढालें भी उस पर्णशाला की शोभा बढ़ा रही थीं । वहाँ गोंह के चमड़े के बने बहुत से स्वर्ण जटित दस्ताने भी टँगे हुए थे । जैसे मृग सिंह की गुफा पर आक्रमण नहीं कर सकते, उसी प्रकार यह पर्णशाला शत्रुओं से अनाक्रमणीय लग रही थी । उस शाला के ईशान कोण की ओर अग्नि प्रज्वलित एक विशाल बेदी बनी थी ।

सालतालाश्वकर्णानां पर्णैर्बहुभिरावृताम् ।
विशालां मृदुभिस्तीर्णां कुशैर्वेदिमिवाध्वरे ।।
शक्रायुधनिकाशैश्च कार्मुकैर्भारसाधनैः ।
रूक्मपृष्ठैर्महासारैः शोभितां शत्रुबाधकैः ।।
अर्करश्मिप्रतीकाशैर्घोरैस्तूणगतैः शरैः ।
शोभितां दीप्तवदनैः सर्पैर्भोगवतीमिव ।।
महारजतवासोभ्यामसिभ्यां च विराजिताम ।
रूक्मबिन्दु विचित्राभ्यां चर्मभ्यां चापि शोभिताम् ।।
गोधागुंलित्रैरासक्तैश्चित्रकांचनभूषितैः ।
अरि संघैरनाधृष्यां मृगैः सिंहगुहामिव ।।
प्रागुदक्प्रवणां वेदिं विशालाँ दीप्तपावकाम् ।
ददर्श भरतस्तत्र पुण्यां रामनिवेशने ।।[1]

---

(1) वा०रा०- अयो० /99/19-24

रथ और यान -

वाल्मीकि रामायण में योद्धाओं के रथों, विमानों शिविकाओं का सम्पन्न चित्र उपस्थित किया है । शूर्पणखा के अपमान का प्रतिशोध लेने हेतु राम से लड़ने के लिए अपनी चौदह सहस्त्र सेनाएँ लेकर राक्षस खर अपने रथ पर सवार होकर जा रहा है । उसका रथ सोने के समान चमक रहा था । श्वेत चितकबरे घोड़े उसमें जुते थे । मेरू पर्वत की भांति ऊँचा था । तपे तपाये सोने के अलंकारों से सजा था उसके पहियों में सोना जड़ा था । जिसके कूबरो में वैदूर्यमणि जड़ी थी । उसकी सजावट के लिएं उसमें सोने के मत्स्य , फूल , वृक्ष , पर्वत , चन्द्रमा, सूर्य , मांगलिक पक्षियों का समुदाय तथा तारिकाएँ बनाई गई थीं । उस पर ध्वजा फहरा रही थी , उसके भीतर खड्ग आदि अस्त्र शस्त्र रक्खे थे । छोटी- छोटी घंटियों तथा सुन्दर धुधुरूओं से वह यु-क्त था ।[1]

सुग्रीव की शिबिका का वर्णन आता है उस समय जब वह लक्ष्मण समेत उस पर बैठ कर राम से मिलने जाता है । वह शिविका सूर्य जैसी चमक रही थी । उसको वानरगण ढो रहे थे । उस पर बैठे सुग्रीव के ऊपर श्वेत क्षत्र लगाया गया था और सब ओर से चबँर डुलाए जा रहे थे । शंख और भेरी की ध्वनियाँ हो रही थी । बन्दीजन स्तुतियाँ कर रहे थे ।[2]

वस्तुतः यह केवल सुग्रीव के राजसी प्रस्थान का चित्र है ।

रावण के आदेश से कुमार अक्ष पवन पुत्र हनुमान से युद्ध करने चलता है उस समय उसके अप्रतिम दमकते रथ का चित्र दृष्टव्य है-

ततस्तपःसंग्रहसंचयार्जितं
प्रतप्तजाम्बूनदजालचित्रितम् ।
पताकिंन रत्नविभूषितध्वजं
मनोजवाष्टाश्ववरैः सुयोजितम् ।।
सुरासुराघृष्यमसंग चारिणं
तडित्प्रभं व्योमचरं समाहितम् ।
सतूणमष्टासिनिबद्धबन्धुरं
यथाक्रमावेशितशक्तितोमरम् ।।
विराजमानं प्रतिपूर्णवस्तुना
सहेमदाम्ना शशिसूर्यवर्चसा ।

---

(1) वा0रा0- अरण्य/सर्ग22/13-15
(2) वा0रा0- किष्कि0/38/11-13

दिवाकराभं रथमास्थितस्ततः

स निर्जगामामरतुल्यविक्रमः ।।[1]

पुष्पक-विमानः-

दिव्य रावण वेश्म के भीतर रखे पुष्पक-विमान का चित्र देखें-

वह मेघ के समान ऊँचा तथा स्वर्ण के समान दीप्ति युक्त था । भूतल पर विकीर्ण स्वर्ण जैसे वह लग रहा था । अनेकानेक रत्नों से व्याप्त भांति भांति के पुष्पों से आच्छादित तथा पुष्पों के पराग से भरे हुए पर्वत शिखर की भांति शोभा पा रहा था । वह विमान रूप भवन विद्युत मालाओं से युक्त मेघ के समान रमणीय रत्नों से देदीप्यमान हो रहा था । और श्रेष्ठ हंसों द्वारा आकाश में ढोये जाते हुए विमान की भांति जान पड़ता था । जैसे अनेक धातुओं के कारण पर्वत शिखर ग्रहों और चन्द्रमा के कारण आकाश तथा अनेक वर्णो से युक्त होने के कारण मनोहर मेघ विभिन्न शोभा धारण करते हैं उसी तरह नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित होने के कारण वह विमान भी विचित्र सौन्दर्य से मण्डित था । उस विमान की आधार भूमि सोने और मणियों के द्वारा निर्मित कृत्रिम पर्वत-मालाओं से पूर्ण बनायी गई थी । वे पर्वत वृक्षों की विस्तृत पंक्तियों से हरे भरे बनाये गये थे । वृक्ष पुष्पों से भरे थे । पुष्प भी पराग तथा पंखुडियों से युक्त रचे गये थे । उस विमान में श्वेत भवन बने हुए थे । सुन्दर फूलों से सुशोभित पुष्करणियाँ बनाई गई थी । उसमें नीलम चांदी और मूगों के आकाशचारी पक्षी बनाये गये थे । नाना प्रकार के विचित्र वर्ण के सर्पो का निर्माण किया गया था और श्रेष्ठ घोड़ों का भी निर्माण किया गया था । उस विमान पर सुन्दर मुख और मनोहर पंख वाले बहुत से पक्षियों का निर्माण किया गया था । उनके पंख स्वर्ण, और मूंगे के बने हुए फूलों से युक्त थी । तथा उन्होने लीला पूर्वक अपने पंखों को समेट रक्खा था । उस विमान के कमल मण्डित सरोवर में ऐसे हाथी बनाए गए थे, जो लक्ष्मी के अभिषेक कार्य में नियुक्त थे । उसकी सूँड़ बहुत सुन्दर थी उसके अंगों में कमलों के केसर लगे हुए थे । तथा उन्होने अपनी सूडों में कमल पुष्पधारण कर रक्खे थे । उनके साथ वहीं लक्ष्मी की प्रतिमा भी विराजमान थी, जिसका उन हाथियों द्वारा अभिषेक हो रहा था । लक्ष्मी ने भी अपने हाथों में कमल धारण कर रक्ख था । इस प्रकार सुन्दर कन्दराओं वाले पर्वत के समान तथा वसन्त ऋतु में सुन्दर घोसलों वाले परम सुगन्धि युक्त वृक्ष के समान वह विमान सुशोभित हो रहा था ।[2]

---

(1) वा०रा०- सु०/सर्ग 47/4-6

(2) वा०रा०-सु०/सर्ग 8/5-15

रावण के अन्त:पुर का दृश्य -

रावण की शाला में प्रविष्ट हो हनुमान ने आधीरात के बाद मधुपान से मन्त, क्रीड़ा से विरत निद्रा के बशीभूत हो गहरी नीद में सोती युवतियों को देखा । उस समय उनके केश विखरे हुए थे । आभूषण शिथिल हो गए थे । मात्राएं मसली हुई थी । माला कातिलक पुछ गया था । किसी किसी के नूपुर निकल कर दूर जा पड़े थे । किन्ही युवतियों के हार टूट कर उसके पास पड़े थे । किन्ही के ऊपर टूटे हुए हारों के दाने पड़े थे, किन्ही के वस्त्र खिसक गये थे । किन्ही की करधनी की लटें टूट गईं थी । किन्ही के कानों के कुण्डल गिर गये थे । उस समय वे युवतियाँ बोझ ढोने से थकी नयी बछेरियों की भांति और वन में गजराज द्वारा मर्दित पुष्पित लताओं की भांति जान पड़ती थीं । चन्द्रमा और सूर्य के समान प्रकाशमान हार कुछ युवतियों के वक्षस्थल पर पड़े थे । तो लगता था जैसे स्तनमण्डल पर हंस सो रहे हों । नीलम के हार कादम्ब पक्षी और सोने के हार चक्रवाक पक्षी की भाँति वक्ष:स्थल पर कुछ युवतियों के लग रहे थे । इस प्रकार वे हंस कारण्डव तथा चक्रवाकों से सुशोभित सरिताओं की भाँति प्रतीत हो रही थीं । उनके जघन प्रदेश नदियों के तट की तरह लगते थे । नदी रूपी युवतियों की किकणियाँ ही जाल थे , स्वर्णभूषण ही कमल सुप्तावस्था के वासनाभाव ही ग्राह थे तथा उनका सौन्दर्य ही तट के समान प्रतीत हो रहा था । किन्हीं सुन्दरियों के कोमल अंगों तथा कुचों के अग्रभाग पर उभरी हुई आभूषणों की सुन्दर रेखायें नये अलंकरण की भांति लग रहीं थीं । किन्हीं के मुख पर पड़े उनके अंशुक के छोर श्वास- प्रश्वास से वार-वार कम्पित हो रहे थे । कुछ युवतियाँ अपनी बाहु का तकिया लगाकर सो रही थी । एक स्त्री दूसरी की छातीपर मुख रखकर सो रही थी । तो कोई दूसरी की गोद में सिर रखकर सो रही थीं । तो कोई दूसरे किसी के कुचों को ही तकिया वनाकर सो रही थी । इस प्रकार सभी युवतियाँ परस्पर अंगों का सहारा लिए बेसुध पड़ी थीं । एक दूसरे के बाहुरूपी सूत्र में गुथी हुई काले-काले केशों वाली स्त्रियों की वह माला सूत्र में पिरोयी हुई मदमन्त भ्रमरों से युन्क्त पुष्प माला की भांति लग रही थीं । वसन्त में मलयानिल से जैसे खिली हुई लताओं का वन कम्पित होता रहता है, उसी प्रकार वह युवती समूह निश्वास वायु के चलने से अंचलों के हिलने के कारण कम्पित सा होता जान पड़ता था । जैसे लताएँ परस्पर मिलकर माला की भांति आबद्ध हो जाती है, उनकी सुन्दर शाखाएँ परस्पर लिपट जाती हैं, उनके पुष्प समूह परस्पर मिले हुए से प्रतीत होते हैं। तथा उन पर बैठे भ्रमर भी परस्पर सटे से जान पड़ते हैं । उसी प्रकार से युवतियाँ एक दूसरे से मिलकर माला की तरह गुथी थीं । उनकी भुजाएँ और कन्धे परस्पर सटे हुए थे । उनकी वेणी में गुथे हुए फूल भी आपस में मिल गये थे तथा उन सबके केश- कलाप भी एक दूसरे से जुड़े हुए थे इस प्रकार वह युवति समूह पवन कम्पित वन की भांति लग रहा था ।[1]

---

[1] वा0रा0 सु0/सर्ग 9/ 34-65

इस उपयुक्त वर्ण विन्यास में स्वाभावोक्ति और वक्रोक्ति पद्धतियों का सहारा लिया गया है एक साथ हंस कारण्डव , चक्रवाक, कमल, सरित् , वन ,पुष्प , लता, भ्रमर, वसन्त पवन, गज, चन्द्र सूर्य का रामायण में अप्रस्तुत रूप में प्रयोग किया गया है । इसमें प्रकृति अनुराग-सहज ही प्रकट हो जाता है । साथ ही इस बिम्बन शिल्प में कहीं भी औचित्य का अतिक्रमण नहीं हुआ है । क्यों कि यह सारा चित्रण हनुमान द्वारा कराया गया है । अरण्य में रहने वाले वानरहनुमान आरण्यक कल्पनाओं के अतिरिक्त और खोज ही क्या सकते थे ?

गत्वर बिम्ब -

सुमन्त्र का रथ भीड़ को चीरता निर्बाध गति से राम के आवास-प्रासाद में वैसे ही प्रवेश करता है जैसे रत्नाकर समुद्र में मकर-

ततोऽद्रिकूटाचलमेघसंनिभं
महाविमानोपमवेश्मसंयुतम् ।
अवार्यमाणः प्रविवेश सारथिः
प्रभूतरत्नं मकरो यथार्णवम् ।।[1]

भरत की विशाल सेना से डरकर वनवासी जीव-जन्तु इधर उधर नदियों पर्वतों और वनालियों में विखर गये ।[2]

प्रिय दर्शन मारीच माया-मृग[3] का पंचवटी में राम के आश्रम के आस पास उछल कूद का स्वभाविक गतिमयबिम्ब आदि कवि द्वारा रामायण में निर्मित किया है । वह वहाँ फैली कोमल घास को चारों तरफ चरता है । पादपों के किसलयों को खाता घूम रहा है । धीरे धीरे कदली गृह और कनैर पादपों की ओर जाता है[4] बार बार जाता है और लौटता है । कभी धीरे गति से कभी त्वरित गति से[5]

---

(1) वा0रा0 अयो0/सर्ग 15/48

(2) वा0रा0 अयो0/93/1,2,12,17

(3) वा0रा0 -अरण्य /सर्ग 42/28,34

(4) वा0रा0-अरण्य/सर्ग 42/ 23

(5) पुनर्गत्वनिवृत्तश्च विचचार मृगोत्तमः ।
गत्वा मुहूर्तं त्वरया पुनः प्रतिनिवर्तते ।। वा0रा0 - अरण्य/सर्ग42/25

बार बार इस प्रकार क्रीड़ा करता भूमि पर बैठता है । आश्रम के द्वार तक जाकर फिर लौट कर फिर मृगों के झुण्ड के साथ हो लेता है । वहाँ से शीघ्र ही पुनः वापिस हो लेता है । विचित्र विभिन्न छलांगें लगाकर चक्कर काटता फिरता है । अन्य मृग उसे देखकर समीप आते हैं और उसे सूँघ कर दूर सभी दिशाओं में फैल जाते हैं । [1] इस प्रकार वह माया मृग सीता को लुभाने के लिए उस परिसर को प्रदीप्त सा करता हुआ विचरण करता है । ' दीपयान्निवतद्वनम् '[2] सीता ने आखिर उसे देख ही लिया और मुग्ध हो गई, उस पर हठ करने लगीं राम से , कि इसे मारकर , इसका स्वर्णिम चर्म प्राप्त कीजिए ज्यों ही धनुष बाण लेकर राम ने उसे मारना चाहा वह मायावी मृग भाग खड़ा हुआ । कभी अरण्य में छिप जाता तो कभी दिख जाता ऐसा करते करते राम को वन में बहुत दूर खीच ले गया । वह शरद्कालीन चांद की तरह एक क्षण में कभी बादलों में छिपता तो कभी दिखाई पड़ता -

शकिंतं तु समुद्भ्रान्तमुत्पतन्तमिवाम्बरम् ।
दृश्यमानमदृश्यं च वनोद्देशेषु केषुचित् ।।
छिन्नभ्रैरिव संवीतं शारदं चन्द्रमण्डलम् ।
मुहूर्तादिव ददृशे मुहुर्दूरात् प्रकाशते ।।
दर्शनादर्शनेनैव सोऽपाकर्षत राघवम् । [3]

सीता को लेकर जाते रावण की तीव्र गति को मूर्तित करने के लिए रामायणमें धनुष से छूटे वाण का बिम्ब प्रस्तुत किया गया है ।[4]

सुग्रीव के आदेश से असंख्य वानरी सेना जो आस पास के वनों पर्वतों कन्दराओं , नदियों आश्रमों वृक्षों पर जमा थी, सूर्य को पीतीसी बड़े वेग से किष्किन्धा पहुँची[5] और फिर वहाँ से सारी सेना राम के पास पहुँची। उस समय सुग्रीव और राम परस्पर बातें कर रहे थे । सूर्य की तीव्र धूप को आच्छन्न करती धूलि पहले उड़ती दिखी, फिर सभी दिशाएं उस धूलि से व्याप्त हो गई, महान बलशाली, तीक्ष्ण दाढ़ों वाले पर्वताकार असंख्य वानरों से सारी भूमि भरगई और हिलने सी लगी । पर्वतों वनों और पृथ्वी को घेरकर उछल उछल कर गरजते हुए वानर समूह सुग्रीव के पास वैसे ही पहुचे जैसे सूर्य के पास मेघ समूह-

---

(1) वा0रा0-अरण्य0/सर्ग 42/26-28 ।/2
(2) वा0रा0/अरण्य0/सर्ग42/34 ।/22
(3) वा0रा0- अरण्य0/सर्ग 44/6-7 ।/2
(4) वा0रा0- अरण्य0/सर्ग 54/7 एवं किष्कि0/सर्ग ।।/14
(5) वनेभ्यो गह्वरेभ्यश्च सरिद्भयश्च महाबलाः ।
आगच्छद वानरी सेना पिबन्तीव दिवाकरम् ।। वा0रा0 किष्कि0/सर्ग 37/26

एतस्मिन्तरे चैव रजः समभिवर्तत ।
उष्णतीव्रां सहस्रांशोश्छादयद् गगने प्रभाम् ।।
दिशः पर्याकुलाश्चासंस्तमसा तेन दूषिताः ।
चचाल च मही सर्वा सशैलवनकानना ।।
ततो नगेन्द्रसंकाशैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैर्महाबलैः ।
कृत्स्ना संछादिता भूमिरसंख्येयैः प्लवंगमैः ।।[1]
आप्लवन्तः प्रलवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवंगमाः ।
अभ्यवर्तन्त सुग्रीवं सूर्यमभ्रगणा इव ।।[2]

जब वह वानरी सेना सीतान्वेषणार्थ सोत्साह विभिन्न दिशाओं की ओर निकली तोलगा जैसे शलभ-समूहों ने पृथ्वी को आच्छादित कर लिया हो [3] उछलते कूदते भागते और गरजते वानर सभी तरफ गये ।[4]

वालि के भय से सुग्रीव ने सारी पृथ्वी का चक्कर लगाया था, उस समय विविध नदियों, वनों, नगरों को देखता वह अलात चक्र की भांति सम्पूर्ण पृथ्वी को गोखुर की भांति घूम आया । उस समय उसे सम्पूर्ण पृथ्वी दर्पण की भांति प्रतीत हुई ।

ततोऽहं वालिना तेन सोऽनुबद्धः प्रधावितः ।
नदीश्च विविधाः पश्यन् वनानि नगराणि च ।।
आदर्शतल संकाशा ततों वै पृथ्वी मया ।
अलातचक्र प्रतिमा दृष्टा गोष्पदवत् कृता ।[5]

जटायु और सम्पाति दोनो भाई अपने बल के प्रति उन्मन्त हो, सूर्य के अनुगमन की महत्वकांक्षा से आकाश मण्डल में आदित्य के पास पहुँचे , वहाँ से उन्हे धरती के वन तृण जैसे लगे देखिए-

---

(1) वा0रा0 - किष्कि- /सर्ग 39/8-10

(2) वा0रा0- किष्कि0/सर्ग 39/40

(3) वा0रा0 किष्कि0/सर्ग 45/2

(4) वा0रा0 किष्कि0/सर्ग45/9

(5) वा0रा0 किष्कि0/सर्ग 46/ 12-13

ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों से युन्क्त पृथ्वी पत्थरों से युन्क्त जैसी लगी और नदियों से संयुन्क्त वह धागों से युन्क्त सी दिखाई पड़ी स्वयं पृथ्वी के ऊँचे पहाड़-हिमालय विन्ध्य और मेरू जैसे जलाशय में हाथी खड़े हों वैसे प्रतीत हुए -

तूर्णमुत्पत्य चाकाशमादित्यपदमास्थितौ ।
आवामालोकयावस्तद् वनं शाद्वलसंस्थितम् ।।
उपलैरिव संछन्ना दृश्यते भूः शिलोच्चयैः ।
आपगाभिश्च संवीता सूत्रैरिव वसुन्धरा ।।
हिमवांश्चैव विन्ध्यश्च मेरूश्च सुमहागिरिः ।
भूतले सम्प्रकाशन्ते नागा इव जलाशये ।।[1]

गत्वर चित्रों में सर्वातिशायी आकर्षण है पवन सुत हनुमान का समुद्र लंघन । जामवान के द्वारा उत्साहित किए जाने पर हनुमान का रूप और उनका रोम- रोम गतिमय हो चला ।

उस समय हनुमान ने वैसे ही अंगडाई लेकर अपने शरीर को बढ़ाया जैसे विशाल गिरि कन्दरा में सिंह अंगड़ाई लेता है । जँभाई लेते समय तत्क्षण हनुमान का मुख जलते हुए भाड़ के समान तथा घूमरहित अग्नि के समान लग रहा था ।[2] उस समय अतिशय उत्साहित हो हनुमान ने कहा-- आकाश में रेखा खीचने उन्तुगं शिखर विशाल एवं विस्तृत सुमेरू पर्वतकी मैं हजारों बार बिना विश्राम के परिक्रमा लगा सकता हूँ । अपनी भुजाओं के वेग से समुद्र के जल को मथकर उससे नदियों पर्वतों समेत सम्पूर्ण जगती को आप्लावित कर सकता हूँ । विनता नन्दन गरूड़ आकाश में उड़ते हों तो भी मैं हजारों बार उनके चारों ओर घूम सकता हूँ । उदयाचल से चलकर सूर्य को मैं अस्त होने से पहले ही छू सकता हूँ । और वहाँ से पृथ्वी तक लौटकर यहाँ बिना पैर रखे ही पुनः तीव्र वेग से उसके पास तक जा सकता हूँ । आकाश चारी समस्त ग्रह नक्षत्रों को लांघ कर आगे बढ़ सकता हूँ । चाहूँ तो समुद्र को सोख लूँ । पृथ्वी को विदीर्ण कर दूँ । और कूद कूद कर पर्वतों को चकनाचूर कर दूँ । आज आकाश में वेग पूर्वक जाते समय लताओं और वृक्षों के नाना प्रकार के फूल मेरे साथ उड़ते जायेंगे । बहुत से फूल बिखरे होनेके कारण मेरा मार्ग आकाश में अनेक नक्षत्रों से शोभित स्वाति के मार्ग छाया पथ के समान लगेगा । मै महागिरि सुमेरू के समान विशाल शरीर धारण कर स्वर्ग को ढक और आकाश को निगल सकता हूँ । बादलों

---

(1) वा0रा0- किष्कि0/सर्ग 61/ 7-9

(2) वा0रा0-किष्कि0/सर्ग 67/ 6, 7

को छिन्न भिन्न कर दूँगा । पर्वतों को हिला दूँगा । मेघ से उत्पन्न विद्युत की भांति पलक मारते तक मैं सहसा निराधार आकाश में उड़ जाऊँगा ।[1]

ऐसा रोमांचकारी गतिमय उद्‌भावनाओं के साथ वे छलांग लगाने के लिए किसी उपयुक्त स्थान की तलाश में महेन्द्र पर्वत पर चढ़ गये और इधर उधर टहलने लगे ।

महाकाय हनुमान के दोनों पैरों से दबा हुआ वह महान पर्वत सिंह से आक्रान्त हुए महा महमन्त गजराज की भांति चीत्कार करने लगा । उसके शिला समूह इधर उधर विखुर गये उनसे नये झरने फूट निकले । वहाँ रहने वाले मृग और हाथी भय से थर्रा उठे और बड़े-बड़े वृक्ष झोंके खाकर झूमने लगे । मधुपान के संसर्ग से उद्धत चिन्त वाले अनेकों गन्धर्वों के जोड़े विद्याधरों के समुदाय और उड़ते हुए पक्षी भी उस पर्वत के शिखर को छोड़कर जाने लगे । बड़े -बड़े सर्प बिलों में छिप गये । बिलों से अपने आधे शरीर को बाहर निकाल कर लम्बी सांस खींचते हुए सर्पो से युन्क्त वह पर्वत उस समय अनेकानेक पताकाओं से अलंकृत सा प्रतीत हो रहा था । भय से घबड़ाये हुए ऋषि मुनि भी उस पर्वत को छोड़ने लगे जैसे विशाल दुर्गम वन में अपने साथियोंसे विछड़ा हुआ कोई राही भारी विपन्ति में फँस जाता है, वही दशा उस महेन्द्र पर्वत की हुई । उधर हनुमान छलांग लगाने की योजना में लीन थे । उनका एकाग्र चिन्त लंका में पहुँच गया ।[2] फिर उन्होने अपने शरीर को वैसे ही बेहद बढ़ाया जैसे पूर्णिमा के दिन समुद्र में ज्वार भाटे आते हैं और अपनी दोनों भुजाओं और चरणों से उस पर्वत को दबाया उस समय वह पर्वत काँप उठा और कुछ क्षण तक डगमगाता रहा । उस पर्वत पर स्थित वृक्षों के सारे फूल उस समय गिर गये ।

हनुमान से आक्रान्त वह पर्वत जल के झरने बहाने लगा जैसे मदमन्त गजराज के कुम्भस्थल से मद की धारा बह चली हो । मनः शिला की चट्टाने गिरने लगीं । सभी जीव भय से चिल्लाने लगे । और गुफाओं में प्रविष्ट हो गये । अपने फणों से भयानक आग उगलते हुए भीषण सर्प अपनी दाढ़ों से शिलाओं को ही डसने लगे जिससे वे शिलाएं जल उठीं और सहस्त्रों टुकड़े हो गये ।[3] हनुमान पर्वताकार प्रतीत हो रहे थे । उन्होने अपने शरीर को हिलाया और रोंयें झाड़े तथा महान मेघ के समान जोर जोर

---

(1) वा0रा0 - किष्कि/67/11-24
(2) वा0रा0 किष्कि0/सर्ग 67/ 43-49
(3) वा0रा0- सु0/सर्ग 1 /10-20

से गर्जना की । उछलने के लिए सबसे पहले उन्होने गोलाकार लिपटी हुई रोमावलियों से भरी अपनी पूँछ को उसी प्रकार आकाश में फेका जैसे पक्षीराज गरूड़ सूर्य को फेंकते हैं । अत्यन्त वेगशाली हनुमान के पीछे आकाश में फैली पूँछ गरूड़ के द्वारा ले जाते समय सर्प जैसी लग रही थी । परिधाकार अपनी विशाल भुजाओं को फिर उन्होने पर्वत पर जमाया फिर ऊपर के अंगों को इस तरह सिकोड़ लिया कि वे कटि की ही सीमा में आ गये, साथ ही उन्होने दोनों पैरों को भी समेट लिया । फिर भुजाओं और गर्दन को भी सिकोड़ लिया । नेत्रों को ऊपर उठाया और आकाश की ओर देखते हुए प्राणों को हृदय से रोका । इस प्रकार छलांग लगाने की तैयारी में कपिराज ने पैरों को भली भांति जमाकर कानों को सिकोड़ लिया।[1] और बड़े वेग के साथ छलांग लगायी । उस समय उनके वेग से आकृष्ट हो पर्वत पर उगे हुए सब वृक्ष उखड़ गये और डालियों समेत हनुमान के साथ वेग से उड़ चले । वे वृक्ष उनकी जाँघों के वेग से ऊपर को उठ कर उनके पीछे-पीछे वैसे ही हो गये, जैसे दूर स्थान में जाने वाले व्यक्ति के पीछे-पीछे उसके बन्धु बान्धव पहुँचाने जाते हैं । साल आदि बड़े बड़े वृक्ष अनुगमन करते हुए वैसे ही लग रहे थे राजा के पीछे सैनिक जा रहे हों । भारी वृक्ष कुछ देर में समुद्र में वैसे ही गिर पड़े जैसे पंख धारी पर्वत इन्द्र के भय से समुद्र में निमग्न हो गये थे । वे वृक्ष जब हनुमान के वेग से मुक्त हो जाते तब अपने फूल बरसाते हुए समुद्र के जल में वैसे ही डूब गये, जैसे आत्मीयजन परदेश जाने वाले अपने किसी बन्धु को दूर तक पहुँचाकर लौट कर शोक में डूब जाते हैं । हनुमान जी के शरीर से उठी हुई वायु से प्रेरित हो वृक्षों के पुष्प अत्यन्त हल्के होने से समुद्र के ऊपर ही तैरते रहते थे । तो लगता था कि तारों से भरा आकाश हो बहुरंगी पुष्प राशि से युक्त हनुमान बिजली से सुशोभित उठते मेघ जैसे लगते थे । आकाश में फैलायी गई उनकी दोनो भुजाएँ ऐसी लगती थीं मानो शिखर से पांच फनवाले दो सर्प निकल आये हों । उस समय हनुमान तरंग मालाओं समेत समुद्र और आकाश को भी मानों पी जायेंगे, ऐसे लग रहे थे, उनके दोनो नेत्र ऐसे चमक रहे थे जैसे पर्वत पर दो स्थानों पर जल रही दावाग्नि हो या कि चन्द्रमा और सूर्य हों । उनका लाल मुख संध्या काल से युक्त सूर्यमण्डल की भांति लग रहा था । आकाश में तैरते पवनसुत हनुमान की पूँछ इन्द्र की ऊँची ध्वजा के समान जान पड़ती थी । ऊपर ऊपर समुद्र को पार कर रहे कपिराज की कांख से होकर निकली तेज वायु बादल के समान गरजती थी । जैसे पुच्छ युक्त उल्का आकाश में हो वैसे ही अपनी पूँछ के कारण हनुमान दिखाई देते थे । तीव्र गतिमान सूर्य के समान हनुमान अपनी पूँछ के कारण उस विशाल गजराज के समान

---

(1) वा०रा० सु०/सर्ग 1/29-38

लग रहे थे , जिसकी कमर में रस्सी बंधी हुई हो । हनुमान के शरीर की समुद्र में परछाई पड़रही थी । अतः शरीर और परछाई दोनों से परिलक्षित कपिवर समुद्र में पड़ी उस नौका के समान प्रतीत हो रहे थे, जिसका ऊपरी भाग वायु से परिपूर्ण हो और निचला भाग समुद्र से लगा हो । वे समुद्र के जिस जिस भाग में पहुँचते थे, वहाँ वहाँ उनके अंग के वेग से उत्ताल तरंगे उठने लगती थी, जिन्हें अपनी छाती से चूर-चूर करते कपिराज आगे बढ़ते जाते । सागर में रहने वाले सर्पो ने उस समय हनुमान को गरूड़ ही समझा ।[1] विश्राम देने के लिए ऊपर उठे मैनाक पर्वत को भी हनुमान ने वेग से अपने वक्षःस्थल से वैसे ही गिरा दिया जैसे मेघों को पवन ने[2] जब सिहिका राक्षसी ने उनकी छाया पकड़ ली , जिससे वानर राज हनुमान सहसा पंगु से हो गये उसी प्रकार जैसे सागर मे प्रतिकूल वायु से नौका की दशा हो जाती है ।[3] बुद्धिमानी से सुरसा की भांति उसे भी जीत कर वे आगे बढ़ गये । अपने शरीर को छोटा कर वैसे ही प्रकृतिस्थ हो गये, जैसे आत्मवान व्यन्क्ति मोह त्याग कर प्रकृतिस्थ हो जाता है । तथा समुद्र पार करके लम्बे शिखर पर कूद पड़े ।[4]

लंका में सीतान्वेषण और लंका दाह के बाद जब हनुमान पुनः वापिस लौटते हैं उस समय का भी गत्वर बिम्ब दृश्य रोमांचकारी है- " हनुमान आकाश को अपना ग्रास बनाते हुए , चन्द्रमण्डल को नखों से खरोचते हुए, नक्षत्रों और सूर्यमण्डल सहित अन्तरिक्ष को समेटे हुए और बादलो को खीचते हुए महासागर को पार कर रहे थे, उस समय आसमान में सफेद लाल नीले मजीठे और अरूण रंग के बड़े-बडे मेघ थे । ऐसे मेघ पटलों में कभी वे प्रवेश करते कभी बाहर निकलते बार बार ऐसा करते हुए पवन सुत छिपते और प्रकाशित होते चन्द्रमा के समान दृष्टिगोचर होते थे । इस प्रकार महा तेजस्वी हनुमान अपनी सिंह गर्जना से मेघों को मात करते हुए समुद्र के मध्य भाग में जा पहुँचे वहाँ पर्वत राज मैनाक का स्पर्श करते हुए ज्या मुन्क्त नाराच के समान अतीव वेग से आगे बढ़ गये । उत्तरी तट के निकट पहुँचने पर अपनी गम्भीर गर्जना से दिग्दिगन्तको निनादित कर दिया । वह नाद सुनकर उनकी प्रतीक्षा में बैठे वानर उत्सुकता से उसको देखने के लिए वृक्षाग्रों और शिखरों पर चढ़ने लगे । वृक्षों की ऊँची शाखा पर खड़े होकर वे वानरगण स्पष्ट दिखने वाले अपने वस्त्र हिलाने लगे । तत्पश्चात् कुछ ही क्षणों में वेगशाली हनुमान महेन्द्र गिरि के शिखर पर कूद पड़े ।[5]

---

(1) वा0रा0 - सु0/सर्ग । /45-47 , सु0/सर्ग।/48-67 , सु0/सर्ग । / 75
(2) वा0रा0 -सु0/सर्ग ।/108
(3) वा0रा0- सु0 / सर्ग । /186-187 ।/2
(4) वा0रा0 सु/सर्ग । /197,208
(5) वा0रा0- सु0/सर्ग 57/5-8, 11- 14 1/2, 25, 26, 29

ख- अदृश्य बिम्ब -

अदृश्य बिम्ब से आशय है अमूर्त अप्रस्तुत विधान से साथ ही इसके भीतर ऐसे सम्बेदनों को भी ले सकते हैं, जिसमें चाक्षुषादि इन्द्रियों की दृश्यात्मकता का अभाव हो या फिर अतिशय क्षीण रूप मे न होने जैसी स्थिति हो ।

चित्रकूट में भरत मिलन का प्रसंग इस दृष्टि से उदाहरणीय है -.

उपोपविष्टस्तु तदातिवीर्यवां-
स्तपस्विवेषेण समीक्ष्य राघवम् ।
श्रिया ज्वलन्तं भरतः कृताजंलि-
र्यथा महेन्द्रः प्रयतः प्रजापतिम् ।।

किमेष वाक्यं भरतोऽद्य राघवं
प्रणम्य सत्कृत्य च साधु वक्ष्यति ।
इतीव तस्यार्यजनस्य त-त्वतो
बभूव कौतूहलमुत्तमं तदा ।।[1]

उस समय श्रीराम के आसन के समीप बैठे हुए अत्यन्त पराक्रमी भरत ने दिव्य दीप्ति से प्रकाशित होने वाले ' रघुनाथ जी को तपस्वी के वेष में देखकर उसके प्रति उसी प्रकार हाथ जोड लिए जैसे देवराज इन्द्र प्रजापति ब्रह्मा के समक्ष विनीत भाव से हाथ जोड़ते हैं । उस समय वहाँ बैठे हुए श्रेष्ठ पुरूषों के हृदय में यथार्थ रूप से यह उत्तम कौतूहल सा जाग उठा कि देखें ये भरत जी श्रीरामचन्द्र जी को सत्कार पूर्वक प्रणाम करके आज उत्तम रीति से उनके समक्ष क्या कहते हैं ।

यहाँ राम और भरत की स्थिति का चित्रण तो मूर्त है किन्तु द्वितीय श्लोक में लोगों का भरत कथन के प्रति कौतूहल अमूर्त है अदृश्य है । जिस भरत के राज्य के लिए भरत माता कैकेयी ने राम को विवासित कराया हो, जिस विवासन से शोकाकुल दशरथ दिवंगत हुए हों- वही भरत आज अपने बड़े भइया राम से क्या कहेंगे ? बड़ी उत्सुकता है लोगो में कौतूहल एक अमूर्त भाव है, जिसको किसी अप्रस्तुत के द्वारा मूर्त करने का प्रयत्न नहीं किया गया है । लेकिन पूरा परिवेश समझने के बाद लोगों की उस उत्कंठा का साक्षात्कार स्वयं हो जाता है ।

दुखी भरत ने बार बार आग्रह किया कि आप वापस चलें, राज्य कार्य देखें पर राम पिता

---

(1) वा0रा0 अयो0/सर्ग 104/ 30-31

के निर्देश में स्थिर रहें । उस समय वहाँ उपस्थित जन समूह एक साथ सुखी और दुखी हुआ । राम की स्थिरता उनका दृढ़ संकल्प, अयोध्या न लौटने को उनकी दृढ़ स्थिर प्रतिज्ञता देखकर सभी प्रसन्न हुए लेकिन अयोध्या न जाने के कारण लोग दुखी हुए -

तथापिरामो भरतेन ताम्यता
प्रसाद्यमानः शिरसा महीपतिः ।
न चैव चक्रे गमनाय सत्त्ववान्
मतिं पितुस्तद वचने प्रतिष्ठितः ।।
तदद्भुतं स्थैर्यमवेक्ष्य राघवे
समंजनो हर्षमवाप दुःखितः ।
न यात्ययोध्यामिति दुखितोऽभवत्
स्थिरप्रतिज्ञत्वमवेक्ष्य हर्षितः ।[1]
ततः सुवेषं मृगयागतं पतिं
प्रतीक्ष्यमाणा सहलक्ष्मणं तदा ।
निरीक्षमाणा हरितं ददर्श त-
न्महद्वनंनैव तु राम लक्ष्मणौ ।।[2]

तदन्तर सीता शिकार खेंलने के लिए गये हुए लक्ष्मण सहित अपने सुन्दर वेषधारी पति श्रीरामचन्द्र जी की प्रतीक्षा करने लगीं । उन्होने चारों ओर दृष्टि दौड़ायी , किन्तु उन्हें सब ओर हरा भरा विशाल बन ही दिखाई दिया, श्रीराम और लक्ष्मण नहीं दीख पड़े ।

अद्भुत दर्शन मायावी कांचन मृग के प्रलोभन में पड़कर सीता ने उसकी कांचन त्वचा पाने के लिए राम से विशेष आग्रह किया लक्ष्मण ने सावधान भी किया कि यह राक्षस मारीच हो सकता है । ऐसा मृग होना सम्भव नहीं है । यह समझकर भी राम ने उसे मारने का निश्चय किया ज्यों ही धनुषवाण ले उसका पीछा किया वह घने अरण्य में कभी तिरोहित हों कभी प्रकट हो राम को आश्रम से दूर खींच ले गया । राम ने बाण मारा वह आहत हुआ , पर मरते मरते ' हा लक्ष्मण हा सीता की मायावी आर्तध्वनि करके सीता को संशय में डाल दिया । जाते - जाते राम ने लक्ष्मण को बहुत सावधान रहने को कहा था । लक्ष्मण सावधान भी थे । वे राक्षसी माया समझ रहे थे किन्तु, सीता का नारी हृदय भय

---

(1) वा0रा0 - अयो0/सर्ग 106/33-34

(2) वा0रा0 - अरण्य0/सर्ग 46/38

और शंका से इतना भर गया कि उन्होने लक्ष्मण को तत्काल राम के पास जाने का हठ किया लक्ष्मण की हिचकिचाहट पर उनके चरित्र को लांछित करने वाली असत्य बातें भी कह डालीं सीता ने । विवश होकर लक्ष्मण भी आश्रम छोड़कर चले गये । अकेली सीता आश्रम में और इतना बड़ा भीषण अरण्य उसी समय रावण सन्यासी वेष में पहुँचा और सीता को बलात् हरण करना चाहा । उसे ब्राह्मण साधु समझ कर सीता ने उसके अनुरूप आतिथ्य सत्कार किया किन्तु थोड़ी देर बाद ही रावण की दृष्टि का अन्दाज सीता को लग गया ।[1] यद्यपि अभी ऐसी कोई चेष्टा रावण ने प्रदर्शित नहीं की । पर बिल्कुल एकान्त और निर्जन अरण्य में एक अपरिचित पुरूष के साथ सीता को कुछ अंदेशा सा हो गया । विचारिए उस सीता की क्या दशा रही होगी । कैसी व्याकुल मनःस्थिति ? उन्होने ही तो आग्रह किया था कांचन मृग त्वचा हेतु । उन्होने ही तो जबरदस्ती लक्ष्मण को बुरा भला कह कर आश्रम छोड़कर जाने को मजवूर किया था । अब कोई सहारा नहीं है । सामने खड़ा है विकराल काल और चारों ओर फैली अनन्त वन श्रेणी कौन बचाएं ? गनीमत है अभी भी यदि दूर कहीं राम लक्ष्मण दिख जाएं तो यह पापी कुछ न बिगाड़ पायेगा । बड़ी आशा भरी निगाहें दौड़ायीं सीता ने उस अरण्य में लेकिन दिखे नहीं राम लक्ष्मण कहीं भी केवल अरण्य यहाँ उपर्युन्क्त श्लोक में किसी बिम्ब धर्मी पद का प्रयोग नहीं है । प्रतीक्षा करती हुई सीता ने राम लक्ष्मण को कहीं नहीं देखा, केवल महा अरण्य ही दिखा । इस सामान्य से कथन में कहीं भी दृश्यात्मकता नहीं है । ' हरितमहद्‌वनम् से हरे भरे विस्तृत जंगल की सीधी सादी कल्पना आती है मन में , पर वह महन्त्व पूर्ण नहीं है । यहाँ उसका प्रयोग निर्जनता, असहायता को उभारने के लिए किया गया है , ' राम लक्ष्मण' का कहीं अतापता नहीं है- इस तात्पर्य की पुष्टि करने के लिए है । इस प्रकार इस अदृश्य बिम्बन शिल्प के माध्यम से सीता की उद्विग्नता, सम्भावित विपन्ति की पूर्व व्याकुलता को प्रतिबिम्बित किया हैं ।

अदृश्य बिम्बों के भीतर अप्रस्तुत-विधान के अन्तर्गत प्रयुन्क्त होने वाले अमूर्त-विधान को भी गिना जा सकता है । वहाँ उपमेय को प्रतिबिम्बित करने के लिए अमूर्त उपमान ही ले आये जाते हैं।

इस दृष्टि से यहाँ सीता का रूपांकन उदाहरणीय है, जो हनुमान के द्वारा अशोक वाटिका में कल्पित हुआ है -

---

(1) प्रसह्य तस्याहरणे दृढंमनः वा0रा0- अरण्य/सर्ग 46/37

तां स्मृतीमिव संदिग्धामृद्धिं निपतितामिव ।

विहतामिव च श्रद्धामाशां प्रतिहतामिव ।।

सोपसर्गां यथा सिद्धिं बुद्धिं सकलुषामिव ।

अभूतेनापवादेन कीर्तिं निपतितामिव ।।

रामोपरोधव्यथितां रक्षोगणनिपीडिताम्

अबलां मृगशावाक्षीं वीक्षमाणां ततस्ततः ।।[1]

वे संदिग्ध अर्थवाली स्मृति, भूतल पर गिरी हुई ऋद्धि, टूटी हुई श्रद्धा, भग्न हुई आशा, विघ्न युक्त सिद्धि , कलुषित बुद्धि और मिथ्या कलंक से भ्रष्ट हुई कीर्ति के समान जान पड़ती थी । श्री राम चन्द्र जी की सेवा. में रूकावट पड़ जाने से उनके मन में बड़ी व्यथा हो रही थी । राक्षसों से पीड़ित हुई मृगशावकनयनी अबला सीता असहाय की भाँति इधर उधर देख रही थीं ।

यहाँ प्रयुक्त स्मृति, ऋद्धि, श्रद्धा, आशा, सिद्धि बुद्धि और कीर्ति रूपी अप्रस्तुत अमूर्त एवं अदृश्य है ।

ख- मानव बिम्ब-

जब कि किसी भी कवि का लक्ष्य काव्य को प्रभावी बनाने के लिए बिम्ब योजना का सहारा लेना ही होता है । तो उसके बिम्बन की रेखाएँ कही अस्पष्ट कहीं सुस्पष्ट रूप में दृश्य होती हैं । उसके लिए क्या मानव क्या मानवेतर जगत सब समान रूपेण महत्त्वपूर्ण होंते हैं । आदि कवि की कृति में भी यह प्रकार समादृत है । जिस भाँति इन्होंने मानव बिम्बों को महत्व दिया है उसी भाँति मानवेतर बिम्बों का भी यत्र तत्र समाहार किया हैं यहाँ पर हम पहले वाल्मीकि के मानव बिम्बों की कुछ झाँकियाँ प्रस्तुत कर रहे हैं ।

आदि कवि ने अपने काव्य के आरम्भ में ही देवर्षि नारद के मुख से व्यक्तित्व को अंकित करने का प्रयास किया जो बहुत ही प्रभावोत्पादक है । उन्होने इस संदर्भ में राम के अद्भुत व्यक्तित्व को उजागर करने के लिए विशेषणों की एक तालिका प्रस्तुत कर दी है । आपततः वे विशेषण राम की प्रशस्ति मात्र ज्ञात होते है । किन्तु उन विशेषणों के समवाय से जो एक व्यक्तित्व की छवि उभरती है

---

(1) वा0रा0- सु0/सर्ग 15/ 33-35

उससे रामायण कालीन विशिष्ट मानव के बिम्ब की परिकल्पना साकार हो जाती है । प्रस्तुत पद्य यह है-

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान धृतिमान् वशी ।।
बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमांछत्रुनिबर्हणः ।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः ।।
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिंदमः ।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः ।।
समः समविभक्तागंः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवांछुभलक्षणः ।।
धर्मज्ञः सत्यसंधश्च प्रजानां च हिते रतः ।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यःसमाधिमान ।।
प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः ।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता ।।
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।
वेदवेदागंत-त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ।।
सर्वशास्त्रार्थत-त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान् ।
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ।।
सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः ।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ।।

कवि ने सुनिर्मित रामायण के गायक सीतात्मज लव कुश के आकृति बिम्ब राम की भाँति विस्तार से नहीं रेखांकित किए बल्कि दो श्लोकें में ही प्रतिबद्ध कर दिया । किन्तु 'बिम्बादिवोत्थितौ बिम्बौ राम देहात् तथा परौ'[2] कह कर राम के गुण आकृति का समावेश कर दिया है जिससे दोनो बालकों के व्यक्तित्व के बिम्ब सहज ही उभरकर नेत्रों के सामने आ जाते है, साथ ही इतना अतिरिक्त आभासित होता है कि वे गायन वादन में भी अतिनिपुण है।

---

(1) वा०रा० - बाल०/सर्ग 1 / 8-16

(2) वा०रा०- बाल/सर्ग 4 / 11

तौ तु गान्धर्वतत्वज्ञौ स्थानमूर्च्छनकोविदौ ।
भ्रातरौ स्वरसम्पन्नौ गन्धर्वाविव रूपिणौ ।।
रूपलक्ष्मणसम्पन्नौ मधुरस्वरभाषिणौ
बिम्बादिवोत्थितौ बिम्बौ रामदेहात् तथापरौ।।[1]

इसी भांति राजा दशरथ के व्यन्क्तित्व का शब्दांकन भी अद्भुत है ।

तस्यां पुर्यामयोध्यायां वेदवित् सर्वसंग्रहः ।
दीर्घदर्शी महातेजाः पौरजानपदप्रियः ।।
इक्ष्वाकूणामतिरथो यज्वा धर्मपरो वशी ।
महर्षिकल्पो राजर्षिस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।।
बलवान् निःहतामित्रो मित्रवान् विजितेन्दियः ।
धनैश्च संचयैश्चान्यैः शक्रवैश्रवणोपमः ।।
यथा मनुर्महातेजा लोकस्य परिरक्षिता ।
तथा दशरथो राजा लोकस्य परिरक्षिता ।।[2]

" यत्राकृतिस्तत्र गुणावसन्ति इस उन्क्ति के अनुसार यह सिद्ध है कि मनुष्य की आकृति उसके आभ्यन्तरिक विशेषताओं को अभिव्यन्क्त करने में समर्थ होती है, जाहे वह विशेषताएँ गुणात्मक हों या दोषात्मक । यह उन्क्ति भी इसी की पोषक है । " अतीत्यहिं गुणान्सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते " यही कारण है कि सामुद्रिक शास्त्रों के मर्मज्ञ हस्तरेंखाएँ ही नहीं मुखाकृति देखकर पुरूष के गुण दोषों को व्याख्यायित कर देते हैं । इस सन्दर्भ में कहना यह है कि आदि कवि इस कला के भी पारंगत हैं अभी हमने ऊपर राम, उनके आत्मज लव कुश, राजा दशरथ के बिम्बों का वैविध्य प्रदर्शित किया । आगे हम देखेंगे कि कवि विभिन्न रूप , गुण, दोष समन्वितं मानवीय बिम्बो को किस कुशलता के साथ अंकित करता है ।

राजा दशरथ के यशस्वी पुत्र राम लक्ष्मण को लेने हेतु विश्वामित्र मुनि राजा दशरथ के समीप पहुँचते है उनको देखकर जो कुछ कहते हैं उससे उनके आकार प्रकार का परिज्ञान भले न हो किन्तु मुनि के ब्रह्म वर्चस्व का बिम्ब साकार हो उठता है । निम्नांकित बिम्ब दृष्टव्य है-

---

(1) वा0रा0 - बाल0/सर्ग 4/10-11
(2) वा0रा0 बाल0/सर्ग 6/ 1-4.

यथामृतस्य सम्प्राप्तिर्यथा वर्षमनूदके ।।

यथा सदृशदारेषु पुत्रजन्माप्रजस्य वै ।

प्रणष्टस्य यथा लाभो यथा हर्षो महोदयः ।।

तथैवागमनं मन्ये स्वागतं ते महामुने ।

कं च ते परमं कामं करोमि किमु हर्षितः ।।

यस्माद् विप्रेन्द्रमद्राक्षं सुप्रभाता निशा मम ।

पूर्वं राजर्षिशब्देन तपसा द्योतितप्रभः ।।

ब्रह्मर्षित्वमनुप्राप्तः पूज्योऽसि बहुधा मया ।

तदद्भुतमभूद् विप्र पवित्रं परमं मम ।।[1]

बाल्मीकि मानव बिम्बों में मानवीय सम्बेदन अंकित करने में सिद्ध हस्त हैं । कैकेयी मन्थरा से प्रेरित होकर कोप भवन में राजा दशरथ इस अप्रत्याशित दृश्य को देख कर स्तब्ध रह जाते हैं । उनकी दृष्टि पृथ्वी पर पड़ी हुई कैकेयी पर पड़ी ।

अपापः पापसंकल्पां ददर्श धरणीतले ।

लतामिव विनिष्कृत्तां पतितां देवतामिव ।।

किंनरीमिव निर्धूतां च्युतामप्सरसं यथा ।

मायामिव परिभ्रष्टां हरिणीमिव संयताम् ।।

करेणुमिव दिग्धेन विद्धां मृगयुना वने ।

महागज इवारण्ये स्नेहात् परमदुःखिताम् ।।[2]

इन श्लोकों में कवि ने कैकेयी के अमूर्तकोप को मूर्तरूप दिया है । नृपति ने कैकेयी का प्रसादन आरम्भ किया किन्तु कैकेयी ने वरदान मांग कर उनको कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया वाल्मीकि ने एक ही अनुष्टुप् से इस चित्र को प्रस्तुत किया है । किन्तु राजा की मनस्थिति के प्रतिबिम्बन से सफलता प्राप्त की -

नष्टचित्तो यथोन्मत्तो विपरीतो यथातुरः ।

हृततेजा यथा सर्पो बभूव जगतीपतिः ।।[3]

---

(1) वा०रा० - बाल०/सर्ग 18/50-55
(2) वा०रा०-अयो०/सर्ग 10/ 24-26
(3) वा०रा०- अयो०/सर्ग 12/55.

इसी भांति राम के द्वारा माता कौशल्या को यह जानकारी होती है कि राम को राज्याभिषेक न होकर उनको वनवास मिला है, वे तत्काल चेतना शून्य हो जाती हैं और मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर जाती हैं ।हृतचेतना कौशल्या का यह चित्र देखिए -

सा निकृन्तेव सालस्य यष्टिः परशुना वने ।
पपात सहसा देवी देवतेव दिवश्च्युता ।।[1]

इसी सन्दर्भ में क्रोधाविष्ट लक्ष्मण का एक शव्द चित्र देखिये - जैसे क्रोध मूर्तिमान हो गया हो-

निर्मनुष्यामिमां सर्वामयोध्यां मनुजर्षभ ।
करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैर्यदि स्थास्यति विप्रिये ।।
भरतस्याथ पक्ष्यो वा यो वास्य हितमिच्छति ।
सर्वांस्तांश्च वधिष्यामि मृदुर्हि परिभूयते ।।
प्रोत्साहितोऽयं कैकेय्या संतुष्टो यदि नः पिता ।
अमित्रभूतो निःसंगो वध्यतां बध्यतामपि ।।
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम् ।।[2]

अतिशय शोक महान से महान बलशाली पुरूष को भी चिन्तनीय दशा को प्राप्त करा देता है निषाद राज गुह से भरत श्री राम लक्ष्मण का वल्कल वेष सुनकर मूर्च्छित हो जाते हैं । वाल्मीकि की लेखनी से आलिखित यह बिम्ब दृष्टव्य है-

सुकुमारो महासत्वः सिंहस्कन्धो महाभुजः ।
पुण्डरीक विशालाक्षस्तरूणः प्रियदर्शनः ।।
प्रत्याश्वस्य मुहूर्तं तु कालं परमदुर्मनाः ।।
ससाद सहसा तोत्रैर्हृदि विद्ध इव द्विपः ।।[3]

---

(1) वा0रा0 - अयो0/सर्ग 20/32

(2) वा0रा0 - अयो0 /सर्ग 21/ 10-13

(3) वा0रा0- अयो0/सर्ग 87/2-3

आदि कवि मानवीय बिम्बों के आकलन में इतने कुशल है कि उनकी लेखनी सुन्दर और असुन्दर बिम्ब एक साथ आंकने में भी सक्षम दीखती है । राम के समीप अरण्य में शूर्पणखा का प्रवेश होता है । शूर्पनखा राम के समीप प्रणय याचना करने को उत्सुक है थोड़े शब्दों में राम का सौन्दर्य और शूर्पणखा की कुरूपता दोनो का मानव बिम्ब चित्र एक साथ दृष्टव्य है -

बभूवेन्द्रोपमं दृष्टा राक्षसी काममोहिता ।
सुमुखं दुर्मुखी रामं व्वृत्तमध्यं महोदरी ।।
विशालाक्षं विरूपाक्षी सुकेशं ताम्रमूर्धजा ।
प्रियरूपं विरूपा सा सुस्वरं भैरवस्वना ।।
तरूणं दारूणा वृद्धा दक्षिणं वामभाषिणी ।
न्यायवृत्तं सुदुर्वृत्ता प्रियमप्रियदर्शना ।।[1]

इसी सन्दर्भ में निरूपिता शूर्पनखा के द्वारा खर दूषण के सामने प्रस्तुत राम का तापस वेष में मानव बिम्ब दृष्टव्य है-

तरूणौ रूप सम्पन्नौ सुकुमारौ महाबलौ ।
पुण्डरीक विशालाक्षो चीरकृष्णाजिनाम्बरौ ।।
फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ ।
पुत्रौ दशरथस्यास्तां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।।
गन्दर्वराजप्रतिमौ पार्थिवव्यंजनान्वितौ ।
देवौ वा दानवावेतौ न तर्कयितुमुत्सहे ।।[2]

वाल्मीकि अपने चरित नायक राम और उनके अनुज लक्ष्मण के शब्द चित्र आलेखन में एक से एक बढ़कर चित्र प्रस्तुत करते हैं । किष्किन्धा में श्री हनुमान द्वारा अवलोकित चित्र की एक छटा देखिये जो तापस वेष का होकर भी उत्कृष्ट ओज विकीर्ण कर रहा है ।

---

(1) वा०रा०- अरण्य/ सर्ग 17/ 9 - 11

(2) वा०रा०- अरण्य/ सर्ग 19/14-16

सिहविप्रेक्षितौ वीरौ महाबलपराक्रमौ ।
शक्रचापनिभे चापे गृहीत्वा शत्रुनाशनौ ।।
श्रीमन्तौ रूपसम्पन्नौ वृषभश्रेष्ठविक्रमौ ।
हस्तिहस्तोपमभुजौ द्युतिमन्तौ नरर्षभौ ।।
प्रभया पर्वतेन्द्रोऽसौ युवयोरवभासितः
राज्यार्हावमर प्रख्यौ कथं देशमिहागतौ ।।
पद्मपत्रेक्षणौ वीरौ जटामण्डलधारिणौ ।
अन्योन्यसदृशौ वीरौ देवलोकादिहागतौ ।
यदृच्छयेव सम्प्राप्तौ चन्द्रसूर्यौ वसुंधराम् ।
विशालवक्षसौ वीरौ मानुषौ देवरूपिणौ ।।[1]

सारांश यह है कि आदि कवि ने मानवीय विविध बिम्बों के आधार पर पुरूष या स्त्रियों के विविध मनोभावों के सूचक हृदयावर्जक चित्र प्रस्तुत किये हैं । मानव के अन्तरंग और बहिरंग पक्ष का उद्घाटन शब्द चित्रों के माध्यम से करना आदि कवि के लिये मात्र एक कौतुक सा प्रतीत होता है ।

घ- मानवेवर बिम्ब :-

ऊपर हमने मानव बिम्बों का अध्ययन संक्षेपतः किया है । मानवेतर बिम्बों की अवतारणा से पूर्व यह आवश्यक है कि हम मानवेतर शव्द को परिभाषित करें जिसके आधार पर इस सन्दर्भ में चर्चा की जा सके । मानवेतर शब्द से मानव भिन्न किन्तु मानव के सदृश ही व्यन्तियों को गृहीत करना यहाँ अपना लक्ष्य है ।

रामायण में ऐसे भी पात्र है जिनको हम न तो प्रकृति जगत में समाहित कर सकते हैं। और न ही पशु पक्षी जगत मे ही यद्यपि इस परिभाषा के अनुसार राक्षस वर्ग, वानर ऋक्ष आदि भी गृहीत हो सकते है आचार तथा संस्कार से हीन होने के कारण इनके सम्बन्ध में आकृति प्रकृति को लेकर अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित होकर रूढ़ हो गई अस्तु हम मानवेतर जगत में देव, , गन्दर्व किन्नर, यक्ष वानर

---

(1) वा0रा0 - किष्कि0/सर्ग 3/9-13

ऋक्ष राक्षस आदि को गृहीत करने के ही पक्ष में हैं। रामायण में यत्र तत्र इनके भी शब्द चित्र अंकित किये गये हैं । इस सन्दर्भ में आदि कवि की लेखिनी कितनी कृत कार्य हुई है यह विवेचनीय है ।

आदिकवि ने अपने काव्य के आरम्भ में ही देवर्षि नारद का, बालकाण्ड के द्वितीय सर्ग में ब्रह्मा का उल्लेख किया है । किन्तु वह कोई विशिष्ट बिम्ब इनके सन्दर्भ में नही उभरता बालकाण्ड के पंच दशसर्ग में असुरो से उत्पीडित देव गण ब्रह्मा जी के पास पहुँचते है चतुरानन देवताओं को आश्वस्त करते हैं कि आप चिन्ता न करें राक्षस राज के बधं हेतु साक्षात् भगवान विष्णु ही मनुष्य रूप में अवतरित होगें । यह सुनकर देव गण प्रसन्न हुए । इसी अवसर पर अकस्मात् भगवान विष्णु वहाँ प्रकट हुए वाल्मीकि के शब्दों में इनका विग्रह इस भांति अंकित किया गया है ।

एतस्मिन्नन्तरे विष्णु रूपयातो महाद्युतिः ।
शंखचक्रगदापाणिःपीतवासा जगत्पतिः ।।
वैनतेयं समारूह्य भास्करस्तोयदं यथा ।
तप्त हाटककेयूरो वन्द्यमानः सुरोत्तमैः ।। [1]

इसके अतिरिक्त चित्र है प्राजापत्य पुरूष का जो राजा दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ के समय यज्ञ कुण्ड से प्रकट होते हैं ।

ततो वै यजमानस्य पावकादतुलप्रभम् ।
प्रादुर्भूतं महत् भूतं महावीर्यं महाबलम् ।।
कृष्णं रक्ताम्वरधरं रक्तास्यं दुन्दुभिस्वनम् ।
स्निग्धहर्यक्षतनुजश्मश्रु प्रवरमूर्धजम् ।।
शुभ लक्षण सम्पन्नं दिव्याभरण भूषितम् ।
शैलश्रृगं समुत्सेधं दृप्तशार्दूल विक्रमम् ।।
दिवाकरसमाकारं दीप्तानलशिखोपमम् ।।
तप्तजाम्बूनदमयीं राजतान्तपरिच्छदाम् ।।
दिव्यपायससम्पूर्णां पात्रीं पत्नीमिव प्रियाम्
प्रगृह्यविपुलां दोर्भ्यां स्वं मायामयीमिव ।। [2]

---

(1) वा0रा0 - बाल0/सर्ग 15/ 16,17

(2) वा0रा0 - बाल0/सर्ग 16/ 11-15

आदि कवि ने विश्वामित्र द्वारा राम लक्ष्मण को दिव्यास्त्र दान का अनोखा चित्र खींचा है, उन्होंने अस्त्रों के पृथक्-पृथक् नामों का निर्देश तो किया ही है साथ ही यह भी निर्दिष्ट किया है कि ये सभी प्रजापति कृशास्व के पुत्र हैं तथा कामरूपी एवं परमतेजस्वी है । इतना ही नहीं उन्होंने दिव्यास्त्रों का मूर्तिमान चित्र भी अंकित किया है ।[1] सिद्ध कवियों की वाणियों में कुछ ऐसे ही वर्ण्य प्रसंग आ जाते हैं जो तर्क गम्य नहीं होते कुछ इसी भांति महाकवि कालीदास ने भी शकुन्तला की विदाई के अवसर पर वस्त्रादि दान की चर्चा की है।[2]

भगीरथ की तपस्या से भगवान शंकर ने गंगा को अपनी जटाओं में उलझा लिया और वह वर्षो तक जटाओं से बर्हिगत नहीं हो पायी यद्यपि कवि ने इसके बिम्बन के लिए कोई अधिक शब्दों का उपयोग नहीं किया किन्तु भगवान शिव के जटामण्डल गह्वर को हिम-गिरि से तुलना कर बहुत कुछ कह दिया है । रससिद्ध कवियों की वाणी में यही तो विशेषता होती है । कि यदा कदा वे अत्यल्प अक्षरों के माध्यम से बहुत कुछ कह जाते हैं ।

हिन्दी के कवि बिहारी के एक दोहे में 'वा' शब्द ऐसा ही चमत्कार प्रस्तुत करता है ।[3]

सारांश यह कि आज भी गंगा सचमुच ही हिमगिरि के शैल शिखरों में बहुत कुछ उलझी

---

(1) कृशाश्वतनयान् राम भास्वरान् कामरूपिणः ।
प्रतीच्छ मम भद्रं ते पात्रभूतोऽसि राघव ।।
बाढमित्येव काकुत्स्थः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
दिव्यभास्वरदेहाश्च मूर्तिमन्तः सुखप्रदाः ।।
केचिदङ्गारसदृशाः केचिद् धूमोपमास्थता ।
चन्द्रार्कसदृशाः केचित् प्रह्वार्जलिपुटास्तथा ।। वा0रा0- बाल0/सर्ग 28/ 10-12

(2) क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरूणा मागंल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपुभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित् ।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः ।। -- अभि0 शा0 / अंक 4 /5

(3) सघन कुंज छाया सुखद शीतलमन्द समीर ।
मनह्वैजात अजौ वहै 'वा' जमुना के तीर ।। -- बिहारी सतसई पृष्ठ - 237

हुई है गंगा का वास्तविकउद्गम'गोमुख' से बीस मील दूर तपोवन के चतुस्तम्भ शिखर मे हुआ है ।[1]

कहने का तात्पर्य यह है कि कवि ने जटामण्डल गह्वर के साथ हिमालय का बिम्ब प्रस्तुत किया है । जो अतिशय युक्तियुक्त है ।

महर्षि वाल्मीकि ने पिनाक भंग के पश्चात् मार्ग में सहसा प्राप्त श्री परशुराम को क्रोधाविष्ट विग्रह का अद्भुत चित्रण किया है । जिसको पढ़ते हुए पाठक भगवान जामदग्नि का साक्षात्कार सा करने लग जाता है और क्षण मात्र के लिए अपने को भी आंतकित करता है ।

ददर्श भीमसंकाशं जटामण्डलधारिणम् ।
भार्गवं जामदग्न्येयं राजा राजविमर्दनम् ।।
कैलासमिव दुधर्षं कालाग्निमिव दु:सहम् ।
ज्वलन्तमिव तेजोभिदुर्निरीक्ष्यं प्रथग्जनै: ।।
स्कन्धे चासंज्य परशुं धनुविद्युद्गणोपमम्
प्रगृह्य शरमुग्रं च त्रिपुरघ्नं यथा शिवम् ।।[2]

आदिकवि नर हों या वानर या रक्षस किन्नर सभी के भावों की अभिव्यक्ति के चतुर चितेरे है।

श्री राम लक्ष्मण इतस्तत: परिभ्रमण करते सीता वियोग में किष्किन्धा पहुचते हैं । अपने अग्रज से निष्कासित सुग्रीव सचिव हनुमान को उनकी जानकारी लेने भेजते हैं । मारुति बड़ी ही शालीनता के साथ श्रीराम से उनका परिचय जानने की चेष्टा करते हैं । किन्तु राम मौन रहते हैं । अन्तत: श्रीहनुमान अपना परिचय स्वयं देते हैं । पवन पुत्र की वाग्मिता की प्रशंसा श्रीराम लक्ष्मण से जिस प्रकार करते है इससे पवन पुत्र का व्यक्तित्व सुव्यक्त हो जाता है ।

---

(1) " कहा जाता है , कि गंगा का मुख्य उद्गम ' गोमुख ' है, किन्तु स्वामी जी ने बताया कि भागीरथ ने भारतीय शिखर पर गंगा को भूमण्डल पर उतरने के लिए जब घोर तप किया था और उनकी तपस्या फलबती हुई तब ब्रह्म लोक से भू लोक में सर्वप्रथम गंगा जी यहीं अवतरित हुई थी, भगवान शिव ने उन्हे अपनी जटाओं में धारण किया और जब वह जटाओं के जाल से मुक्त हुई तो यहीं पर भूमि में उतर कर अन्तर्निहित हो गई । यहाँ से अन्त: सलिला बनकर बहती हुई, गोमुख मे प्रकट हुई और फिर अन्तर्निहित होकर गंगोत्री मे प्रकट हुई चतुस्तम्भ की यह हिमानी गोमुख से बीस मील दूर है।"------ हिमालय मेरी बाहों पृष्ठ-6।

(2) वा0रा0- बाल0/सर्ग 74/17-19

तमभ्यभाष सौमित्रे सुग्रीवसचिवं कपिम् ।

वाक्यज्ञ मधुरैर्वाक्यैः स्नेहयु-तमरिंदमम् ।।

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः ।

नासामवेदविदुषः शक्यमेव विभाषितुम् ।।

नूनं व्याकरण कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्

बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम् ।।

न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा ।

अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित् ।।

अविस्तरमसंदिग्धमविलम्बितमव्यथम् ।

उरःस्थ कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमस्वरम् ।।

संस्कारक्रमसम्पन्नामद्‌भुतामविलम्बिताम् ।

उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहर्षिणीम् ।।

अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यंजनस्थया ।

कस्य नाराध्यते चि-तमुद्यतासेररेरपि ।।

एवंविधो यस्य दूतो न भवेत् पार्थिवस्य तु ।

सिद्धयन्ति हि कथं तस्य कार्याणां गतयोऽनघ ।।[1]

अन्ततः श्रीराम और लक्ष्मण हनुमान से प्रभावित होते हैं भ्राता के संकेत से सौमित्रि वानर राज सुग्रीव से मैत्री करने की इच्छा व्य-त करते हैं । हनुमान इस प्रस्ताव से प्रसन्न होकर उनको वचन देते है कि वानर——राज सुग्रीव भी संकटग्रस्त है । यह आपकी सहायता अवश्य करेंगे ।

आत्म विश्वास पूर्ण और प्रसन्न चि-त हनुमान के आश्वासन को लक्ष्मण ने विश्वसनीय कहा, आदि कवि ने लक्ष्मण से हनुमान की इस मुद्रा का चित्रण कराया है । जिससे आदि कवि की आत्म विश्वास पूर्ण भावमुद्रा चित्रित करने की कुशलता व्य-त होती है । लक्ष्मण अपने अग्रज से कहते है-

---

(1) वा0रा0 - किष्कि0 /सर्ग 3/ 27-37

कपिः कथयते हृष्टो यथार्थ मारूतात्मजः ।

कृत्यवान् सोऽपि सम्प्राप्तः कृतकृत्योऽसि राघव ।।

प्रसन्नमुखवर्णश्च व्य-क्त हृष्टश्च भाषते ।

नानृतं वक्ष्यते वीरो हनुमान् मारूतात्मजः ।।[1]

वाल्मीकि वैधव्य दुख पीड़िता तारा का जैसा चित्रण करते हैं वह एक पतिव्रता स्त्री के कितना अनुरूप है इन पद्यो मे देखें-

तं सा समासाद्य विशुद्धसत्वं

शोकेन सम्भ्रान्तशरीरभावा ।

मनस्विनी वाक्यमुवाच तारा

रामं रणोत्कर्षणलब्धलक्ष्यम् ।।

त्वमप्रमेयश्च दुरासदश्च

जितेन्द्रियश्चो-त्तमधर्मकश्च

अक्षीणकीर्तिश्च विचक्षणश्च

क्षितिक्षमावान् क्षतजोपमाक्षः ।।

त्वमा-त्तबाणासनबाणपाणि-

र्महाबलः संहननोपपन्नः ।

मनुष्यदेहाभ्युदयं विहाय

दिव्येन देहाभ्युदयेन यु-क्तः ।।

येनैव बाणेन हतः प्रियो मे.

तेनैव वाणेन हि मां जहीहि ।

हता गमिष्यामि समीपमस्य

न मां विना वीर रमेत वाली ।।[2]

---

(1) वा0रा0 - किष्कि0/सर्ग 4 /31, 32

(2) वा0रा0- किष्कि0/सर्ग 24/ 30-33

पतिशोक विह्वला मानवी कौशल्या और वानरी तारा की संवेदना में नारी सुलभ भावुकता समान है । इससे ज्ञात होता है कि प्राणी मात्र में सर्वत्र सुखात्मक एवं दुःखान्तमक अनुभूति समान रूप से पाई जाती है । वाल्मीकि ने वालि बधोपरान्त सुग्रीव के अनुताप एवं तारा का बिलाप जितना हृदय द्रावक अंकित किया है वह किसी भी सहृदय को द्रवित कर देता है । तारा की राम के प्रति यह उक्ति के आपने जिस बाण से मेरे पति वालि को मारा है उसी वाण से मुझको भी मार देते. तो आपकी बड़ी कृपा होती क्यों कि इससे मेरा असह्य वियोग दूर हो जाता और मै अपने पति के पास पहुँच जाती यह उक्ति कितनी मर्मस्पर्शी है । उसको सहृदय ही जानता है ।

मानवेतर बिम्बों की श्रृंखला में आदि कवि से हनुमान के द्वारा रावण के अन्तःपुर की सुप्तावस्था का वर्णन मानवेतर बिम्ब का उत्कृष्ट उदाहरण दृष्टव्य है-

तस्मिंजीमूतसंकाशं प्रदीप्तोज्ज्वलकुण्डलम् ।
लोहिताक्षं महाबाहुं महारजतवाससम् ।।
लोहितेनानुलिप्ताङ्गं चन्दनेन सुगन्धिना ।
संध्यारक्तमिवाकाशे तोयदं सतडिद्गुणम् ।।
वृतमाभरणैर्दिव्यैः सुरूपं कामरूपिणम् ।
सवृक्षवनगुल्माढ्यं प्रसुप्तमिव मन्दरम् ।।
क्रीडित्वोपरतं रात्रौ वराभरणभूषितम् ।
प्रियं राक्षसकन्यानां राक्षसानां सुखावहम् ।
पीत्वाप्युपरतं चापि ददर्श स महाकपिः ।
भास्वरे शयने वीरं प्रसुप्तं राक्षसाधिपम् ।।[1]

रावण के अंग प्रत्यंगों का वर्णन रामायण में किया गया है । किन्तु हनुमान के मुखसे उसकी दो वाहों के चित्रण में आदि कवि ने कई अनुष्टुप् अंकित किए है । वे श्लोक प्रस्तुत हैं ।.

काचंनाङ्गदसंनद्धौ ददर्श स महात्मनः ।
विक्षिप्तौ राक्षसेन्द्रस्य भुजाविन्द्रध्वजोपमौ ।।
ऐरावतविषाणाग्रैरापीडनकृतव्रणौ ।
वज्रोल्लिखितपीनांसौ विष्णुचक्रपरिक्षतौ ।।

---

(1) वा०रा० - सु०/ सर्ग 10/7-11

पीनौ संमसुजातांसौ सगंतौ बलसंयुतौ ।
सुलक्षणनखाङ्गुष्ठौ स्वङ्गुलीयकलक्षितौ ।।
संहतौ परिघाकारौ वृन्तौ करिकरोपमौ ।
विक्षिप्तौ शयने शुभ्रे पंचशीर्षविवोरगौ ।।
शशक्षतजकल्पेन सुशीतेन सुगन्धिना ।
चन्दनेन परार्ध्येन स्वनुलिप्तौ स्वलंकृतौ ।।
उत्तमस्त्रीविमृदितौ गन्धो-तमनिषेवितौ ।
यक्षपन्नगगन्धर्वदेवदानवराविणौ ।
ददर्श स कपिस्तस्य बाहू शयनसंस्थितौ ।
मन्दरस्यान्तरे सुप्तौ महाही रूषिताविव ।।[1]

मानवेतर बिम्बों के उपस्करण के सम्बन्ध में सुन्दर काण्ड का नवम सर्ग अद्भुत है । हनुमान सीता की खोज करते हुए रावण के अन्तःपुर में पहुँचते हैं । रात्रि में राक्षस राज रावण प्रसुप्ता सहस्त्र नारियों को वे देखते है । वाल्मीकि ने इसके अत्यन्त हृदयहारी विविध भाव भंगी भूत बिम्ब उपस्थित किये है । सुन्दर युवतियाँ की आँखें बंद है फिर भी सम्भोग सुख से तुष्ट होने के कारण उनके मुखों में प्रसन्नता झलक रही है । हर्षोत्फुल्ला सुन्दरियों के मुख ऐसे प्रतीत हो रहे हैं । कि रात आने पर मुदे हुए दल वाले कमल हों ।[2]

रावण की वह शाला उन स्त्रियों से प्रकाशित होकर ऐसी सुशोभित हो रही थी. जैसे तारा गणों से सुशोभित निर्मल आकाश हो ।[3] उन स्त्रियों से घिरा हुआ राक्षस राज ऐसा शोभा पा रहा था जैसे तारागणों के बीच चन्द्रमा ।[4] हनुमान को ऐसा प्रतीत हुआ कि आकाश से भोगावशिष्ट पुण्य के साथ जो तारायें नीचे गिरती है मानो वे ही सबकी सब सुन्दरियोंके रूप में एकत्र हो गई है ।[5]

कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी दीख रहीं थी जो निद्रा से अचेत सी हो रही थीं । मधुपान के अनन्तर नृत्यगान क्रीड़ा आदि के समय जिनके केश खुल कर विखर गये थे पुष्प मालाएँ मर्दित होकर छिन्न

---

(1) वा0रा0 - सु0/सर्ग 10/15-21
(2) वा0रा0- सु0/सर्ग 9/37
(3) वा0रा0- सु0/सर्ग 9/40
(4) वा0रा0- सु0/सर्ग 9/41
(5) वा0रा0- सु0/सर्ग 9/ 42

भिन्न हो गई और सुन्दर आभूषण शिथिल होकर खिसक गये थे ।[1] कुछ प्रसुप्ता सुन्दरियाँ ऐसी भी दिखीं जिनके मस्तक की बिन्दियाँ पुछ गई थीं, किन्हीं के नूपुर पैरों से निकल कर दूर जा पड़े थे । तथा किन्ही युवतियों के हार छूटकर बगल में पड़े थे ।[2]

कोई मोतियो के हार टूट जाने से उनके विखरे दानों से आवृत थीं, किन्ही के वस्त्र खिसक गये थे, और किन्ही की करधनी की लड़ी टूट गईथी वे युवतियाँ बोझ होकर थकी हुई बछेड़ियों के समान जान पड़ती थीं ।[3]

किन्ही के कानो के कुण्डल गिर गये थे किन्ही की पुष्प मालाएं मसली जाकर छिन्न भिन्न हो गई थी । इससे महावन में गजराज द्वारा दली मली गई फूली लताओं के समान प्रतीत होती थी ।

मारूति रावण पत्नियों के ऐसे ही शतशः चित्र देखते हैं जो एक दूसरे से बढ़कर है ।

वाल्मीकि ने इनके चित्रण में कोई संकीर्णता नहीं बरती । सारा का सारा सर्ग उन्होने इस मानवे-तर बिम्ब के उपस्थापन मे व्यय किया है ।

अन्त में सारे शब्द चित्रों के उपसंहार के बाद वाल्मीकि ने समुपवर्णित सुन्दरियों के सम्बन्ध में जो विशेष उल्लेख किया है उन छन्दों के प्रस्तुत करने का लोभ संवरण हम नहीं कर सकते, वे निम्नांकित है-।

न तत्र काश्चित् प्रमदाः प्रसह्य
वीर्योपपन्नेन गुणेन लब्धाः ।
न चान्यकामापि न चान्यपूर्वा
विना वरार्हां जनकात्मजां तु ।।
न चाकुलीना न च हीनरूपा
नादक्षिणा नानुपचारयुक्ता ।
भार्याभवत् तस्य न हीनसत्वा
न चापि कान्तस्य न कामनीया ।।[4]

---

(1) वा0रा0 सु0/सर्ग 9/44
(2) वा0रा0 सु0/सर्ग 9/ 45
(3) वा0रा0- सु0/सर्ग 9/ 46
(4) वा0रा0 - सु0/सर्ग 9/ 70-71

ये तो हुई कवि की बात किन्तु उन सुन्दरियों को देखने के पश्चात् पवन पुत्र हनुमान के चिन्त में क्या प्रतिक्रिया होती है वह भी ध्यातव्य है । -

बभूव बुद्धिस्तु हरीश्वस्य
यदीदृशी राघवधर्मपत्नी ।
इमा महाराक्षसराजभार्या:
सुजातमस्येति हि साधुबुद्धेः ।।
पुनश्च सोऽचिन्तयदान्तरूपो
ध्रुवं विशिष्टा गुणतो हि सीता ।
अथायमस्यां कृतवान् महात्मा ।
लंकेश्वरः कष्टमनार्यकर्म ।।[1]

निश्चय ही आदिकाव्य में सारे के सारे स्थलों में गुम्फित शब्दार्थ बिम्ब अद्भुत है । किन्तु सुन्दर काण्ड तो इस सन्दर्भ में अदभुततम है । 'सुन्दरे किन्न न सुन्दरम् ' यह उक्ति शत प्रतिशत यथार्थ है ।

इस तरह दृश्य अदृश्य,मानव मानवेतर अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर जो पहुँचते है कि यद्यपि उसकी यहाँ प्रस्तुति आंशिक रूप से ही की जा सकी है । फिर भी यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि बिम्बोपस्थापन में आदि कवि अद्वितीय हैं । उनकी जैसी ग्राहयित्री निरीक्षण शक्ति और उसका शब्दों में अंकन उन्हीं के वश की बात थी । परःशत महाकवियों के पश्चात् भी आदि कवि इस क्षेत्र में अद्वितीय है ।

---

(1) वा0रा0 - सु0/सर्ग 9/ 72-73

सप्तम अध्याय

रामायण में बिम्ब-विधान—३ अन्तरंग

सप्तम अध्याय

अन्तरंग -

विगत अध्याय में बहिरंग बिम्बों के अध्ययन के सम्बन्ध में हमने दृश्य, अदृश्य , मानव और मानवेतर बिम्बों के शब्द चित्र प्रस्तुत किये हैं ।

इस अध्याय में अन्तरंग बिम्बों के वर्णन प्रसंग में एतादृश बिम्बों का अध्ययन करना है जो अमूर्त या बाह्येन्द्रिय साध्य नहीं है किन्तु अन्तःकरण में सीधा अपना प्रभाव प्रतिबिम्बित करते है । यद्यपि यह कहा जा सकता है कि विगत अध्याय में अदृश्य बिम्ब भी तो इस दृष्टि से अन्तरंग ही कहे जाने चाहिए क्यों कि यह ज्ञातव्य ही है कि बहिरंग बिम्बो में उन्ही अदृश्य बिम्बो का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है , जो अपने द्वारा वाह्य प्रभाव ही छोड़ते है । किन्तु यहाँ पर अन्तरंग बिम्बो के अध्ययन के सम्बन्ध में यह ध्येय है कि इस अध्याय में ऐसे बिम्बों का अध्ययन किया जायेगा जो अपना अन्तरंग प्रभाव सूक्ष्म रूपेण उद्वेलित करते है । इस अध्याय में जिन विषयों को लेकर अध्ययन किया जायेगा वे निम्नांकित है ।

क- वैचारिक बिम्ब

ख- भावनात्मक बिम्ब

ग- राजनैतिक बिम्ब

घ- धार्मिक बिम्ब

ड- सांस्कृतिक बिम्ब

च- कौटुम्बिक बिम्ब

छ- सामाजिक बिम्ब

क- वैचारिक बिम्ब-

प्रत्येक कवि के कवि कर्म का यही उद्देश्य होता है कि वह किसी न किसी माध्यम से अपने विचारो को अंकित करता है किन्तु उसके अंकन में प्रभविष्णुता वहीं होती है जहाँ पाठक या

श्रोता के अन्तःकरण में कोई बिम्ब अपना स्थान बना लेता है । हम विगत अध्याय में भी यत्र तत्र चर्चा करते रहे हैं कि कवि अपने कथ्य को तभी प्रभाविष्णु बना पाता है जो बिम्बोपस्थिति-निपुण होता है कोई सामान्य जन यदि किसी जलाशय की चर्चा करता है, तो मात्र इतना कह कर अपनी बात समाप्त कर देगा कि अमुक जलाशय बहुत बड़ा बहुत गहरा और निर्मल है किन्तु जलाशय वर्णन में कवि का कथ्य एतावन् मात्र पर समाप्त नहीं होता प्रत्युत वह उसके सम्बन्ध में कुछ ऐसा कहेगा कि जिससे पाठक या श्रोता के अन्तर्मन में चिरकाल के पश्चात् भी प्रतिबिम्बित रहे उदाहरणार्थ भट्टिमहाकाव्य का एक छन्द देखिए जो जलाशय के ही वर्णन प्रसंग में कहा गया है-

न तज्जलं यन्न सुचारू पंकजम् ,
न पंकजं तद् यदलीन षट्पदम् ।
न षद्पदोऽसौ न जुगुञ्ज यः कलम् ,
न गुंञ्जितं तन्न जहार यन्न मनः ।। [1]

कवि कह रहा है कि अयोध्या में ऐसा कोई जलाशय नहीं है जिसमें सुन्दर कमल न खिले हों और ऐसा एक भी कमल पुष्प नहीं मिलेगा जिसमें भ्रमर न बैठा हो, इतना ही नहीं वहाँ एक की ऐसा भौरा नहीं मिलेगा जो मधुर गुंजार न कर रहा हो और ऐसा कोई गुंजार नहीं जो मन को न हर लेता हों । सुस्पष्ट है कि जलाशय का यह वर्णन पाठक या श्रोता के चि-त में एक ऐसी छाप छोड़ जाता है जिसका प्रभाव चिरकाल तक बना रहता है अस्तु हम यह कह रहे थे कि सफल कवि के लिए बिम्बोपस्थापन कौशल अनिवार्य है ।

अपने कथ्य को प्रभावी बनाने के लिए कवि के काव्य में बहिरंग बिम्बों की सजावट कम नहीं होती किन्तु यथार्थ में उसके अन्तरंग बिम्ब ही विशेषतया अध्येतव्य होते हैं, क्यों कि कवि का वास्तविक उद्देश्य उस-ही में अन्तर्निहित होता है । बहिरंग बिम्ब तो एक तरह से सहायक मात्र होते हैं।

वैचारिक बिम्बों का जहाँ तक प्रश्न है किसी भी उत्कृष्ट काव्य में उनका आयाम अति विस्तृत तथा विशाल होता है क्यो कि विचार-सम्प्रेषण ही तो एक प्रकार से कवि का लक्ष्य होता है ।

---

(1) संस्कृत सू-क्त सुधा श्लोक संख्या -52

और इन विचारों की सम्प्रेषणीयता में बिम्बोपस्थापन अपनी विशिष्ट भूमिका निभाता है ।

यहाँ यह अवश्य ध्यातव्य है कि काव्यगत किसी भी बिम्ब को हम यह निर्धारण करने का दावा नही कर सकते कि वह एतावन् मात्र है । क्यों कि इन्द्रिय बोध मे किसी एक संवित् की भले ही प्रमुखता हो किन्तु समष्टि में जो अर्थ बोध होता है वह एकांगी नही होता है । यह तो अध्ययन के सौविध्य के लिए पृथक् पृथक् शीर्षको में विभक्त कर लिया जाता है । यह बात अवश्य है कि भाव बोध में जिसकी प्रमुखता होती है उसी का नाम निर्देशन कर लेते है । तात्पर्य यह है कि जहाँ हम वैचारिक बिम्ब की प्रस्तुति दर्शा रहे है हो सकता है वहाँ अलंकारगत , संवादगत या अन्य कोई बिम्ब भी प्रतिभासित हो ।

यहाँ पर हम कतिपय वैचारिक बिम्ब प्रस्तुत कर रहे हैं । जिनमें आदि कवि की नवनवोमेष शालिनी प्रतिभा के दर्शन होते हैं । मानव मात्र का अन्तरंग पक्ष जैसे विचारों का पुंज मात्र है मनुष्य एक बौद्धिक प्राणी है कुछ न कुछ सोचना विचारना उसकी प्रकृति है, इतना ही नहीं जिसके जैसे विचार होते हैं वैसा ही वह करता भी है । जैसा कि कहा गया है यन्मनसाध्यायति तद् वाचा वदति, यद् वाचावदति तद् कर्मणाभिसम्बध्यते ।' कवि भी किसी न किसी पात्र के माध्यम से उसके कथ्य की प्रस्तुति करता है और आगे चलकर उसके कार्यान्वय को भी दिखलाने का प्रयास करता है ।

रामायण में अलंकारगत, संवादगत, आदि बिम्बों की भांति वैचारिक बिम्ब भी भरे पड़े हैं । किन्तु यहाँ पर सीमित मात्रामें उनकी प्रस्तुति की जा रही है जो पाठक या श्रोता के अन्तर्मन को अभिभूत किये बिना नही रहता ।

रामायण में राम का विवासन एक बहुत बड़ी घटना थी कुटुम्ब का कलह कितना भयानक रूप ले लेता है । मन्थरा के कुपरामर्श से कैकेयी ने यह किया । इस असाधारण संकट के समय जब कि प्रत्येक व्यक्ति किं कर्तव्यविमूढ़ सा हो रहा था । राम की वैचारिक शक्ति अग्नितप्त स्वर्ण की भांति निखर कर सामने आती है । आदिकवि वाल्मीकि ने इसका अकंन असाधारण वैदग्धी से किया है । इस प्रसंग को उन्होने दो विपरीत विचारधाराओं को बहुत ही हृदय स्पर्शी ढंग से प्रस्तुत किया है ।

एक ओर क्रोधाविष्ट लक्ष्मण की विचारधारा और दूसरी ओर शान्तचिन्त सौम्य मूर्त रामभद की । यहाँ संक्षेप में दोनों के शब्द चित्र प्रस्तुत कर रहे है-

लक्ष्मण अग्रज के प्रेम से अभिभूत हो तथा कैकेयी की दुरभिसंधि से कुद्ध हो जब आग उगलते हैं यहाँ तक कि पितृवध की भी बात उनके मन में उमड़ने घुमड़ने लगती है । इस वैचारिक बिम्ब को कवि ने कितना सटीक उतारा है निम्न लिखित अनुष्टुपों मे देखिए-

मया पार्श्वे सधनुषा तव गुप्तस्य राघव ।
कः समर्थोऽधिकं कर्तु कृतान्तस्येव तिष्ठतः ।।
निर्मनुष्यामिमां सर्वाममोध्यां मनुजर्षभ।
करिष्यामि शैरस्तीक्ष्णैर्यदि स्थास्यति विप्रिये ।।
भरतस्याथ पक्ष्यो व यो वास्य हितमिच्छति ।
सर्वांस्तांश्च वधिष्यामि मृदुर्हि परिभूयते ।।
प्रोत्साहितोऽयं कैकेय्या संतुष्टो यदि नः पिता।
अमित्रभूतो निःसंङ्ग वध्यतां बध्यतामपि ।।
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम् ।।
बलमेष किमाश्रित्य हेतुं व पुरूषोन्तम ।
दातुमिच्छति कैकेय्यै उपस्थितमिदं तव ।।
त्वया चैव मया चैव कृत्वा वैरमनुन्तमम् ।
कास्य शन्क्तःश्रियं दातुं भरतायारिशासन ।।
अनुरन्क्तोऽस्मि भावेन भ्रातरं देवि तन्त्वतः ।
सत्येन धनुषा चैव दन्तेनेष्टेन तेशपे ।।
दीप्तमग्निमरण्यं वा यदि रामः प्रवेक्ष्यति ।
प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय ।।
हरामि वीर्याद् दुःखं ते तमः सूर्य इवोदितः ।
देवी पश्यतु मे वीर्य राघवश्चैव पश्यतु ।।
हनिष्ये पितरं वृद्धं कैकेय्यासन्क्तमानसम्।
कृपणं च स्थितं बाल्ये बृद्धभावेनगर्हितम् ।।[1]

1- वा0रा0/अयो0/सर्ग. 21/9-19

क्रोधाविष्ट लक्ष्मणकी कटु उक्तियों को आदि कवि ने जो आकार दिया है वह अनुपम है । क्षत्रियोचित तेजस्विता का बिम्ब देखने ही योग्य है कोईभी पाठक या श्रोता सुमित्रा तनय के तर्कों को अस्वीकार नही कर सकताजब तक कि वह सौम्य विग्रह श्री राम भद्र के विचारों से अवगत नही होता यहाँतक अत्यन्त विवेकशीला कौशल्या भी इसका समर्थन कर बैठती है ।

यथैव राजा पूज्यस्ते गौरवेण तथा ह्यहम् ।
त्वां साहं नानुजानामि न गन्तव्यमितो वनम् ।।[1]

किन्तु राम के वैचारिक शक्ति - वर्चस से सौमित्रि का वैचारिक बिम्ब धूमिल पड़ जाता है परिणामतः पाठक या श्रोता के मस्तिष्क से शनैः शनैः ओझल हो जाता है । स्थायी रूप से राम के वैचारिक बिम्ब जड़ जमा लेते हैं ।

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम ।
प्रसादये त्वं शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम् ।।
ऋषिणांच पितुर्वाक्यं कुर्वता वन चारिणा ।
गौर्हता जानता धर्म कण्डुनाच विपश्चिता ।।
अस्माकं तु कुले पूर्व सगरस्याज्ञया पितुः ।
खनद्भिः सागरैर्भूमिमवाप्तः सुमहान् वधः ।।
जामदग्न्येन रामेण रेणुका जननी स्वयम् ।
कृत्ता परशुनारण्ये पितुर्वचनकारणात्।।
एतेरन्यैश्च बहुभिर्देवि देवसमैः कृतम् ।
पितुर्वचनमक्लीबं करिष्यामि पितुर्हितम् ।।
न खल्वेतन्मयैकेन क्रियते पितृशासनम् ।
एतैरपि कृतं देवि ये मया परिकीर्तिताः ।।
नाहं धर्ममपूर्वं ते प्रतिकूलं प्रवर्तये ।
पूर्वैरयमभिप्रेतो गतो मार्गोऽनुगम्यते ।।[2]

---

(1) वा०रा० अयो०/सर्ग-21/25

2- वा०रा० अयो०/सर्ग 21/30-36

राम अपने समर्थन में तर्क पक्ष को नितराम उपेक्षित कर देते हैं वह बहुत ही सीधे-सादे शब्दों में अपने दृढ़ विचार व्यन्क्त कर देते हैं । इतना अवश्य है कि वह अपने पक्ष के समर्थन में पितृ आज्ञा समर्थक इतने उदाहरण प्रस्तुत करते है जैसे मुद्रांकित कर विचारों को सत्यापित कर दिया हो ।

सीता का अपहरण हो चुका है । वानर राज सुग्रीव के आदेश से संख्यातीत वानर चारों दिशाओं में फैल जाते है । इस कार्य में संलग्न वानर तथा रीक्षो का एक दल दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान करता है । ऋक्षराज जामवन्त के परामर्श से श्री अनुमान समुद्रोलंघन कर लंका पहुँचते हैं। निशीथ में सीता के अन्वेषणार्थ रावण के अन्तःपुर में प्रविष्ट होते हैं । जहाँ राक्षस राज रावण की स्त्रियाँ निद्रा में अचेत पड़ी हुई हैं । कोई अर्धनग्न है किन्ही का वक्षस्थल अनावृत है तो कोई विवस्त्र हैं । उन सब को देखकर मारूति के अन्तःकरण में जो अन्तर्द्वन्द्व मचता है और अन्त में जो वैचारिक बिम्ब उभरता है, आदिकवि ने बहुत ही हृदयावर्जक इस दृश्य को उदाहरित किया है । निश्चित ही पवन पुत्र के विचारों का उपस्थापन पाठक या श्रोता के हृदय में जृम्भित हो जाता है ।

निरीक्षमाणश्च ततस्ताः स्त्रियः स महाकपिः ।
जगाम महतीं शकां धर्मसाध्वसशकिंतः ।।
परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम्।
इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति ।।
न हि मे परदाराणां दृष्टिर्विषय पर्तिनी ।
अयं चात्र मया दृष्टः परदारपरिग्रहः ।।
तस्य प्रादुरभूञ्चिन्ता पुनरन्या मनस्विनः
निश्चितैकान्तचिन्तस्य कार्यनिश्चयदर्शिनी ।।
कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः ।
न तु मे मनसा किंचिद् वैकृत्यमुपपद्यते ।।
मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने ।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम्।।
नान्यत्र हि मया शक्या वैदेही परिमार्गितुम् ।
स्त्रियो हि स्त्रीषु दृश्यन्ते सदा सम्परिमार्गणे।।

यस्य सन्त्वस्य या योनिस्तस्यांतत् परिमार्गते ।
न शक्यं प्रमदा नष्टा मृगीषु परिमार्गितुम् ।।
तदिदं मार्गितं तावच्छुद्धेन मनसा मया ।
रावणान्त:पुरंसर्वं दृश्यते नैव जानकी ।।[1]

ऊपर हमने वैचारिक बिम्बोंके दोतीन शब्द चित्र अंकित किये है । प्राय: प्रत्येक शब्द चित्र में पंचाधिक अनुष्टुप् उल्लिखित है । किन्तु इसका यह आशय नही कि आदि कवि को एतदर्थ अधिक शब्द सम्पदा की आवश्यकता पड़ती , ऐसे भी स्थल हैं कि उनकी एक एक उक्ति भी अदभुत वैचारिक बिम्ब प्रस्तुत कर देती है । जैसे " रामोद्विर्नाभिभाषते ' यह एक ही उक्ति राम के हिमगिरि सदृश अडिग मनुष्यता के धैर्य एवं साहस का प्रतीक है । इस एक ही पंक्ति में अमूर्त वैचारिक बिम्ब साकार सा हो जाता है । ऐसा ही एक और उदाहरण देखिए-

" स्वपन्ति नार्य: पतिभि: सुवृत्ता:" ।[1]

यह पंक्ति सुन्दरकाण्ड में चन्द्रोदय वर्णन के प्रसंग में कही गई है , कहने के लिए तो यह उक्ति चन्द्रोदय के सन्दर्भ मे ही कही गई है । किन्तु वस्तु तथ्य तो यह है कि इस सामान्य कथ्य में कवि एक महत्त्व पूर्ण ज्ञातव्य की ओर संकेत कररहा है । इसमें ' सुवृत्ता:' पद लक्ष्य करने योग्य है । कवि कहता है कि लंका पुरी के भवनों में चन्द्रोदय के समय चरित्रवती स्त्रियाँ अपने पतियों के साथसो रही है । कहना नहीं होगा कि महर्षि वाल्मीकि की दृष्टि में लंका की राक्षसियो के प्रति भी कितना सम्मान सूचक भाव है । जैसा कि महात्मा गांधी ने एक बार कहा था कि रावण भले ही राक्षस हो किन्तु मन्दोदरी तोदेवी है ।[2] महात्मागांधी की यह उक्ति रामायण समुपवर्णित मन्दोदरी के चरित्र से अक्षरश: सत्य कही जा सकती है । यही बात व्यंजना से महर्षि प्राचेतस भी कह रहे हैं कि लंका नगर के राक्षस भले ही राक्षस रहे हों किन्तु नारियाँ तो सुवृत्त अर्थात् चरित्रवती थीं इस छोटी सी पंक्ति में आदि कवि ने कितना गम्भीर वैचारिक बिम्ब प्रस्तुत कर दिया है।

ख- भावनात्मक बिम्ब -

पुराणों में ऐसी मान्यता है कि भगवान् शंकर अर्धनारीश्वर हैं अर्थात् उनका आधा शरीर नारी

---

(1) वा0रा0/सु0/सर्ग-11/37-45

(2) वा0रा0/सु0/सर्ग 5/9

का और आधा भाग पुरूष का है । यह परिकल्पना जितनी मधुर है उतनी ही विचारपूर्ण यदि गहराई से विचार किया जाय तो यह वात प्रत्येक मनुष्य पर घटती है । इतना ही नहीं उसका अन्तरंग पक्ष भी दो तन्त्वों से निर्मित है हृदय और मस्तिष्क, जिस प्रकार कोई भी पुरूष शरीर के रूप में नर और नारी का प्रतिनिधित्व करता है इसी भाँति उसका अन्तरंग भी दोनों का प्रतिनिधि है । जब हम विचार प्रधान या बौद्धिक तत्व से यु-क्त होते हैं तो पुरूषत्व का प्रतिनिधित्व करते हैं और जब हम हार्दिकता से या भावुकता से अभिभूत होते है तो हम नारीत्व का प्रतिनिधित्व करते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि पुरूष में वैचारिकता की प्रधानता होती है तो नारी में भावुकता की । पुरूष तर्क प्रधान है तो नारी विश्वास प्रधान । पुरूष में अहं है तो नारी में समर्पण का भाव किन्तु इसकी कोई विभाजन रेखा नहीं है । कोई भी पुरूष अधिक सहृदय होता है तो कोई स्त्री अधिक तर्कशील । अस्तु किसी भी काव्य में कुछ सन्दर्भ ऐसे होते हैं जहाँ बौद्धिकता का प्राधान्य है तो कहीं ऐसे स्थल पाये जाते हैं जो भावुकता या सहृदयता से ओतप्रोत दीखते है । यहाँ पर हम कतिपय ऐसे बिम्ब प्रस्तुत कर रहे हैं जिनको भावनात्मक बिम्ब कहा जा सकता है ।

रामायण में आदि कवि ने जिन भावनात्मक बिम्बों को दर्शाया है उनमें कुछ बिम्बों को निम्न प्रकार से देखिए ।

श्री राम का राज्याभिषेक प्रस्तावित है । कैकेयी मंथरा के कुमन्त्र से भड़क उठती है और पुत्र विमोह में फँस कर भावना के प्रवाह में बह जाती है । यदि वह बुद्धि से काम लेती तो रामायण का कथानक ही कुछ और होता । किन्तु ऐसा हो न सका उसकी भावुकता ने उसके कर्तव्य बोध को विलुप्त कर दिया । जब मनुष्य मोहग्रस्त होता है तो उसको सब कुछ विपरीत ही सूझता है । शत्रु मित्र और मित्र शुत्र प्रतीत होने लगते है । मोह सर्प से दंष्ट्र मनुष्य को निम्ब पत्र भी कटु न होकर मीठे प्रतीत होते है । सत्य असत्य, शिव-अशिव सौन्दर्य-असौन्दर्य आभाषित होने लगता है । इतना ही नहीं उसकों असत्य-सत्य अशिव- शिव और असुन्दर-सुन्दर प्रतीत होने लगता है । आदि कवि ने इस तथ्य को बहुत ही मनोयोग के साथ उजागर किया है यद्यपि आपाततः यह प्रसंग हास्यास्पद सा प्रतीत होता है किन्तु थोड़ा भी मनोयोग पूर्वक चिन्तन करने से उसकी गम्भीरता प्रस्फुटित हो जाती है ।

कैकेयी मन्थरा की दुरभिसन्धि से व्यामोहित हो जाती है परिणामतः उसको मन्थरा की बातें अच्छी लगती हैं । आश्चर्य तो यह है कि उस कुरूपा कूबड़ी के शरीर में वह सौन्दर्य आंकने लग जाते हैं । कवि की वाणी में यह शब्द चित्र देखियें -

त्वं पद्‌ममिव वातेन संनता प्रिय दर्शना ।
उरस्तेऽभिनिविष्टं वैयावत् स्कन्धात् समुन्नतम् ।।
अधस्ताच्चोदरं शान्तं सुनाभमिव लज्जितम् ।
प्रतिपूर्णं च जघनं सुपीनौं च पयोधरौ ।।
विमलेन्दु समं वक्त्रमहो राजसि मन्थरे ।
जघनं तव निर्भृष्टं रसना दाम भूषितम् ।।
जङघे भृशमुपन्यस्ते पादौ च व्यापताबुभौ ।
त्वमायताभ्यां सक्थिभ्यां मन्थरे क्षौमवासिनी ।।
अग्रतो मम गच्छन्ती राजसे अतीव शोभने ।
आसन् याः शम्बरे मायाः सहस्त्रमसुराधिपे ।।
हृदयें ते निविष्टास्ता भूयश्चान्याः सहस्त्रशः ।
तदेव स्थगु यद् दीर्घं रथघोणमिवायतम् ।।[1]

ऊपर के उदाहरण में हमने यह देखा कि भावना ग्रस्त पुरूष या स्त्री अपने कर्तव्य से च्युत हो जाते है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि भावुकता या सहृदयता कर्तव्य का विरोधी है । बहुत ऐसे अवसर आते हैं जब मनुष्य का भावबोध उसके कर्तव्य बोध की सम्पुष्टि करता है । हृदयहीन बौद्धिकता जितनी भयंकर होती है । बुद्धिहीन भावुकता भी उतनी उभयतः सामान्जस्य परम आवश्यक है । तभी तो राष्ट्र कवि दिनकर ने एक जगह कहा है " मानव केवल है हृदय नहीं वह मानस और हृदय भी है ।" तात्पर्य यह है कि मनुष्य की स्वार्थ भावना ही सब कुछ नहीं उसकी त्याग भावना का महत्व है तभी उसमें मानवीयता के दर्शन होते है । बुद्धि हीन भावना का दुष्परिणाम हमने मन्थरा प्रकरण में देखा । अब बुद्धि समधिष्ठित भावना का एक सुन्दर चित्र देखें -

---

(1) वा0 रा0/अयो0/सर्ग9/41-46

राम लक्ष्मण सीता तीनो की वन यात्रा की तैयारी हो चुकी है । श्री लक्ष्मण माता सुमित्रा से आदेश लेने पहुँचते हैं । सुमित्रा राम के साथ लक्ष्मण के जाने का अनुमोदन करती है । उनकी यह उक्ति विश्व साहित्य की अमूल्य निधि है ।

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्यजाम् ।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छतात यथा सुखम ।। [1]

सुमित्रा ने अपने पुत्र की विदाई के अवसर पर जो उपदेश दिये उनकाउद्धरण यहाँ हम आवश्यक समझते है क्यो कि वह उत्कृष्ट भावनात्मक बिम्ब का उत्तम उदाहरण है ।

सृष्टंस्त्वं वनवासाय स्वनुरक्तः सुहृज्जने ।
रामे प्रमादं मा कार्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति ।।
व्यसनी वा समृद्धो वा गतिरेष तवानघ ।
एष लोके सतां धर्मो यज्ज्येष्ठवशगो भवेत् ।।
इदं हि वृत्तमुचिंत कुलस्यास्य सनातनम् ।
दानं दीक्षा च यज्ञेषु तनुत्यागो मृधेषु हि ।।
लक्ष्मणं त्वेवमुक्त्वासौ संसिद्धं प्रियराघवम् ।
सुमित्रा गच्छ गच्छेति पुनः पुनरूवाच तम् ।।
रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम् ।। [2]

(ग) राजनैतिक बिम्ब -

राजनीति परक बिम्बों का रामायण में बहुत महत्त्व है राजनीति के प्रायः सभी अंगो का सम्यक विवेचन ' वाल्मीकीय रामायण ' में प्रसंगतः हुआ है ।

---

(1) वा0रा0/अयो0/ सर्ग 40/ 9

(2) वा0रा0/अयो0/ सर्ग40/5-9

वे अराजक यानि कि राजा विहीन राज्य को अच्छा नहीं समझते अंकुश के अभाव में उससमय मत्स्य न्याय फैल जाता है । बलबान दुर्वल को पीड़ित करने लग जाता है । इसलिए राजा का होना अनिवार्य है -

नाराजके जनपदे स्वकं भवति कस्यचित् ।
मत्स्या इव जना नित्यं भक्षयन्ति परस्परम् ।।[1]

राजा या प्रशासक के अभावमें सर्वत्र अन्धकार सा छा जाता है । अच्छाई-बुराई ,सत्-असत्, सज्जन-असज्जन का विवेक ही नष्ट हो जाता है-

अहो तम इवेदं स्यान्न प्रज्ञायेत किंचन ।
राजा चेन्न भवेत्लोके विभजन् साध्वसाधुनी।।[2]

वाल्मीकीय रामायण में राजा पृथ्वी पर दैवी विभूति के रूप में अवतरित होता है । इसलिए उसका अपमान या उपेक्षा नही की जानी चाहिए ।[3] दु:शील, कामवृन्त राजा निरकुशता को प्राप्त हुआ स्वयं का और राष्ट्र का भी नाश कर डालता है । निरंकुश दुष्ट राजा वैसे ही होता है जैसे दुष्ट पति-

त्वया नाथेन काकुत्स्थ न सनाथा वसुन्धरा ।
प्रमदा शील सम्पूर्णा पत्येव च विधर्मणा ।।[4]

इस लिए राजा की दृष्टि साम, दान, दण्ड, भेद तथा नय-अनय, निग्रह-अनुग्रह , सबके विषय मे असंकीर्ण होनी चाहिए ।[5] धर्म तथा अधर्म का और काम का सेवन जो जो राजा संतुलित ढंग से

---

(1) वा0रा0/अयो0/सर्ग/67/31

(2) वा0रा0/अयो0/सर्ग/67/36

(3) वा0रा0/कि0/सर्ग/18/41-42

(4) वा0रा0/कि0/सर्ग/17/42

(5) वा0रा0 /कि0/सर्ग 17/29,32,33

नहीं करता अर्थात् धर्म का त्याग करके केवल कामभूत हो जाता है, उसका पतन आवश्य भावी है। जैसे वृक्ष की चोटी पर कोई सोता हो तो धरती पर गिरने पर ही जागता है । और उसे उसकी गलती का भान होता है , वैसे ही धर्म ओर अर्थ का सम्यक ध्यान न देने वाले काम परायण राजा का जब पूर्ण विनाश हो जाता है तब वह जागता है -

हित्वा धर्मं तथार्थं च कामं यस्तु निषेवते ।
स वृक्षाग्रे यथा सुप्तः पतितः प्रतिबुद्धते ।। [1]

राजा को चरित्रवान होना चाहिए सत्यवादी, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ और और दयालु राजा ही प्रतिष्ठा पाता है ।किसी एक के अपराध के वशीभूत हो पूरे समूह या समाज को दण्डित नहीं करना चाहिए [2] संधि , विग्रह , यान , आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय के समीचीन प्रयोग से ही राजा की विदेश नीति सफल होती है ।[3] स्वाभिभन्क्त और ईमानदार सचिवों पर ही राजा को विश्वास करना चाहिए, अन्यथा उसका विनाश हो जाता है । .

वाल्मीकीय रामायण में राजनीतिक कल्पना का मूल आधार राजा ही है। उसे नैतिक तथा चरित्रवान होना चाहिए । उनकी दृष्टि सेराजा को शन्क्त का प्रयोग अन्तिम समय पर ही करना चाहिए

शीलेन साम्ना विनयेन सीतां
नयेनच प्राप्स्यसि चेन्नरेन्द्र ।
ततः समुत्सादय हेम पुंखै-
र्महेन्द्रवज्र प्रतिमैः शरौघैः ।। [4]

नरेन्द्र ! यदि अच्छे शीलस्वभाव, सामनीति, विनय और न्याय के अनुसार प्रयत्न करने पर भी आपको सीता का पता न मिले, तव आप सुवर्णमय पंखवाले महेन्द्र के बज्रतुल्य बाण समूहो से समस्त लोक का

---

(1) वा0रा0/कि0/सर्ग/38/21-21 1/2

(2) वा0रा0अरण्य/सर्ग/65/09

(3) वा0रा0/अरण्य/सर्ग-72/08

(4) वा0रा0/अरण्य/सर्ग/65/16

संहार कर डालें ।

सारांश यह कि वाल्मीकि एक तंत्र शासन के पक्षधर है । यद्यपि प्राचेतस का यह महाकाव्य कौटुम्बिक महाकाव्य है जिसमें नर वानर एवं राक्षस तीन कुलों का कथानक समुपनिबद्ध है । फिर भी संयोग से यह तीनों राजकुल के हैं । अतएव राजनीतिक गति विधियों का समाहार आदि काव्य में हो जाना स्वाभाविक है । यद्यपि राजनीति निष्णातों के अनुसार जिस राजनीति को परिभाषित किया गया है जैसा कि भर्तृहरि ने कहा है ।

सत्यानृता च परूषा प्रिय वादिनी च
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या ।
नित्यव्यया प्रचुर नित्य धनागमा च,
वाराङ्गनेव नृप नीतिरनेक रूपा ।।[1]

ऐसी अनेक रूपा राजनीति रामायण मे नहीं मिलेगी । वह महाभारत मे पदे पदे समुप्लब्ध है फिर भी यह निर्विवाद हैं कि शास्त्र पारदृश्वा महर्षि के लिए राजनीति के कोई भी तत्व अगम्य नही थे । रामायणगत राम-भरत-संवाद में इसकी झाँकी देखी जा सकती है । राम पुनः भरत से प्रश्न करते है ।

कच्चिदष्टादशान्येषु स्वपक्षे दश पंच च ।
त्रिभिस्त्रिभिरविज्ञातैर्वेत्सि तीर्थानि चारकैः ।।[2]

अर्थात क्या तुम शत्रुपक्ष के अठारह और अपने पक्ष के पन्द्रह तीर्थो की तीन तीन अज्ञात गुप्तचरों द्वारा देखभाल या जॉच पड़ताल करते रहते हो ।

इससे आदि कवि के सम्बन्ध में हमारे कथन की सुतराम् पुष्टि होती है इतना ही नहीं इस सन्दर्भ में श्री राम ने राज्य शासन के सम्बन्ध मे जो जो जिज्ञासाएँ प्रकट की है उससे उनका राजनीति

---

(1) भर्तृहरि नीति शतक- 47

(2) वा0वा0 / अयो0/सर्ग/100/36

में जो जो जिज्ञासाएं प्रकट की है उससे उनका राजनीति नैपुण्य प्रकट होता है । इस वार्तालाप के दौरान वह यह भी प्रश्न करते हैं कि हे भरत आप अपने कर्मचारियों का वेतन तथा भत्ता निर्दिष्ट समय में दे देते हैं या नहीं उसमें बिलम्ब तो नहीं करते । प्रकट है कि राज्य शासन में ऐसी छोटी मोटी भूलें भी दारूण परिणाम घटित कर देती हैं । यह लक्ष्य करने की बात है कि राजनीतिक क्रिया कलापों में उनकी कैसी सूक्ष्मेक्षिका है ।[1]

यहाँ पर कुछ राजनैतिक बिम्ब अंकित किए जा रहे हैं।

सीता हरण के पश्चात् राम किष्किन्धा पहुचते हैं। उस समय किष्किन्धा में वानरराज वालि का राज्य था । उसने अपने अनुज को उत्पीड़ित कर उसकी पत्नी रूमा का अपहरण कर लिया था , सुग्रीव-सचिव हनुमान के प्रयत्न से सुग्रीव और राम की मैत्री स्थापित हो जाती है । यद्यपि यह संधि राजनीति मूलक थी किन्तु सुग्रीव को साहाय्य दान तथा वालि वध दोनों को कवि ने राम के द्वारा करणीय कर्तव्य के रूप में निर्देशित किया है । आहत वालि राम के निंद्य कर्म की भर्त्सना करता है । किन्तु वाल्मीकि राम के द्वारा जो तर्क प्रस्तुत करते हैं, उससे मुमूर्षु वालि संतुष्ट हो जाता है । यह वाल्मीकि का रामायण में राजनीतिक नैपुण्य नही तो और क्या है? बालि को राम द्वारा दिये गये उत्तर से सम्बद्ध कतिपय श्लोक यहाँ प्रस्तुत है ।

इच्छाकूणामियं भूमिः सशैलवन कानना ।
मृगपक्षिमनुष्याणां निग्रहानुग्रहेष्वपि ।।
तां पालयति धर्मात्मा भरतः सत्यवानृजुः ।
धर्मकामार्थतत्त्वज्ञो निग्रहानुग्रहे रतः ।।
नयश्च विनयश्चोभौ यस्मिन सत्यं च सुस्थितम् ।
विक्रमश्च यथा दृष्टः स राजा देशकालवित् ।।
तस्य धर्मकृतादेशा वयमन्ये च पार्थिवाः ।
चरामो वसुधां कृत्स्नां धर्मसंतानमिच्छवः ।।
तस्मिन् नृपशार्दूले भरते धर्मवत्सले ।

---

(1) कच्चिद बलस्यं भक्तं च वेतनं च यथोचितम् ।
सम्प्राप्तकांल दातव्यं ददासि न विलम्बसे ।। वा0रा0/अयो0/सर्ग-100/32

पालयत्यखिलां पृथ्वीं कश्चरेद् धर्मविप्रियम् ।
ते वयं मार्गविभ्रष्टंस्वधर्मे परमे स्थिताः।
भरताज्ञां पुरस्कृत्य निगृह्णीमो यथा विधि ।।
त्वं तु संक्लिष्ट धर्मश्च कर्मण च विगर्हितः।
कामतंत्र प्रधानश्च न स्थितो राजवर्त्मनि ।।
जेष्ठो भ्राता पिता वापि यश्च विद्यां प्रयच्छति ।
त्रयस्ते पितरोज्ञेया धर्मे च पथि वर्तिनः ।।

यवीयानात्मनः पुत्रः शिष्यश्चापि गुणोदितः ।
पुत्रवन्ते त्रयश्चिन्त्या धर्मश्चैवात्र कारणम् ।।
सूक्ष्मः परमदुर्ज्ञेयः सतां धर्मः प्लवङ्गम ।
हृदिस्थः सर्वभूतानामात्मा वेद शुभाशुभम् ।।
चपलश्चपलैः सार्धं वानरैरकृतात्मभिः ।
जात्यन्धइव जात्यन्धैर्मन्त्रयन् प्रेक्षसे नु किम् ।।
अहं तु व्यन्क्तामस्य वचनस्य ब्रवीमि ते ।
नहि मां केवलं रोषात् त्वं विगर्हितुमर्हसि ।।
तदेतत् कारणं पश्य यदर्थे त्वं मया हतः
भ्रातुर्वर्तसि भार्यायांत्यक्त्वा धर्मं सनातनम् ।।[1]

उपर्यु-क्त राम के प्रति उत्तर में सुस्पष्ट राजनीतिक अभिसंधि बिम्बित है । वालिने राम के प्रति यह आक्षेप किया था कि आपने मुझे छिप कर मारा है किंच्चित हम लोग वानर है यह हमारी प्रकृति है आप मानव जाति के हैं आप लोगों के नियम कानून हमारे ऊपर कैसे लागू हो सकते है । निश्चित है वालि के आक्षेप बचनों का राम के उत्तर में कोई यथार्थ समाधान नहीं है । राजनैतिक बिम्ब दृष्टव्य है ।

राम के द्वारा लंका पर चढ़ाई कर देने के पश्चात् विभीषण रावण को उसके कर्तव्य-वोध का निर्देश करते है किन्तु दशग्रीव विभीषण की बात न मानकर उसको अपमानित करता है । विभीषण की शत्रुपक्ष समर्थन रूप इस कूटनीतिक अभिसंधि से इन्द्रजित् मेघनाद क्षोभित हो जाता है और

---

(1) वा0रा0- किष्कि0/सर्ग 18/6-18

विभीषण को भर्त्सित करता है । उसका आक्षेप तेजोदर्प मण्डित है । उसके आक्षेप का सारांश यह है कि कुछ भी हो आपको अपना पक्ष छोड़कर शत्रु पक्ष में नहीं मिलना चाहिए लंका में आप ही ऐसे व्यक्ति है जो कायर तथा भीरू है । इसके प्रत्युत्तर में विभीषण ने जो समाधान प्रस्तुत किया है उसके लिए आदि कवि को बड़ी सूझ बूझ से काम लेना पड़ा ।

विभीषण के ऐसे उत्तर से रावण ने जो कठोर बचन कहे वह एक राक्षस की उक्ति कह कर टाली नहीं जा सकती रावण ने कहा -

वसेत सह सपत्नेन क्रुद्धेनाशीविषेण च ।
न तु मित्र प्रवादेन संवसेच्छत्रु से विना ।।[1]

भाई (शत्रु और कुपित विषधर सर्प के साथ रहना पड़े तो रह ले, परन्तु जो मित्र कहलाकर भी शत्रु की सेवा कर रहा हो, उसके साथ कदापि न रहे) ।

इस परिदृश्य में विभीषण का पक्ष उचित ही कहा जा सकता है । यह भी यथार्थ है कि रावण विभीषण के अन्तः कलह से जो राजनीतिक लाभ श्री राम के पक्ष को मिला उसका उपसंहार राम की विजय में होता है । किन्तु वाल्मीकि के द्वारा रावण की इन उक्तियों का मूल्य किसी भी प्रकार घट नहीं सका इन उक्तियों से जो राजनैतिक बिम्ब उभरकर पाठक या श्रोता के हृदय को अभिभूत करता है रावण बधोपरान्त अयोध्या में राम भरत मिलाप के अवसर पर सुग्रीव और विभीषण दोनो ने बुझे मन से इसकी अनुभूति की थी । जिसका उल्लेख तुलसीदास जी ने एक जगह किया है ।[2]

रावण द्वारा विभीषण के विरोध में कथित अनुष्टुप् निम्नलिखित है ।

यथा पुष्करपत्रेषु पतितास्तोयबिन्दवः ।
न श्लेषमभिगच्छन्ति तथानार्येषु सौहृदम् ।।
यथा शरदि मेघानां सिंचतामपि गर्जताम् ।
न भवत्यम्बुसंक्लेदस्तथानार्येषु सौहृदम् ।।
यथा मधुकरस्तर्षाद् रसं विन्दन्न तिष्ठते ।
तथा त्वमपि तत्रैव तथानार्येषु सौहृदम् ।

---

(1) वा०रा०- युद्ध/सर्ग 16/2

(2) सधन चोर मग मुदितमन धनी गही ज्यों फेट ।
त्यों सुग्रीव विभीषणहि भई भरत की भेंट ।। (तुलसी दोहावली -207)

यथा मधुकरस्तर्षात् काशपुष्पं पिबन्नपि ।
रसमत्र न विन्देत तथानार्येषु सौहृदम् ।।
यथा पूर्वं गतः स्नात्वा गृह्य हस्तेन वै रजः ।
दूषयत्यात्मनो देहं तथानार्येषु सौहृदम् ।।[1]

उपरिलिखित पद्यों में जो चित्र उभरता है । पाठक या श्रोता के हृदय में उसका साधारणीकरण हुए बिना नही रहता ।

घ- धार्मिक बिम्ब-

रामायण में शुद्ध सात्विक आचरण परक नितान्त नैतिकता पर आश्रित धर्म का व्यापक रूप मिलता है । यज्ञादि अनुष्ठान उसका साम्प्रदायिक रूप भी । अन्याय का मार्ग अपनाना सबसे बड़ा अधर्म है । इससे वाहय वैभव भले ही दिखे, पर वह अस्थायी होता है । अनीति पर चलने वाले का विनाश अवश्यम्भावी है यही रामायण की दृष्टि है । तभी तो माल्यावन् ने रावण से कहा कि " धर्म और अधर्म दो रास्ते हैं । सतयुग धर्माधिक्य का और कलियुग अधर्माधिक्य का नाम है । तुमने अधर्म को गले लगाया । अनीति के आचरण पर चल कर आंतक तथा भय से दिग्विजय की और महान धर्म का नाश किया । यही कारण है कि तुम्हारे प्रमाद से बड़ा हुआ" अधर्म - अहि "[2]. अब निगल जाना चाहता है विषयासक्त तुमने मन माना आचरण करके सम्मानित तेजस्वी ऋषियों मुनियों को उद्विग्न किया है । वे निरन्तर धर्म की साधना में रत रहते हैं । अतः उनका तेज दुर्धर्ष होता है वे द्विजगण यज्ञों द्वारा विधिवत् यज्ञ में आहुति देते हैं और उच्च स्वर से वेदों का पाठ करते है । उनके वेद मंत्रों की ध्वनि से ग्रीष्म ऋतु में मेघ पटल की भांति राक्षसगण सभी दिशाओं में व्याप्त होकर भी अपने को नष्ट कर रहे हैं। उनके भयानक विनाशकारी उत्पातों के लक्षण दिखाई पड़ने लगे है । [3] रामायण के चिन्तन से यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्म से अधर्म का पराभव होता है, समस्त प्रकृति भी धर्म के साथ होती हैं। क्योंकि अधर्म की अपनी कोई सत्ता नहीं जबकि धर्म ही समस्त स्थावर जंगम जगत को धारण करता है- धारणाद् धर्मः ।

---

(1) वा०रा० - युद्ध /सर्ग-16/11-15

(2) वा०रा०- युद्ध सर्ग- 35/16

(3) वा०रा०- युद्ध/सर्ग-35 /12-22

यज्ञ अनुष्ठान धर्माचरण का एक वाह्य लक्षण है, जिसको रामायण में आवश्यक माना गया है ऐसे अग्निहोत्र , यज्ञ याग परक बिम्बों की रामायण में प्रचुरता है । यज्ञीय समस्त क्रिया कलापों तथा नियमों का संकेत महर्षि वाल्मीकि ने ऐसे धार्मिक बिम्बो के माध्यम से यत्र तत्र दिया है कौशल्या ने आक्रोश में वात्सलयाभिभूत हो महाराज दशरथ से कहा जब राम पन्द्रहवे वर्ष में लौटेगें तो भरतभुक्त राज्य न भोगेंगे वे नर व्याघ्र हैं , परहृत से परहेज करेंगे । हविष्य पुरोडाश आदि यज्ञीय उपकरण उपकरणों का उच्छिष्ट प्रयोग नहीं होता है--

न परेणाहृतं भक्ष्यं व्याघ्रः खादितुमिच्छति ।
एवमेव नरव्याघ्रः परलीढं न मंस्यते ।।
हविराज्यं पुरोडाशः कुशा यूपाश्च खादिराः
नैतानि यातयामानि कुर्वन्ति पुनरध्वरे ।।
तथा ह्यात्तमिदं राज्यं हृतसारां सुरामिव ।
नाभिमन्तुमलं रामो नष्टसोममिवाध्वरम् ।। [1]

भरत ने कहा कि वन में ही राम का अभिषेक करके वहाँ से उनको वैसे वापस लाऊँगा जैसे यज्ञ से अग्नि हो ।

तत्रैव तं नरव्याघ्रमभिषिच्य पुरस्कृतम्।
आनयिष्यामि वै रामं हव्यवाहमिवाध्वरात् ।।[2]

तारा के विलाप करते समय यज्ञ रूपक में अवभृथ स्नान की बात आयी -

इष्टा संग्राम यज्ञेन रामप्रहरणाम्भसा ।
तस्मिन्नवभृथे स्नातः कथं पत्न्या मया बिना।।[3]

चित्रकूट से लौटने पर सूनी अयोध्या भरत को वैसी ही लगी जैसे हवनीय दुग्ध से सिंचित

---

(1) वा0रा0-अयो0/सर्ग 61/16-18
(2) वा0रा0 -अयो0/सर्ग/79/11
(3) वा0रा0 - किष्कि0/सर्ग-23 /27

बुझी ज्वाला वाली अग्नि " और यज्ञ समाप्ति पर यज्ञीप उपकरणों से शून्य और मंत्रोच्चार की ध्वनि से रहित वेदी ।[1]

' यज्ञीय वेदी की पवित्रता '[2] और सभी प्रकार की यज्ञीय अग्नियों' [3] का उल्लेख बिम्बात्मक ढंग से हुआ है । रावण के आंख के इशारे मात्र से कुमार अक्ष, हनुमान के साथ युद्ध करने के लिऐ वैसे ही उत्साहित हो खड़ा हो गया , जैसे यज्ञ शाला मे ब्राह्मणों द्वारा हविष्य की आहुंतियाँ देने पर अग्निदेव प्रज्जवलित हो उठते है-

स तस्य दृष्ट्यर्पणसम्प्रचोदितः ।
प्रतापवान् कांचनचित्रकामुर्कः ।
समुत्पपाताथ सदष्युदीरितो
द्विजाति मुख्यैर्हविषेव पावकः ।।[4]

महषि प्राचेतस ने राम को धर्म का साक्षात् रूप कहा है- " रामोबिग्रह्वान धर्मः" रामायण के आरम्भ में ही उन्होने जैसे " धर्मएवहतो हन्ति धर्मा रक्षति रक्षितः " इस आदर्श को अवगत कर लिया था । तभी तो वह रामायण के आदि सर्ग जो मूल रामायण के नाम से प्रख्यात है, उसमें धर्म का अनेक बार उल्लेख किया । दूसरे ही अनुष्टुप में वह ' धर्मज्ञश्च [5] का प्रयोग करते है । आगे चलकर वह राम को धर्मस्य परिरक्षिता[6] फिर ' रक्षिता स्वस्य धर्मस्य' [7] कहते है । वह सत्य में श्री राम को द्वितीय धर्म राज ही मानते हैं । ' सत्ये धर्म इवापरः'[8] राजा दशरथ को वह ' धर्म पाशेन संयतः[9] बतलाते है ।

---

(1) वा0रा0-अयो0/सर्ग/110/5
(2) -वही- वेदीमिवापरामृष्टाम् सु0/सर्ग/19/14
(3) -वही- अयो0/सर्ग-104/32
(4) -वही- सु0/सर्ग 47/02
(5) -वही- बाल0/सर्ग/1/2
(6) -वही- बाल/सर्ग/1/13
(7) -वही- बाल/सर्ग/1/14
(8) -वही- बाल/सर्ग/1/19
(9) -वही- बाल/सर्ग-1 /23

वनवास के समय श्रृंगवेरपुर में निषाद राज के पास पहुँचने पर वह राम को धर्मात्मा पद से सम्बोधित करते हैं । भरत अपने अग्रज राम से मिलने पर कहते हैं। ' त्वमेव राजा धर्मज्ञ'[1] । वाल्मीकि शबरी के लिए धर्मचारिणी या धर्म निपुणा विशेषण सर्वोत्कृष्ट समझते है । ' शबरी धर्मचारिणीम्'[2] ,श्रमणां धर्म निपुणाम्[3]

राम के राज्य में वाल्मीकि ने प्रत्येक व्यक्ति को सुधार्मिक होने की कामना की है । ' लोकस्तुष्टः सुधार्मिकः'[4]

अन्त में उन्होने संसार में चारो वर्णो का राम को नियोजक कहा हैं।

'चातुर्वर्ण्यं च लोकेऽस्मिन् स्वे स्वे धर्मे नियोक्ष्यति ।'[5]

सारांश यह है कि वाल्मीकि अपने काव्य में धर्म को सर्वाधिक महत्व देते है । उनका यह धर्म चातुर्य वर्ण व्यवस्था मूलक है । जिसको वह सनातन मानते हैं । रामायण में इस व्यवस्था की मान्यता का निर्वाह बड़े ही मनोयोग के साथ किया गया है । यहाँ तक कि वाल्मीकि ने अभिशप्ता परित्यक्ता ब्राह्मणी अहल्या तक को तपस्या परिपूत मानकर अभिवादन किया है ।

' राघवौ तु तदा तस्याः पादौ जगृहतुर्मुदा ।[6]

संस्कृत साहित्य में तीन बहुत बड़े नाम है वाल्मीकि व्यास और कालिदास तीनों का लक्ष्य एक है । और मार्ग भी एक जैसा है । लक्ष्य है- मानव को तमस से प्रकाश की ओर उन्नयन जिसको दूसरे शब्दों में मानवीयता का विकास कह सकते है । वाल्मीकि ने मानवीयता के विकास के साधन को चारित्र्य कहा व्यास ने धर्म और कालिदास ने शील । वाल्मीकि ऐसे महा मानव की तलाश में हैं जो चारित्र्य सम्पन्न हो ।

' चारित्रेण च को युक्तः '[7] इसी का व्याख्यान रामायण है । व्यास उन्मुक्त कण्ठ से उद्घोषित करते है-

' धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किन्नसेव्यते ?[8]

---

(1) वा0रा0 बाल/सर्ग-1/36

(2) -वही- बाल/सर्ग-1/56

(3) -वही- बाल/सर्ग-1/57

(4) -वही- बाल/सर्ग-1/90

(5) -वही- बाल/सर्ग-1/96

(6) -वही- बाल/सर्ग-49/16 1/2

(7) -वही- वाल/सर्ग-1 /3/

(8) कल्याण साधना अंक वर्ष अगस्त 1940 अंक 01

कालिदास तो एतदर्थ शकुन्तला की सृष्टि करते हैं । जिसके विशेषण में शुद्धशीला का प्रयोग करते है।[1]

वाल्मीकि ने राम के जिस कथानक को अपना वर्ण विषय बनाया है वह काल यज्ञ प्रधान वैदिक धर्म के वातावरण का था स्वयं राम और उनके तीनों भाइयों को जन्म पुत्रेष्टि यज्ञ का परिणाम बताया गया है । किन्तु राम ने सम्प्रदायगत धर्म में एक क्रान्ति की जिसको वाल्मीकि ने प्रति हस्ताक्षरित किया है । तभी तो वह वैदिक देवी देवताओं से हट कर एक महा मानव के चरित्रांकन में संलग्न हो जाते है । यह बात दूसरी हैकि चारित्र्य गुण सम्पन्न राम जगत में भगवान के रूप में मान्यता प्राप्त करते हैं ।

राम अमूर्त इन्द्र, मरूत , वरूण आदि देवताओं की अपेक्षा धरती में चलते फिरते देवताओं को अधिक महत्व देते है । रामका यह कथन लक्ष्य करने योग्य है जो उन्होने पिता माता और गुरूजनों की सेवा का महन्त्व बताते हुए कहा है -

अस्वाधीनं कथं दैवं प्रकारैरभिराध्यते ।
स्वाधीनं समतिक्रम्य मातरं पितरं गुरूम् ।।
यत्र त्रयं त्रयो लोकाः पवित्रं तत्समं भुवि ।
नान्यदस्ति शुभापांङ्गे तनेदमभिराध्यते ।।
न सत्यं दानमानौ वा यज्ञे वाप्याप्त दक्षिणाः ।
तथा बलकराः सीते यथा सेवा पितुर्मता ।।
स्वर्गो धनंवा धान्यं वा विद्या पुत्राः सुखानिच ।
गुरू वृ-त्यनुरोधेन न किंचिदपि दुर्लभम् ।।
देवगन्धर्वगोलेकान् ब्रह्मलोकांस्तथा परान् ।
प्राप्नुवन्ति महात्मानो मातृपितृपरायणाः
समा पिता यथा शास्तिसत्यधर्मपथे स्थितः ।
तथा वर्तितुमिच्छामि स हि धर्मःसनातनः ।।[2]

इन अनुष्टुपोंमें जो धार्मिक चित्र रूपायित है वह मननीय है। ऐसा हीएक स्थल और है जिसमें राम पिता की आज्ञा मानकर वनवास करने को प्रतिश्रुत होते हैं ।

---

(1) वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः ।
अतिनिष्करूणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति ।। अभिज्ञान शाकुन्तल / अंक /2।

(2) वा0रा0-अयो0/सर्ग-30/33-38

नाहमर्थपरो देवि लोकमावस्तुमुत्सहे ।
विद्धि मामृषिभिस्तुल्यं विमलं धर्ममास्थितम्
यत् तत्रभवतः किंचिच्छक्यं कर्तु प्रियंमया ।
प्राणानपि परित्यज्यसर्वथा कृतमेव तत्।।
न ह्यतो धर्मचरणं किंचिदस्ति महन्तरम् ।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया ।।
अनुन्तकोऽप्यत्रभवता भवत्या वचनादहम् ।
वनेवत्स्यामि विजने वर्षाणीहचतुर्दशं।। [1]

वाल्मीकि पूजा पाठ यज्ञ हवन आदि की अपेक्षा आचरणीय कर्तव्य कर्म को अधिक महत्व देते है । इस विचार सरणि का पोषक एक दृश्य युद्ध काण्ड में अतिरमणीय तथा हृद्य है जो यहाँ प्रस्तुत है।

रावण बध के पश्चात् श्री हनुमान जनक सुता सीता के पास पहुँचते है । हनुमान जानकी से निवेदन करते है कि वह उन क्रूर राक्षसियो के वध की आज्ञा दे जिन्होने अभी तक उनको मर्यान्तक पीडा दी है । किन्तु श्री सीता क्रुद्ध मारूति के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करतीं । प्रत्युतउन्तर में हनुमान से कहती है ।

राजसंश्रयवश्यानां कुर्वतीनां पराज्ञया ।।
विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद्वानरोन्तम ।
भाग्यवैषम्यदोषेण पुरस्तादुष्कृतेन च
मयैतत् प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्यपभुज्यते ।
मैवं वद महाबाहो दैवी ह्येषा परा गतिः ।।
प्राप्तव्यं तु दशायोगान्मयैतदिति निश्चितम्
दासीनां रावणस्याहं मर्षयामीह दुर्बला ।।
आज्ञाप्ता राक्षसेनेह राक्षस्यस्तर्जयन्ति माम् ।
हते तस्मिन् न कुर्वन्ति तर्जनं मारूतात्मज ।।

---

[1] वा0रा0- अयो0/सर्ग 19/ 20-23

अयं व्याघ्रसमीपे तु पुराणो धर्मसंहितः ।

ऋक्षेण गीतः श्लोकोऽस्ति तंनिबोध प्लवंगम् ।।[1]

न परः पापमादन्ते परेषां पापकर्मणाम् ।

समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः

पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामयथापि वा ।

कार्यं कारूण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ।।

लोकहिंसाबिहाराणां क्रूराणां पापकर्मणाम् ।

कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम् ।।[2]

धर्म का यह निरवध स्वरूप आदि कवि की लेखनी से ही अंकित हो सकता था ।यह निश्चित है कि वाल्मीकीय रामायण बाइबिल से बहुत पुरानी है ।

---

(1) रामायण की भूषण टीका में ऋक्ष व्याघ्र सम्वाद का विवरण उपलब्ध है । भगवान श्री राम ने लंका पर विजय प्राप्त की रावण मारा गया हनुमान जानकी को लेने गये उस समय क्रूरकर्मा राक्षसियो के वध की आज्ञा माँगी श्री जानकी ने हनुमान को ऋक्ष व्याघ्र सम्वाद सुनाते हुए कहा एक मनुष्य कहीं वन में भटक गया था । बाघ ने उसे खदेड़ा प्राण बचाने के लिए वह जिस वृक्ष पर चढ़ा उस पर एक रीछ पहले से बैठाथा रीक्ष ने उस मनुष्य को शरण में ले लिया रात्रि का समय था बाघ पेड़ के नीचे बैठ गया ।रीछ ने मनुष्य से कहा हम दोनों बारी बारी से जागें इससे नींद में कोई नीचे नहीं गिरेगा और दोनों को सारी रात जागना नहीं पड़ेगा । मनुष्य नें रीछ की बात मान ली वह रीछ की गोद मे सिर रख कर सो गया तब बाघ ने रीछ से कहा यह बहुत ही अविश्वसनीय प्राणी है तुम्हे धोखा देगा इसे नीचेढकेल दो तो में इससे अपनी भूख मिटा कर चला जाऊ । रीछ ने कहा शरणागत के साथ कभी विश्वासघात न करूँगा । आधी रात के बाद रीछ ने मनुष्य को जगा दिया और स्वयं उसकी गोद में सिर रखकर सो गया । अव बाघ ने मनुष्य से कहा अभी तो यह मेरे भय से तुमसे मित्रता किये है । मेरे चले जाने पर तुम्हें खा जायेगा ।

मनुष्य ने रीछ को ढकेल दिया किन्तु रीछ डाल पकड़कर बच गया बाघ ने रीछ से कहा देख लिया न कैसा प्राणी है ? अब तो इसे नीचे गिरा दो रीछ ने उत्तर दिया संसार में ऐसा कोई प्राणी नहीं जिसमें कोई न कोई दुर्बलता न हो । इस लिए उसने बाघ के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया । वा0रा0- युद्ध/सर्ग ।।3/43

(2) वा0रा0-युद्ध/सर्ग ।।3/38-46

रामायण की यह उन्क्ति न कश्चिन्ननापराध्यति ' [1] अर्थात संसार मेंऐसा कोई नहीं जिससे अपराध न हुआ हो । बाइबिल के इस प्रसिद्ध वचन से मिलती है । दुनियाँ में में कौन अपराधी (पापी) नहीं है? अपराधी को पहला पत्थर वह मारे जिससे कभी कोई अपराधही न हुआ हो । [2]

तात्पर्य यह है कि वाल्मीकि ने यत्र तत्र परम्परा प्राप्त धर्मानुमोदित यज्ञिय कर्म आदि के बिम्ब प्रस्तुत किये हैं किन्तु उनका लक्ष्यचारित्र्य मूलक धर्म की ओर ही रहा है । जैसा कि ऊपर सीता मारूति संवाद के प्रकरण में बिम्बित है ।

सांस्कृतिक बिम्ब-

संस्कृति शब्द बहुत प्राचीन नहीं है । इसकी अपेक्षा धर्म शब्द अधिक व्यापक रहा है किन्तु आधुनिक परिप्रेक्ष्य में संस्कृति शब्द अधिक प्रचलित है। जो प्राचीन शब्द संस्कार और संस्क्रिया की अपेक्षा अधिक व्यापक बन चुका है।

संस्कृति शब्द का निर्माणं सम्+कृ+क्तिन्से सम्पन्न हुआ है । संस्कार जन्या संस्कृति अर्थात् जिसमें संस्कारों का योग होउसे संस्कृति कहा जाता है ।

" डा0 सम्पूर्णानन्द के शब्दों में "संस्कृति उसे कहते हैं जिससे कोई समुदाय विशेष जीवन की विविध समस्याओं पर दृष्टिपात करता है' ।

काका कालेलकर के शब्दो में- ' संस्कृति उसे कहते हैं जिसे हजारो लाखो वर्षो के पुरूषार्थ से मनुष्य ने अर्जित किया" । अर्थात् विभिन्न युगों में अर्जित सम्पत्ति है । "

श्री राज गोपालाचार्य किसी भी जाति अथवा राष्ट्र के पुरूषों में विचार वाणी एवं क्रिया का जो रूप व्याप्तरहता है। उसी को संस्कृति कहते हैं । "

डा0 के0एम0 मुंशी ने संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहा है कि संस्कृति जीवन की उन अवस्थाओं का नाम है जो मनुष्य के अन्दर व्यवहार ज्ञान और विवेक पैदा करती है । वस्तुत संस्क्रियते अनयासा संस्कृतिः इस व्युत्पन्ति के आधार पर जिस जीवन पद्धति से आत्मा सुसंस्कृत होकर पूर्ण विकसित हो और उसके अन्तस् से राग-द्वेष ,मोह-मत्सर आदि विकार निर्मूल होकर सम्पूर्ण गुण

---

(1) वा0रा0 युद्ध/सर्ग/113/45

(2) ' तुममें जो निष्पाप हो,वही सवसे पहले उसे । पापी को पत्थर मारे ।

(पवित्र बाइबिल यहुन्ना 8/7 पेज- 15)

सम्पन्न एव प्रकाश मय हो वह संस्कृति है ।[1] ”

प्रत्येक देश की अपनी अपनी संस्कृति होती है हमारी भारतीय संस्कृति प्राचीनतम संस्कृतियों में गण्य है । भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ निम्नांकित हैं ।

(1) अध्यात्म भावना

(2) आस्तिकता के प्रति विश्वास

(3) धर्म परायणता

(4) अवतारवाद

(5) यज्ञ

(6) यम नियमों का पालन

(7) कर्मफल एवं पुर्नजन्म

(8) महानपुरूषों के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति

(9) चार पुरूषार्थ

(10) संस्कार

(11) वर्णाश्रम व्यवस्था

(12) विश्व बन्धुत्व की भावना

(13) समन्वय की भावना

इन सन्दर्भो में हमें यह देखना है कि रामायण में भारतीय संस्कृति में ओतप्रोत चेतना का क्या स्रोत है । इसको व्याख्यापित करने के लिए अधिक आवश्यकता प्रतीत नहीं होती क्योकि सारा का सारा रामायण आदि काव्य ऐसी सांस्कृतिक चेतना से ओतप्रोत है । जिसके पृष्ठानुपृष्ठ में सांस्कृतिक चेतना अभिव्यंजित हो । जिसका कथानक ही सांस्कृतिक चेतना के उन्नयन का उत्स हो । जिसके प्रत्येक पात्र सांस्कृतिक अभ्युत्थान के पक्षधर हों उस महाकाव्य में सांस्कृतिक चेतना पदे पदे विद्यमान हों तो आश्चर्य क्या ?

निश्चय ही अद्यतन भारतीय संस्कृति रामायणी संस्कृति का अपर पयार्य कही जा सकती है । भले ही यथार्थ जीवन मे वह समाहित नहीं हो पाई हो तथापि भारतीय जनजीवन रामाणी संस्कृति को ही अपना आदर्श स्वीकारता है। सच तो यह है कि भारतीय संस्कृति ही विश्व की अन्य संस्कृतियों का मूल

---

(1) प्रा0भा0सं0 — पृष्ठ-2

आधार है । इसीलिए विश्व की आखें इसकी ओर लालायित रहती हैं। मनु का यह कथन इसका साक्षी है।

एतद् देश प्रसूतस्य सकाशा दग्र जन्मनः।
स्वं स्वं प्रसूतिं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ।।[1]

भारतीय संस्कृति विश्व में अद्वितीय है, रामायण के पात्रों से यह परिज्ञात होता है- उदाहरणार्थ रामायण के एक विशिष्ट पात्र भरत के ही चरित्र को देखिए जो माता पिता के द्वारा प्रदत्त राज्य को इस लिए ठुकरा देता है कि उसका वह प्राप्य नही है ।

प्रसिद्ध रामायण मर्मज्ञ श्री राजबहादुर लमगोडा भरत और हेमलेट के चरित्र की तुलनात्मक समीक्षा करते हुए लिखते हैं कि केवल पूर्ण पूर्व ही ऐसे आदर्श पुरूष का निर्माण कर सकता है , जो राज्य और सम्पत्ति से बंचित होने पर दुखी होने की अपेक्षा इस बात पर दुखी हो कि उसे बिना अधिकार के राज्य और सम्पत्ति मिल रही है । [2]

सचमुच ही ऐसे संस्कृति चेतना सम्पन्न महापुरूषों की जहाँ एक श्रृंखला हो जिनकी संख्या अपरमित हो वहाँ दूसरे देशों में ऐसे नाम खोजने पर भी न मिलेंगे ।

यद्यपि भारतीय सांस्कृतिक चेतना का आयाम बहुत विस्तृत है । जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं । और जिनके उदाहरण रामायण में भरपूर है किन्तु विस्तार भय से उन सब की चर्चा यहाँ नहीं की जा रहीहै । इस संदर्भ में कतिपय उदाहरण ही पर्याप्त होंगे ।

एक बार आर्य समाज के प्रवर्तक हुतात्मा स्वामी दयानन्द ने कहा था कि इस देश में जब तक एक भी नारी जीवित रहेगी भारतीय संस्कृति विनष्ट नहीं होगी यद्यपि यह बात उन्होने नारी प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में कही थी किन्तु वाल्मीकि ने भी नारी के एतादृश व्यक्तित्व को पहले ही पहचान लिया था आर्य ललनाओं की तो बात ही क्या उन्होने राक्षस आदि की अंगनाओं में भी इसकी परख की थी एक ओर वाल्मीकि लंका के नागरिक राक्षसों को अत्यद्भुत 'रौद्र वृत्त[3] बतलाते हैं वहीं उनकी स्त्रियों में सुवृत्त

---

(1) मनुष्मृति - अध्याय 2/श्लोक-20
(2) विश्व साहित्य में रामचरित्र मानस पृष्ठ 54
(3) तन्त्री स्वराः कर्णसुखाः प्रवृत्ताः
स्वपन्ति नार्यः पतिभिः सुवृत्ताः ।
नक्तंचराश्चापि तथा प्रवृत्ता,
विहर्तुमत्यद्भुतरौद्रवृत्ताः वा0रा0-सु0 /सर्ग 5/9

देखते हैं । यह बात दूसरी है कि उनके बीच शूर्पणखा जैसी स्वैरिणी मिल जायेंगी किन्तु वह अपवाद मात्र हैं ।

संस्कृतिक चेतना सम्पन्न व्यक्तित्व का सबसे बड़ा उदाहरण है रामचन्द्र जिनके गुणों का वर्णन करते हुए आदि कवि अघाते नहीं है ।

एक पद्य इस सन्दर्भ में देखें-

महाराज दशरथ श्री राम को युवराज पद देना चाहते हैं । श्रीराम को इस पद के योग्य समझ कर ही ऐसा प्रस्ताव करते हैं। वाल्मीकि ने राम के जिन गुणों का यहाँ अंकन किया है - वे भारतीय सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक है । यहाँ हम जानबूझ कर राम के वर्णित गुणों का अंकन इस लिए कर रहे हैं जिससे यह स्पष्ट हो सके कि राम में जैसे समग्र सांस्कृतिक तन्त्व समाहित है ।

दिव्यैर्गुणैः शक्रसमो रामःसत्यपराक्रमः ।
इक्ष्वाकुभ्योऽपि सर्वेभ्यो ह्यतिरिक्तो विशाम्पते ।।
रामः सत्पुरूषो लोके सत्यः सत्यपरायणः ।
साक्षाद् रामाद् विनिर्वृन्तो धर्मश्चापि श्रिया सह ।।
प्रज्ञासुखत्वे चन्द्रस्य वसुधायाः क्षमागुणैः ।
युद्ध्या वृहस्पतेस्तुल्यो वीर्ये साक्षाच्छचीपतेः
धर्मज्ञः सत्यसंधश्च् शीलवाननसूयक ।
क्षान्तः सान्त्वयिता श्लक्ष्ण कृतज्ञो विजितेन्द्रियः।।
मृदुश्च स्थिरचिन्तश्च सदा भव्योऽनसूयकः ।
प्रियवादीच भूतानांसत्यवादीच राघवः।।
बहुश्रुतानां वृद्धानां ब्राह्मणानामुपासिता ।
तेनास्येहातुला कीर्तिर्यशस्तेजश्च वर्धते ।।
देवासुर मनुष्याणां सर्वास्त्रेषु विशारदः।
सम्यग् विद्याव्रतस्नातो यथावत् सांगवेदवित् ।।
गान्धर्वे च भुवि श्रेष्ठो बभूव भरताग्रजः ।
कल्याणाभिजन साधुरदीनात्मा महामतिः ।।
द्विजैरभिविनीतश्च श्रेष्ठैर्धर्मार्थनैपुणैः ।
यदा व्रजति संग्रामं ग्रामार्थे नगरस्य वा ।।

संग्रामात् पुनरागत्य कुञ्जरेण रथेन वा ।

पौरान् स्वजनवन्नित्यं कुशलं परिपृच्छति ।

पुत्रेष्वग्निषु दारेषु प्रेष्यशिष्यगणेषु च ।।

निखिलेनानुपूर्व्या चपिता पुत्रानिवौरसान् ।

शुश्रूषन्ते च वः शिष्याः कच्चिद् वर्मसु दंशिताः ।।

इति वः पुरूषव्याघ्रः सदा रामोऽभिभाषते ।

व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखितः ।।

उत्सवेषु च सर्वेषु पितेष परितुष्यति ।

सत्यवादी महेष्वासो वृद्धसेवी जितेन्द्रियः ।

स्मितपूर्वाभिभाषी च धर्मे सर्वात्मनाश्रितः ।

सम्यग्योक्ता श्रेयसां च नविगृह्यकथारूचिः ।।

उत्तरोत्तरयुक्तौ चवक्ता वाचस्पतिर्यथा ।

सुभ्रूरायतताम्राक्षः साक्षाद् विष्णुरिव स्वयम् ।।

रामोलोकाभिरामोऽयं शौर्यवीर्यपराक्रमैः ।

प्रजापालनसंयुक्तो न रागोपहतेन्द्रियः ।। [1]

वाल्मीकि ने यदि राम के व्यक्तित्व में समग्र गुणों का समुदाय देखा है । तो उनकी धर्म पत्नी सीता का व्यक्तित्व उनकी दृष्टि में असाधारण है ।वनवास यात्रा के समय श्रीराम जनक नन्दिनी सीता को आरण्यक जीवन की विभीषिका से अवगत कराते हैं और यह प्रयास करते हैं कि सीता घर ही रहें । किन्तु जनकात्मजा को यह प्रस्ताव मान्य नहीं होता पहले तो वह अपने पति से साथ ले चलने का सानुरोध अनुनय विनय करती रहीं किन्तु जब उसका कोई परिणाम निकलता हुआ न देखा तब उन्होने दृढ़ स्वर में कहा ।

किं त्वामन्यत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः ।

राम जामातरं प्राप्य स्त्रियं पुरूष विग्रहम् ।।

अनृतं बत लोकोऽयमज्ञानाद् यदि वक्ष्यति ।

तेजोनास्ति परं रामे तपतीव दिवाकरे ।।

---

(1) वा0रा0-अयो0 सर्ग 2/28-44

किं हि कृत्वा विषण्णस्त्वं कुतो वा भयमस्तितते ।

यत् परित्यन्-तु-कामस्त्वं मामनन्य परायणाम् ।।

धुमत्सेनसुतं वीरं सत्यवन्तमनुब्रताम् ।

सावित्रीमिव मां विद्धि त्वमात्मवशवर्तिनीम् ।।

न त्वहं मनसा त्वन्यं द्रष्टास्मि त्वदृतेऽनघ ।

त्वया राघव गच्छेयं यथान्या कुलपांसनी ।।

स्वयं तु भार्यां कौमारीं चिरमध्युषितां सतीम् ।

शैलूष इव मां राम परेभ्यो दातुमिच्छसि ।।

यस्य पथ्यंचरामात्थयस्य चार्थेऽवरूध्यसे ।

त्वं तस्य भव वश्यश्च विघेयश्च सदानध ।।

स मामनादाय वनं न त्वं प्रस्थितुमर्हसि ।

तपो वा यदि वारण्यं स्वर्गो वा स्यात् त्वया सह ।।

न च मे भविता तत्र कश्चित् पथि परिश्रमः ।

पृष्ठतस्तव गच्छन्त्या विहारशयनेष्विव ।।

कुशकाशशरेषीका ये च कण्टकिनो द्रुमाः ।

तूलाजिनसमस्पर्शा मार्गे मम सह त्वया ।।

महावातसमुद्भूतं यन्मामवकरिष्यति

रजो रमण तन्मन्ये पार्ध्यमिव चन्दनम् ।।

शाद्वलेषु यदा शिश्ये वनान्तर्वनगोचरा ।

कुथास्तरणयु-क्तेषु किं स्यात् सुखतरं ततः

पत्रं मूलं फलं य-न्तु अल्पं वा यदि वा बहु ।

दास्यसेस्वयमाहृत्य तन्मेऽमृतरसोपमम् ।।

न मातुर्न पितुस्तत्र स्मरिष्यामि न वेश्मनः ।

आर्तवान्युपभु-ञ्जाना पुष्पाणि च फलानि च ।।

न च तत्र ततः किंचिद् द्रष्टुमर्हसि विप्रियम् ।

मत्कृते न च ते शोको न भविष्यामि दुर्भरा ।।

यस्त्वया सहस स्वर्गो निरयो यस्त्वयाविना ।

इति जानन् परां प्रीतिं गच्छ राममया सह ।

अथ मामेवमव्यग्रां वनं नैव नयिष्यसे ।
विषमद्येव पास्यामि मा वशं द्विषतां गमम् ।।
पश्चादपि हि दु:खेन मम नैवास्ति जीवितम्।
उज्झितायास्त्वया नाथ तदैव मरणं वरम् ।।
इमं हि सहितुं शोकं मुहूर्तमपि नोत्सहे ।
किं पुनर्दश वर्षाणि त्रीणि चैकं च दु:खिता ।।
इति सा शोकसंतप्ता विलप्य करूणं बहु ।
चुक्रोश पतिमायस्ता भृशमालिंग्य सस्वरम् ।।[1]

वाल्मीकि ने सीता के व्यक्तित्व को जो निखार दिया है वह अद्वितीय है । सीता का व्यक्तित्व अपने पतिकी अनुगामिनी सिद्ध करने मात्र से परिसमाप्त नहीं हो जाता । प्रत्युत उनको कवि ने सह धर्मचारिणी के रूप में चित्रित किया है । प्राय: देखा जाता है कि नारियाँ पुरूष के अहं से ही हीन भावनाग्रस्त हो जाती हैं । परिणामत:पति के अनुकूलन में ही अपनी इति कर्तव्यता समझती हैं । किन्तु वाल्मीकि की नारी चाहे वह सीता हो या मन्दोदरी अथवा तारा पतिकी अनुगामिनी होने के बावजूद वे उनके अनुचित कार्यो पर आक्षेप करने से नहीं चूकतीं ।

मन्दोदरी ने अपने पति के अनुचित कार्यो पर विरोध प्रकट किया । इसी प्रकार तारा ने भी वालिको युद्ध से विरत होने का परामर्श दिया। सीता का व्यक्तित्व तो उन दोनों से आगे है ।

आदि कवि ने इस सन्दर्भ में पति के अनुचित कार्यो को संकेतित करते हुए सीता को चित्रित किया है इस सन्दर्भ मे अरण्य काण्ड का नवम सर्ग अवलोकनीय है, जिसमें वह अपने पति से निरपराध प्राणियों को न मारने और अहिंसा धर्म पालन करने का अनुरोध करती है संकेतरूप में यहाँ कतिपय अनुष्टुप् प्रस्तुत हैं -

अधर्मं तु सुसूक्ष्मेण विधिना प्राप्यते महान् ।
निवृत्तेन च शक्योऽयं व्यसनात् कामजादिह ।।
त्रीण्येव व्यसनान्यत्र कामजानि भवन्त्युत ।
मिथ्यावाक्यं तु परमं तस्माद् गुरूतरावुभौ ।।
परदाराभिगमनं विना वैरं च रौद्रता ।
मिथ्यावाक्यं न ते भूतं न भविष्यति राघव ।।

----

(1) वा0रा0-अयो0 /सर्ग 30/3-22

कुतोऽभिलषणं स्त्रीणां परेषां धर्मनाशनम् ।
तव नास्ति मनुष्येन्द्र न चाभूत् ते कदाचन ।।
मनस्यपि तथा राम न चैतद् विद्यते क्वचित् ।
स्वदारनिरतश्चैव नित्यमेव नृपात्मज।।
धर्मिष्ठः सत्यसंधश्च पितुर्निर्देशकारकः ।
त्वयि धर्मश्चसत्यं च त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्
तच्च सर्वं महाबाहो शक्यं वोढुं जितेन्द्रियैः ।
तव वश्येन्द्रियत्वं च जानामि शुभदर्शन ।।
तृतीयं यदिदं रौद्रं परप्राणाभिहिंसनम् ।
निर्वैरं क्रियते मोहात् तच्च से समुपस्थितम् ।।[1]

ऊपर हमने सांस्कृतिक चेतना के उभरे हुए कतिपय बिम्बों की चर्चा की है, यथार्थ यह है कि रामायण का सारा ताना बाना सांस्कृतिक चेतना सूत्रों से निबद्ध है।

(च) कौटुम्बिक - बिम्ब-

रामायण और महाभारत दो ऐसी कृतियाँ हैं जिनमें हमारे देश और जाति की गरिमा की अनुकृति बिम्बित हुई है । रामायण को कुटुम्ब -शास्त्र एवं महाभारत को समाज शास्त्र का अद्वितीय ग्रन्थ कहा जा सकता है । महाभारत की चर्चा यहाँ अप्रासंगिक है । किन्तु रामायण के कौटुम्बिक तन्त्व का विश्लेषण यहाँ प्रसंग प्राप्त है।

दिरकर ने अपनी विशिष्ट कृति संस्कृति केचार अध्याय में एक जगह लिखा है कि रामायण में तीन संस्कृतियों को वाल्मीकि ने अपनी कविता में गुम्फित किया है । [2]

1- नर संस्कृति ।
2- वानर संस्कृत ।
3- रक्षः संस्कृति।

---

(1) वा0रा0- अरण्य सर्ग 9/2-9

(2) संस्कृति के चार अध्याय-दिनकर

पहले का केन्द्र अयोध्या है तो दूसरे का किष्किन्धा तथा तृतीय संस्कृति का केन्द्र लंका है । दिनकर की स्थापना है कि रामायण के निर्माण के पूर्व लोक कथाओंके रूप में इन तीनों के कथानक विखरे रहे होंगे । वाल्मीकि ने अपनी कवित्व-कल्पना से इन तीनों को एक सूत्र में गुम्फित किया है कुछ भी हो किन्तु तथ्य तो यह है कि रामायण की कथा का केन्द्र बिन्दु कुटुम्ब है । यह भी लक्ष्य करने की बात है कि तीनो स्थानों में कौटुम्बिक कलह की पराकाष्ठा परिलक्षित है । अन्तर केवल यह है कि अयोध्या उसके ऊपर नियंत्रण कर पाती है । अन्य दो स्थानो का अन्तर्कलह उनके विनाश का कारण बनता है । जिससे यह मन्तव्य उभर कर आगे आता है कि मानवीय संस्कृति ही सर्वोत्कृष्ट जीने की कला है ।

मनुष्य चेतन प्राणी है उसकी चेतना ही उसको अन्य प्राणियों से उत्कृष्ट सिद्ध करती है । तभी तो कहा गया है-'नरत्वं दुर्लभं लोके '[1] मानव ने अपनी इसी चेतना शक्ति बल से जीने की कला अर्जित की है । इसकेलिए उसकी वैचारिक शक्ति ने कुछ व्यवस्थायें परिकल्पित की है, जिनमें तीन प्रमुख हैं व्यक्ति , कुटुम्ब, और समाज इस तरह हम देखते है कि इस व्यवस्था की मूल इकाई व्यक्ति है और विस्तृत एवं वितत इकाई है समाज इन दोनों के बीच में कुटुम्ब या परिवार अवस्थित है । इस तत्त्व को न समझने वाले पाश्चात्य विचारक मिथ्या आक्षेप करते हैं । कि भारतीय संस्कृति व्यक्ति निष्ठ या व्यक्ति केन्द्रित है । किन्तु उनका यह आक्षेप समाधान भी है । भारतीय चेतना किसी भी क्षेत्र में कुण्ठा ग्रस्त नही है उसका स्वातन्त्र्य परिरक्षणीय है । यही कारण है कि उसकी जड़ें बहुत गहरी है । वह शाश्वत तथा नवीन है इसकी व्यक्ति निष्ठता का चरम उद्देश्य समाज निष्ठा है । भारतीय चिन्तन का यह आधार है कि व्यक्तिशः उन्नयन ही समान उन्नयन का स्रोत है । यही कारण है हमारा धर्म या संस्कृति सामूहिक उपासना की पक्षधर नहीं है । किन्तु यह भी सच है कि प्रत्येक व्यक्ति का चिन्तन समष्टि के हित में निहित है । किसी एकान्त स्थान में गायत्री जप-परायण व्यक्ति अपनी अपेक्षा समाज के बुद्धि-परिष्कार की ईश्वर से आराधना करता है- धियोयोनः प्रचोदयात् ' इतना ही नहीं वह निर्जन वन में भी अपने को एकाकी नहीं पाता तभी तो वह ' नः ' हमारी कहता है।

सारांश यह कि भारतीय चिन्तन व्यवस्था में यदि एक छोर में व्यष्टि है तो उसके दूसरे छोर में समष्टि । उन दोनों के मध्य में कुटुम्ब है । भारतीय चिन्तन पद्धति की यह अपनी विशिष्ट

---

(1) सा0द0- प्रथम परिच्छेद पृष्ठ- 06

देन है । आज चतुर्दिक समाजवाद या साम्यवाद का उद्घोष व्याप्त है किन्तु उसके स्वार्थाभिभूत अन्तर्मन में व्यक्ति निष्ठता या मात्र स्वार्थ भावना घर किए है । भारतीय मनीष इस दंभ के विपरीत है उसका विश्वास है कि कोई भी व्यक्ति कुटुम्ब की पाठशाला में प्राशिक्षित होकर समाज के अभ्युदय और निःश्रेयस् के लिए अर्ह हो सकता है । जो व्यक्ति इतना स्वार्थी है कि अपने स्वार्थ-साधन हेतु समाज उन्नयन का मिथ्या आडम्बर प्रदर्शित करता है, उससे आशा ही क्या की जा सकती है । किन्तु जो व्यक्ति अपनी व्यक्तिनिष्ठता से ऊपर उठ कर कुटुम्ब के लिए समर्पित हो जाता है वही आगे चलकर समाज के नेतृत्व के योग्य प्रमाणित होता है । ऐसे व्यक्ति के लिए सारी पृथ्वी ही कुटुम्ब बन जाती है । 'वसुधैव कुटुम्बकम् ' या ' यत्र विश्वं वभत्येकनीडं" इसी व्यवस्था का प्रतिफल है ।

" वाल्मीकि की प्रज्ञा ने इस चिरन्तन चिन्ता-धारा को आत्मसात् किया था । तभी वह कुटुम्बत्रयी को अपने काव्य का वर्ण विषय बनाते हैं । जितने सौष्ठव के साथ उन्होने कुटुम्ब के इन्द्र-धनुषी बिम्बों का प्रतिबिम्बन अपने काव्य में किया है वह अद्भुत एवं अद्वितीय है ।

रामायण की चिन्तन धारा का उत्स कुटुम्ब है, इसमें दो मत नहीं हो सकते । बाल्मीकि भले ही विरक्त तपस्वी महर्षि रहे हों किन्तु कुटुम्ब के सूक्ष्माति सूक्ष्म परिदृश्य उनके निर्मल अन्तःकरण में अंकित हैं जिनको उन्होने बड़े ही कौशल से काव्य भित्ति में उतारा है ।

पिता-पुत्र, अग्रज - अनुज, पति-पत्नी, माता-पुत्र , सास-बहू, देवर-भाभी, जामातृ - श्वर आदि कितने ही कौटुम्बिक चित्रों के आदर्श बिम्ब रामायण में प्रतिबिम्बित है जिनमें भारतीय संस्कृति का जीवन पद्धति अनस्यूत है । इससे यह सुस्पष्ट हो जाता है कि सुतराम् रामायण कुटुम्ब शास्त्र का अद्वितीय ग्रन्थ है । रामायण के इन कौटुम्बिक चित्रों के आत्म सात् करने से कोई भी व्यक्ति इस निष्कर्ष तक पहुँचने में समर्थ होता है कि रामायण का तात्पर्य-बोध मानवीयता के उन्नयन में अत्यन्त उपकारक है । किन्तु इसका यह आश्रय कदापि नहीं कि रामायण का परिसीमन इसी परिधि के अन्तर्गत है । यह तो उसकी केन्द्रीय धुरी है जिसके ईर्द गिर्द मानव समाज के कल्याण के लिए और भी जाने कितने चित्र उकेरे गये हैं, जिन सब को मिलाकर रामायण एक पूर्णतः जीवनग्रन्थ के रूप में परिलक्षित होता है । इस तरह हम देखते है कि रामायण उत्कृष्ट कौटुम्बिक बिम्बों का विश्व-कोष है । जिसका शोध पूर्ण अध्ययन स्वतंत्र रूप में अपेक्षित है । यहाँ पर उसके कुछ ही बिम्ब अंकित किए जा रहे हैं । अधिक संगत यह होगा कि रामायण में सम्पूर्तित, तीनों कुटुम्बों के दृश्य अंकित किए जायें।

महाभारत में कहा गया है कि ' दुःखादुद्विजते सर्वः सर्वस्य सुखमीप्सितम् ।' [1] अर्थात्

---

(1) महा0-शान्ति पर्व/अध्याय ।39/6।

प्रत्येक व्यन्क्ति दुख से घबड़ाता है और सब को सुख की चाह है इस दृष्टि से प्रतयेक व्यन्क्ति एतदर्थ प्रयासरत रहता है किन्तु अपना ही सुख सब कुछ नहीं वैदिक संस्कृति का यह संदेश है कि दूसरे को सुखी बनाकर ही अपने सुख की चिन्ता करो ।

वेद कहता है ' तेन त्यन्क्तेन भुंजीथाः "[1] यही बात युगकवि जयशंकर प्रसाद कामायनी के मुख से कहलाते है ।

' क्यों इतना आंतक ठहर जा ओ गर्वीले ।
जीने दे सुख से सबको फिर तू भी जीले ।।[2]

तात्पर्य यह है कि भारतीय संस्कृति दूसरे को सुखी बनाने के पश्चात् ही अपने सुख की चिन्ता करने की शिक्षा देती है जब कि पाश्चात्य चिन्तन पद्धति इसके सर्वथा विपरीत है, उनका जीवन मंत्र है 'जियो और जीने दो'। अर्थात् पहले अपने जीने की चिन्ता उनको अधिक है । दूसरों की बाद में, कहना नही होगा कि इसका सारांश यह है कि वहाँ का (पाश्चात्य) व्यन्क्ति अपने जीने की खातिर दूसरे की जिन्दगी को नगण्य समझता है । इसके रहस्य में लक्ष्य करने की बात यह है कि भारतीय जीवन पद्धति की यह उत्कृष्ट कला कुटुम्ब प्रथा की देन है । कुटुम्ब की पाठशाला में प्रत्येक व्यन्क्ति अपनी अपेक्षा कुटुम्ब के अन्य सदस्य की अधिक चिन्ता रखता है । इसके उत्कृष्ट उदाहरण में अतिप्रसिद्ध अयोध्या का एक चित्र प्रस्तुत करना असंगत न होगा । इस कुटुम्ब का प्रमुख पात्र है ' भरत' जिनके विषय में बाल्मीकि का उद्घोष है ।

' रामादपि हि तं मन्ये धर्मतो बलवत्तरं"[3] अर्थात् राम से भी धार्मिक दृष्टि से भरत बलशाली हैं । उसका कारण यह है कि भरत का कुटुम्ब के लिए त्याग अद्वितीय है । राम को वनवास स्वीकारना शालीनता है । और अनिवार्य भी क्यों कि उनके लिए माता पिता का आदेश था । किन्तु भरत माता पिता से प्राप्त भी अतुल-वैभव-सम्पन्न राज्य को स्वीकार नहीं करते । यदि वह स्वीकार भी कर लेते तो नैतिक दृष्टि से कोई बुराई नहीं थी क्यों कि इस सन्दर्भ में भरत की कोई पहल नहीं थी किन्तु भरत राज्य को स्वीकार करने में अपनी असमर्थता घोषित करते है । इतना ही नहीं वह इस अयाचित राज्य-वैभव को अपना अप्राप्य समझ कर इससे खिन्न भी होते हैं यह एक ऐसी घटना है जिसका उदाहरण विश्व के इतिहास में प्राप्त नहीं होता है ।

---

(1) ईशा० — श्लोक सं० ।

(2) कामा० – संघर्ष सर्ग पृष्ठ-95

(3) वा०रा०-अयो०/सर्ग ।2/62

श्री राजबहादुर ने भरत के सूक्ष्म आदर्शवाद पर दृष्टि रखते हुए लिखा है - अन्याय से राज्य का अपहरण तो सबको बुरा लगता ही है परन्तु ऐसे विरले ही लोग होंगे जिन्हे अन्याय से मिलता हुआ राज्य की विष सा प्रतीत हो ।

निश्चय ही भरत अयोध्या का राज्य अन्याय से प्राप्त मानतें है इस लिए उसको वह विषवत् समझते है । वह इस समस्या के समाधान के लिए राम के पास चित्रकूट पहुँचते हैं । उनके साथ विद्वान, आचार्य, मंत्रिपरिषद नागरिक एवं प्राय: परिवार के सभी सदस्य भी थे चित्रकूट में विश्व की यह अद्‌भुत घटना घटित हुई की राम और भरत ने कन्दुक की भाँति अयोध्या के राज वैभव को उछाला । अन्ततः अग्रज की इच्छा पूर्ति के आगे अनुज को झुकना पड़ा फिर भी भरत के अन्तःकरण में अन्तर्द्वन्द्व नभ-मण्डल में मेघ की तरह उमड़ता घुमड़ता रहा । उसकी समाप्ति तो तब हुई जब राज-सिंहासन में आरूढ़ करने हेतु उनकी चरण पादुकाएँ प्राप्त हो गई।

इस महत्त्व पूर्ण प्रकरण की समीक्षा में निवेद्य यह है कि यदि भरत अयोध्या में आकर उस संकट काल में शासन करना आरम्भ कर देते और जैसा कि उनकी अनिच्छा पर मंत्रिपरिषद और राज पुरोहितों का प्रस्ताव था कि राम के प्रत्यावर्तन अवधि तक वह राज्य स्वीकार कर लें और ' अग्रज के आने पर प्रत्यर्पित कर दें तो उनकी कोई वचनीयता न होती किन्तु भरत जानते थे ये सारे के सारे प्रस्ताव धरे रह जायेंगे और सारा समाज यह कहने से नहीं चूकेगा कि किसी न किसी तरह भरत की भी अभि-संधि रही होगी ।

राम के न लौटने पर वे राज्य शासन करना आरम्भ कर देते तो भी वे इस अपवाद से बच जाते किन्तु भरत का व्यक्तित्व इस घटना से बलवत्तर हो जाता है, जब वह राम के प्रतिनिधि स्वरूप उनकी चरण पादुकाओं को सिंहासनारूढ़ करते हैं ।

बाल्मीकि ने भरत के असंदिग्ध चेता एवं महामना होने का चित्र बहुत ही सावधानी से उतारा है । पिता की मृत्यु के पश्चात् राम जानकी के विवासित हो जाने पर भरत श्री वसिष्ठ द्वारा आहूत होते हैं । अयोध्या आने पर ही उन्हे यह कुवृत्त ज्ञात होता है । धीर स्वभाव होने के बावजूद भी वे क्षुभित होकर कैकेयी को भर्त्सित करते हैं इन्हीं पंक्तियों से यह संकेत मिल जाता है कि भरत का व्यक्तित्व आगे कौन मोड़ लेगा ।

किं नु कार्यं हतस्येह मम राज्येन शोचतः ।
विहीनस्याथ पित्रा च भ्रात्रा पितृसमेन च ।।
दुःखे मे दुःखमकरोर्व्रणे क्षारमिवाददाः ।
राजानं प्रेतभावस्थं कृत्वा रामं च तापसम् ।।
कुलस्य त्वमभावाय कालरात्रिरिवागता ।
अंगारमुपगूह्य स्म पिता मे नावबुद्धवान् ।।
मृत्युमापादितो राजा त्वया मे पापदर्शिनि
सुखं परिहृतं मोहात् कुलेऽस्मिन् कुलपांसनि ।।
त्वां प्राप्य हि पिता मेऽद्य सत्यसंधो महायशाः ।
तीव्रदुःखाभिसंतप्तो वृत्तो दशरथो नृपः ।।
विनाशितो महाराजः पिता मे धर्मवत्सलः ।
कस्मात् प्रव्राजितो रामः कस्मादेव वनं गतः ।।[1]

निश्चित है कि भरत की इस असाधारण कौटुम्बिक नीति सेजिन्हें राम का वरद हस्त प्राप्त था भारत के इतिहास में एक दुःखद घटनाजो-गृह युद्ध के रूप में होती, टल गई, जैसी कि हम महाभारत में पांडव कौरवो के गृह युद्ध में जन धन का विनाश देखते है ।

प्रस्तुत शब्द चित्र किष्किन्धा का है जहाँ वानरी-सभ्यता संस्कृति का एकच्छत्र राज्य है। " यथानामतथा गुणः । ' वालि अपने दुर्धष दर्प से सुग्रीव को उत्पीड़ित कर उसकी पत्नी रूमा तथा उसका सर्वस्व का अपहरण कर किष्किन्धा में शासन करता है । सीता हरण के दौरान राम सुग्रीव की अग्नि-साक्षिक मैत्री हो जाती है । यह सब जानकर भी राम के द्वारा उत्प्रेरित सुग्रीव का युद्धाह्वान सुनकर वालि युद्ध के लिए सन्नद्धहो जाता है । यद्यपि तारा उसे बहुत कुछ समझाती बुझाती है किन्तु उसका गर्व उसको उत्प्रेरित करता है वह तारा को निर्भर्त्सित करते हुए कहता है-

गर्जतोऽस्य सुसंरब्धंभातुः शत्रोर्विशेषतः ।
मर्षयिष्यामि केनापि कारणेन वरानने ।।
अधर्षितानां शूराणां समरेष्वनिवर्तिनाम् ।
धर्षणामर्षणं भीरू मरणादतिरिच्यते ।।
सोढुं न वःसमर्थोऽहं युद्धकामस्य संयुगे।
सुग्रीवस्य च संरम्भं हीनग्रीवस्य गर्जितम् ।।

---

(1) वा0 रा0- अयो0/सर्ग- 73/2-7

न च कार्यो विषादस्ते राघवं प्रति मत्कृते ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च कथं पापं करिष्यति।।
निवर्तस्व सह स्त्रीभिः कथं भूयोऽनुगच्छसि।
सौहृदं दर्शितं तावन्मयि भक्तिस्त्वया कृता।।
प्रतियोत्स्याम्यहं गत्वा सुग्रीवं जहि सम्भ्रमम् ।
दर्पं चास्य विनेष्यामि न च प्राणैर्वियोक्ष्यते ।।
अहं ह्याजिस्थितस्यास्य करिष्यामियदीप्सितम् ।
वृक्षैर्मुष्टिप्रहारैश्च पीडितः प्रतियास्यति।।
न मे गर्वितमायस्तं सहिष्यति दुरात्मवान् ।
कृतं तारे सहायत्वं दर्शितं सौहृदं मयि ।।
शापितासि मम प्राणैर्निवर्तस्व बनेन च ।
अलं जित्वा निवर्तिष्ये तमहं भ्रातरं रणे।।[1]

वालि और सुग्रीव का कुटुम्ब एक ही था आधुनिक सन्दर्भ में उसे संयुक्त-परिवार ही कहा जा सकता है । दोनो का पारस्परिक संघर्ष उदर्क में विनाश की कगार पर पहुँचा देता है । आज की स्थितियह है कि मानव समाज का अधिकाश नर-संस्कृति से हट कर वानरीय-संस्कृति की ओर अग्रसर हो रहा है । उसके आखेट का लक्ष्य प्रायः अपना कुटुम्ब ही बनता है परिणाम सामने है । भारतीय संस्कृति की रीढ़ कौटुम्बिक प्रथा इससे जर्जर होती जा रही है ।

एक कौटुम्बिक बिम्ब लंका नगरी का है । रावण एकान्त पाकर सीता को अपहरण करता है । सदलबल राम लंका पर आक्रमण करते हैं, पूरी लंका नगरी में खलबली मच जाती है दशग्रीव के कुटुम्बका एक विशिष्ट सदस्य एवं उसी का अनुज विभीषण अपने अग्रज को उचित परामर्श देता है । वह कहता है कि यह कार्य किसी भी मनुष्य के योग्य नहीं इसलिए आप सीता का प्रत्यर्पण कर श्री राम से क्षमा याचना कर लें किन्तु मदगर्वित रावण उसके वचनों को अस्वीकार करके उसका तिरस्कार करता है। परिणामतः विभीषण यह कह कर चल देता है-

अब्रवीच्च तदा वाक्यं जातक्रोधो विभीषणः
अन्तरिक्षगतः श्रीमान् भ्राता वै राक्षसाधिपम् ।।
सत्वं भ्रान्तोऽसि मे राजन् ब्रूहि मां यद् यदिच्छसि ।
ज्येष्ठो मान्यः पितृसमो न च धर्मपथे स्थितः ।
इदं हि परूषं वाक्यं न क्षमाम्यग्रजस्य ते ।।

---

(1) वा0रा0-किष्कि0/सर्ग-16/2-10

सुनीतं हितकामेन वाक्यमुक्तं दशानन ।

न गृह्णन्त्यकृतात्मानः कालस्य वशमागताः ।।

सुलभाः पुरूषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।

अप्रियस्य चपथ्यस्य वक्ताश्रोता च दुर्लभः ।।

बद्धं कालस्य पाशेन सर्वभूतापहारिणः ।

न नश्यन्तमुपेक्षे त्वां प्रदीप्तं शरणं यथा ।।

दीप्तपावकसंकाशैः शितैः काञ्चनभूषणैः ।

नत्वामिच्छाम्यहंद्रष्टुं रामेण निहतं शरैः ।।

शूराश्चबलवन्तश्च कृतास्त्राश्च नरा रणे ।

कालाभिपन्नाः सीदन्ति यथा वालुकसेतवः ।।

तन्मर्षयतु यच्चोक्तं गुरूत्वाद्धितमिच्छता ।

आत्मानं सर्वथा रक्ष पुरीं चेमां सराक्षसाम् ।

स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि सुखी भव मया विना ।

निवार्यमाणस्य मया हितैषिणा

न रोचते ते वचनं निशाचर ।

परान्तकाले हि गतायुषो नरा

हितंन गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम् ।।[1]

रावण और विभीषण का यह वैमनस्य इतना दारूण रूप धारण कर लेता है । कि सारा कुटुम्ब ही समूल विनष्ट हो जाता है । इस समूल विनाश में विभीषण का योगदान भी कम नहीं है । रामायण मे रक्षः संस्कृति का यह घृणास्पद उदाहरण है । यदि रावण ने विवेक से काम लिया होता तो पहले तोवह सीता हरण रूप अमानुषिक कृत्य न करता कदाचित् कर भी चुकने के पश्चात् वह विभीषण के हितोपदेश को हृदयंगम कर लेता तो रामायण के लंकाकाण्ड का कथानक और ही होता । किन्तु ऐसा नहीं हो सका रावणजो रक्षः संस्कृति का प्रतीक है , अपने कालुष्यकालिमा को अमिट कर गया ।

किन्तुखेद तो यह है कि आधुनिक भारतीय संस्कृति (विकृति?) की उपासक रक्षः संस्कृति

---

(1) वा0रा0-युद्ध /सर्ग 16/18-26

को आत्मसात् करते जा रहे हैं। यद्यपि यह सत्य है कि राम का चारित्रिक सौन्दर्य भारतीय जन मानस में रल मिल गया है । फिर भी आधुनिक समाज से रामत्व औझल सा होता जा रहा है । काश, इस विपरीत दिशा की ओर भारतीय जन जीवन अग्रसर न होता एतदर्थ अपेक्षित यह है कि पाश्चात्य शिक्षा के कुभाव सेजर्जरित होती हुई कौटुम्बिक प्रथा की सुरक्षा की जाय और उसकी सुरक्षाका एक मात्र साधन है रामायणी कथा । इस तरह रामायणसे कौटुम्बिक बिम्ब के कुछ अंश उद्धृत किये गये हैं जो भारतीय संस्कृति के प्राण कहेजा सकते हैं क्यों कि कौटुम्बिक सौमनस्य ही संस्कृति का मेरू दण्ड है ।

सामाजिक बिम्ब

ऊपरहमने कौटुम्बिक बिम्ब के अध्ययन के सन्दर्भ में इस मान्यता की पुष्टिकरने का प्रयास किया है कि यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति सुखार्थी है और वह इसी प्रयास में लगा रहता हैं धीरे धीरे उसके विकसित मस्तिष्क ने अपने आपको एक समाज मे ढाल लिया । क्रमशः मनुष्य एक सामाजिक प्राणी के रूप में अपने आपको उन्नत किया । यद्यपि यत्किंच्चित् मात्र यह प्रवृत्ति अन्य प्राणियों में भी पायी जाती है । पशुपक्षी सरीसृप आदि भी समूह में रहने के आदि हैं । किन्तु सामाजिक भावना का परिष्कार मानव मात्र के मस्तिष्क की विशेषता है । यह उसके परिष्कृत मस्तिष्क की उपज है । यद्यपि भारतीय संस्कृति मे सामाजिक भावना चिरकाल से स्थित रहीहै । क्योकि हमारी संस्कृति का विशिष्ट मूल आधार है आध्यत्मिक चेतना ।

आध्यत्मिक चेतना का ही यह प्रतिफल है कि हमारा उद्घोष है कि " सर्वं खल्विदं ब्रह्म" तात्पर्य यह है कि जब कि अन्य देश या राष्ट्र संकीर्ण सामाजिकता तक ही सीमित हैं । हमारा राष्ट्र विश्व बन्धुत्व या विश्व मानव का आदर्श प्रस्तुत करता है ।

भारतीय जन मानस के परिष्कार में कौटुम्बिक भावना का बड़ा हाथ रहा है उसी का प्रतिफल या परिणति विश्व मानव समाज की परिकल्पना है ।

हमने यह स्थापित किया है कि रामायण कुटुम्ब शास्त्र है और महाभारत समाज शास्त्र, इससे यह आशंका हो सकती है कि रामायणमें सामाजिक भावना की उपेक्षा है किन्तु यह मान्यतासर्वथा निर्मूल है । जिस रामायण में मनुष्य ही नहीं पशु पक्षी आदि में भी उत्कृष्ट सामाजिक भावना प्रतिबिम्बित हो, जिसके उत्कृष्ट उदाहरण जटायु, सम्पाती, सुग्रीव , जामवन्त, हनुमान आदि हैं वहाँ इस शंका का स्थान

ही क्या? यह बात समझ लेने की है समाज का अर्थ मात्र समुदाय नहीं प्रत्युत समाज का अर्थ इससे विशिष्ट है । समाज वह है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति अपना मनोविकास करता हुआ एक दूसरे के काम आता है । इस अर्थ में रामायण में सामाजिक बिम्बों के परिदृश्य भरे पड़े हैं । जिनके कुछ ही चित्र यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं ।

राम का वनवास हो चुका है । प्रवासी राम-लक्ष्मण-सीता पंचवटी में निवास कर रहे हैं । अवमानिता शूर्पणखा के उकसाने से रावण मारीच के साहाय्य से सीता का अपहरण करता है । जिस समय विलाप करती हुई सीता को रावण लिए जा रहा था सीता की करूण पुकार सुन कर वन्य जन्तु भी हाहाकार कर बैठे जटायु गृध्र उस समय सो रहा था किन्तु सीता के आर्तनाद से उसकी आखें खुल गईं उसको रावण के कुकर्म को समझने में देर नहीं लगी । उसने प्राण पण से जानकी को उन्मुक्त करने का निश्चय किया और रावण को ललकारा -

दशग्रीव स्थितो धर्मे पुराणे सत्य संश्रयः ।
भ्रातस्त्वं निन्दितं कर्म कर्तुं नार्हसि साम्प्रतम् ।।
जटायुर्नाम नाम्नाहं गृध्रराजो महाबलः ।
राजा सर्वस्य लोकस्य महेन्द्रवरूणोपमः ।।
लोकानां च हिते युक्तो रामो दशरथात्मजः ।
तस्यैषा लोक नाथस्य धर्मपत्नी यशस्विनी ।।
सीता नाम वरारोहा यां त्वं हर्तुमिहेच्छसि ।
कथं राजा स्थितो धर्मे परदारान् परामृशेत् ।।
रक्षणीया विशेषेण राजदारा महाबल ।
निवर्तय गतिं नीचां परदाराभिमर्शनात् ।।
न तत् समाचरेद् धीरो यत् परोऽस्य विगर्हयेत् ।
यथाऽऽत्मन स्तथान्येषां दारा रक्ष्या विमर्शनात् ।।
अर्थं वा यदि वा कामं शिष्टाः शास्त्रेष्वनागतम् ।
व्यवस्यन्त्यनु राजानं धर्मं पौलस्त्यनन्दन ।।
राजाधर्मश्च कामश्च द्रव्याणां चोत्तमो निधिः ।
धर्मः शुभं वा पापं वा राजमूलं प्रवर्तते ।।
पाप स्वभावश्चपलः कथं त्वं रक्षसां वर ।
ऐश्वर्यमभिसम्प्रातो विमानमिव दुष्कृती ।।

कामस्वभावो यः सोऽसौ न शक्यस्तं प्रमार्जितुम् ।
नहि दुष्टात्मनामार्यमावसत्यालये चिरम् ।।
विषये वा पुरेवा ते यदा रामो महाबलः ।
नापराध्यति धर्मात्मा कथं तस्यापराध्यति ।।
यदि शूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतः खरः ।
अतिवृ-त्तो हतः पूर्वं रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।।
अत्र ब्रूहि यथा त-त्वं को रामस्य व्यतिक्रमः ।
यस्य त्वं लोकनाथस्य हृत्वा भार्या गमिष्यसि ।।
क्षिप्रं विसृज्य वैदेहीं मात्वा घोरेण चक्षुषा ।
दहेद् दहनभूतेन वृ-त्तमिन्द्राशनिर्यथा ।।
सर्पमाशीविषं बद्ध्वा वस्त्रान्ते नावबुध्यसे ।
ग्रीवायां प्रतिमु-क्तं च काल पाशं न पश्यसि ।।
स भारः सौम्य भर्तव्यो यो नरं नावसादयेत् ।
तदन्नमपि भो-क्तव्यं जीर्यते यदनामयम् ।।
यत् कृत्वा न भवेद् धर्मो न कीर्तिर्न यशोध्रुवम् ।
शरीरस्य भवेत् खेदः कस्तत् कर्म समाचरेत् ।।
षष्टिवर्ष सहस्त्राणि जातस्य मम रावण ।
पितृपैतामहं राज्यं यथावदनुतिष्ठतः ।।
वृद्धोऽहं त्वं युवा धन्वी सरथः कवची शरी ।
न चाप्यादाय कुशली वैदेहीं मे गमिष्यसि ।।
न श-क्तस्त्वं बलाद्धर्तुं वैदेहीं मम पश्यतः ।
हेतुभिर्न्यायसंयु-क्तैर्ध्रुवां वेदश्रुतीमिव ।।
युध्यस्व यदि शूरोऽसि मुहूर्तं तिष्ठ रावण ।
शयिष्यसे हतो भूमौ यथा पूर्वं खरस्तथा ।। [1]

जटायु के उपर्यु-क्त वचन केवल मौखिक नहीं थे उसने सीता को छुड़ाने के लिए आत्माहुति कर दी । इससे बढ़ कर सामाजिक बिम्ब क्या हो सकता है ।

---

(1) वा0रा0-अरण्य0 /सर्ग 50/3-23

वाल्मीकि ने राम को विराट सामाजिकता के प्रतिनिधि के रूप में अंकित किया है । सीता हरण के पश्चात् राम यदि चाहते तो अयोध्या के सैन्य बल की सहायता ले सकते थे किन्तु उन्होने ऐसा नहीं किया । अयोध्या से निर्गत होने के पश्चात् ही उन्होने जैसा जन सम्पर्क स्थापित किया उसको बाल्मीकि ने शब्दशः चित्रित किया है । एक ओर राम सुतीक्ष्ण , सरभंग , अगस्त्य आदि ऋषि मुनियों के साथ सम्पर्क साधते रहे तो दूसरी ओर वन्य जनों को भी उन्होने उपेक्षित नहीं किया ।

दिनकर ने तो ऋक्ष और वानरों को आरण्यक जन जातियाँ ही माना है । सारांश यह कि उन्होने सुग्रीव से मैत्री स्थापित कर एक अपूर्व समाज संगठन का उदाहरण प्रस्तुत किया । इतना ही नहीं साथ ही साथ उन्होने समाज विरोधी तत्वों खर , दूषण , विराध आदि के समुदाय को ध्वस्त भी किया जो सामाजिक भावना से दूर अमानुषिक दुष्कर्म के लिए समुदाय बनाकर सामाजिकता में अन्तराय उपस्थित कर रहे थे ।

समाज संगठन की शिक्षा दीक्षा राम लक्ष्मण को किशोर वय में ही मिल चुकी थी, जिसका आचार्यत्व कौशिक मुनि ने किया था वही आगे चलकर काम आया ।

कतिपय विद्वानों की तो मान्यता है कि राम का पिनाक भंजन और सीता वरण का रहस्य कुछ और ही है । वाचस्पति गैरोला ने लिखा है कि " राम ने एक बहुत बड़ी सामाजिक क्रान्ति की । शिव का धनुष भंजन आखेट युग के समायन करने का प्रतीक है एवं सीता वरण का अर्थ समाज में कृषि कार्य का शुभारम्भ है ।[1] कुछ भी हो राम में अलौकिक प्रभविष्णुता दृष्टि गोचर होती है ।

सच तो यह है कि वालि और रावण के बिनाश भी इसी लक्ष्य की पूर्ति है । राम के सामने एक आदर्श था आदर्श मानवीय सामाजिक संस्कृति की स्थापना । वाली और रावण इस मार्ग के बहुत बड़े रोड़े थे जो असमाजिक दुष्कर्मो के प्रतीक थे , राम ने अपने शौर्य से यह दुष्कर कार्यकिया इससे बढ़कर सामाजिक संगठन क्या हो सकता है कि राम के नीति नैपुण्य में शत्रु पुत्र अंगद एवं रावणानुज विभीषण को भी अपने पक्ष में मिलाकर वानर और रक्षः संस्कृति को ध्वस्त कर मानव संस्कृति की समाज में प्रतिष्ठापना की ।

इस तरह हम देखते हैं कि रामायण में बाहय या अन्तरंग उभयत्र ऐसे काव्य बिम्ब पदे पदे भासमान हैं । कि जिससे यह आभासित होता है कि यह रामकथा भगवान राम का साकार विग्रह ही है ।

---

(1) भा0 सं0 क0 पृष्ठ 191-92 बाचस्पति गैरोला.

अष्टम अध्याय

परवर्ती विशिष्ट महाकवियों पर बाल्मीकि के बिम्बों का प्रभाव

अष्टम अध्याय

परवर्ती विशिष्ट महाकवियो पर वाल्मीकि के बिम्बों का प्रभाव -

क- व्यास

ख- भास

ग- कालिदास

घ- अश्वघोष

ड- भवभूति

च- भारवि

छ- माघ

ज- श्रीहर्ष .

बिगत तीन अध्यायों में रामायण के बिम्ब विधान का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है और यह समीक्षा की गई है कि इस सन्दर्भ में आदि कवि कहाँ तक कृतकार्य हैं । इन तीनों अध्यायों में उल्लिखित बिम्बों की प्रस्तुति के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं, कि प्राचेतसोन्तर बिशिष्ट कवियों के महाकाव्यों पर भी रामायण के बिम्बों की प्रतिच्छाया अवश्य पड़ी होगी ।

संस्कृत साहित्य जगत में वाल्मीकि व्यास और कालिदास की कृतियाँ विश्व साहित्य की श्रेणी में आती हैं । इन तीनों महाकवियों का अवदान समग्र भारत के लिए बहुमूल्य प्रमाणित हुआ । इन तीनों में दो विभूतियाँ महर्षि वाल्मीकि और भगवान व्यास धार्मिक दृष्टि से अधिक एवं कवित्व की दृष्टि से सामान्य रूप से ही धर्म तन्त्व के व्याख्याता के रूप में भारतीय जनता के आराध्य रहे हैं । ऐतिहासिक दृष्टि महर्षि व्यास की अपेक्षा महर्षि वाल्मीकि को पूर्व कालिक मानती है । यद्यपि ये दोनों महाविभूतियाँ भारतीय समाज की श्रद्धेय हैं , फिर भी कवित्व की दृष्टि से इस अध्याय में व्यास के काव्य बिम्बों पर वाल्मीकि के काव्य बिम्बों की प्रभावान्विति की चर्चा अनुचित नहीं मानी जायेगी । महा कवि कालिदास ने तो स्पष्ट शब्दों में ही वाल्मीकि के ऋण को स्वीकारा है । वे रघुवंश महा काव्य के आरम्भ में लिखते हैं ।

अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन् पूर्वसूरिभिः ।
मणौ वज्र समुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः ।।[1]

---

(1) रघु0 1/4

भास और भवभूति महाकाव्य प्रणेता न होकर नाटक कार हैं, किन्तु विशिष्ट महाकवियों के गणना-प्रसंग में इन दोनों नामों की उपेक्षा नहीं की जा सकती । इसलिए उनके काव्य बिम्बों पर रामायण के प्रभाव की चर्चा उचित ही है ।

शेष चार महाकवि जिनमें अश्वघोष, भारवि, माघ और श्रीहर्ष गृहीत हैं उनमें तीन अन्तिम बृहत्त्रयी [1] के कवि हैं । इसलिए इस सन्दर्भ में उनको भी लिया गया है । अश्वघोष वाल्मीकि कालिदास की काल-परम्परा के कवि हैं इसलिए उनके काव्य में रामायण के काव्य बिम्बों का प्रभाव दृष्टव्य है ।

यद्यपि परवर्ती कवियो में जानकी हरण के लेखक महाकवि कुमारदास एवं राम काव्य परम्परा के आधुनिक महाकवि सीता चरित के प्रणेता डा० रेवा प्रसाद द्विवेदी तथा जानकी जीवनम् महाकाव्य के निर्माता अभिराज डा० राजेन्द्र मिश्र पर भी इस सन्दर्भ में अध्ययन अपेक्षित था किन्तु विस्तार भय से चाहने पर भी ऐसा नहीं हो सका । सारांश यह है कि इस सन्दर्भ में चर्चित कवियों को उपलक्षण [2] मात्र समझना चाहिए ।

वाल्मीकि रामायण आदि काव्य है और अपने बिम्ब-विधान, कला सौन्दर्य, कल्पना की दृष्टि से परवर्ती कवियों का स्रोत रहा है । कथा - वस्तु से लेकर काव्य बिम्बों कल्पनाओं का आहरण परवर्ती कवियों ने किया है । डा० दास गुप्ता ने ठीक ही कहा है कि परवर्ती काव्य के सौन्दर्य का मूल बीज वाल्मीकि रामायण में ही विद्यमान है ।[3]

---

(1) संस्कृत साहित्य जगत् में लघुत्रयी एवं बृहत्त्रयी प्रसिद्ध हैं । लघुत्रयी में महाकवि कालिदास की तीन कृतियाँ रघुवंश , मेघदूत, और कुमार संभव गृहीत होते हैं । बृहत्त्रयी में महाकवि भारवि का किरातार्जुनीय महाकाव्य , महाकवि माघ का शिशुपाल वध महाकाव्य एवं महाकवि श्री हर्ष का नैषधीय चरित महाकाव्य ये तीनों गृहीत होते हैं ।

(2) स्वबोधकत्वे सति स्वेतर बोधकत्वं उपलक्षणत्वम् । अर्थात् जो अपना बोध कराये और अपने से इतर का भी उसे उपलक्षण कहते हैं।

(3) *If in the Kavya, greater importance is attached to the : form, the Ramayana can in a very real sence be called the first Kavya and the literary embellishment that be find in it in the skilled use of language, matter and poetic figures is not wholly adventitious is not but forms an integral part of its poetic expression, which anticipates the more conscious ornament and finish of the later Kavya.*
(A History of Sanskrit literature), Vol. I. P. 2.

व्यास :-

वाल्मीकि रामायण में प्रयुक्त बिम्बों का प्रभाव वेद व्यास की कृतियों में खोजना दुरूह नहीं तो कठिन अवश्य है । क्यों कि वाल्मीकि की महत्त्व पूर्ण कृति रामायण की अपेक्षा व्यास की कृतियों के सन्दर्भ में कि उनकी कौन कौन सी रचनाएं हैं इस विषय में विद्वानों में बहुत ही विसंवाद है यद्यपि रामायण के सम्बन्ध में भी यह प्रवाद है कि उसमें भी यत्र तत्र प्रक्षिप्त अंश है, फिर भी विद्वानों को यह निर्विवाद रूप से मान्य है कि रामायण के प्रक्षिप्त अंश अधिक मात्रा में नहीं कि उससे कृति का कलेवर ही कुछ का कुछ हो जाए किन्तु व्यास की कृतियों में विद्वत् समुदाय का बहुमत है कि उनकी कृतियों में इतना प्रक्षेपण हुआ है कि आज यह कहना कठिन है कि तत्-तत् रचनाओं में इतना भाग व्यास की लेखनी से उद्भूत है ।

इसके अतिरिक्त एक प्रश्न और असमाधेय बनकर खड़ा हो जाता है वह है, व्यासों की श्रृंखला में इस तरह आज यह निर्धारण करना कठिन है कि महाभारत एवं अष्टादश पुराणों में मूलतः वादरायण व्यास का कर्तृत्त्व कितना है । कुछ भी हो हम इस विवादास्पद पचड़े में न पड़कर सामान्य रूपेण यह मानकर चल रहे हैं कि उपलब्ध महाभारत और पुराण बेद व्यास की रचनाएं हैं उनमें भी केवल महाभारत के कुछ स्थलों एवं श्रीमद्भागवत के एकाध प्रकरणों के अध्ययन से यह जानने की चेष्टा कर रहे हैं कि वाल्मीकि के बिम्बों का प्रभाव व्यास पर कैसा है ?

इस आशय को स्पष्ट करने के लिए हम पहले उनकी विशिष्ट कृति श्रीमद्भागवत को लेते हैं । आदि कवि ने रामायण के आरम्भ में आगे वर्णन की जाने वाली रामकथा को सूत्र रूप में एक सर्ग में ग्रथित किया है जो मूल रामायण के नाम से प्रसिद्ध है । उसमें भी वाल्मीकि ने अपने कथा नायक राम के व्यक्तित्व की चर्चा करते हुए जो बिम्ब प्रस्तुत किया है उसकी अपनी विशेषता है, व्यास ने भी श्रीमद्भागवत् में द्वादश स्कन्ध के द्वादश अध्याय में इसी भांति श्रीमद्भागवत के समग्र कथानक को सूत्र रूप में ग्रथित किया है । यद्यपि मूल रामायण में राम के व्यक्तित्व को उभारने वाले बिम्ब की भांति श्रीमद्भागवत् में श्रीकृष्ण के बिम्ब की प्रभविष्णुता नहीं दीख पड़ती है , किन्तु समस्त कथानक को मूल रूप में हृदयंगम करने से जिस बिम्ब की उपस्थिति होती है कुछ उसी प्रकार का बिम्ब भागवतकार के इस प्रकरण में प्रतीत होता है । कहने का तात्पर्य यह है कि वाल्मीकि के कथानक-बिम्बाकंन की अनुकृति व्यास में भी दृष्ट है ।

भारतीय जन जीवन में व्याप्त संस्कृति का अनुगम जिन कृतियों से होता है, उनमें रामायण और महाभारत प्रधान हैं । भारत का इतिहास इसकी साक्षी देता है कि यह देश चिरकाल से धर्म प्रधान

रहा है यहाँ की धर्म प्रवणता विश्वभर में प्रख्यात रही है । यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति अपना आचरण धर्म के आधार पर ही नियन्त्रित रखता रहा है । इस विशेषता की पहिचान जो ऋषि परम्परा प्राप्त थी वाल्मीकि ने भी उसी का अनुमोदन किया । उन्होने कहा-

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम् ।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत् ।।[1]

इतना ही नही महर्षि वाल्मीकि अपने पात्रों के व्यक्तित्व का मूल्यांकन इसी पृष्ठभूमि पर करते हैं अपने कथा नायक के विषय में उनका कथन है " रामो विग्रहवान् धर्मः " वह राम के विशिष्ट गुणों की चर्चा में उनको धर्मज्ञ कहना नहीं भूलते ।[2] इतना ही नहीं वह राम को धर्म के रक्षक के रूप में स्मरण करते हैं- " धर्मस्य परिरक्षिता "[3] इतना ही क्या ऋषि का ध्यान सूक्ष्म रूप से इस सन्दर्भ में और एकाग्र होता है वह राम के ही विषय में कहते है- " रक्षिता स्वस्य धर्मस्य "[4] । कवि के मस्तिष्क में आचरण में धर्म की तत्परता कहाँ तक समर्थित है कि वह इस सन्दर्भ में किसी पात्र के भी शोभन आचरण को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं । तभी तो कैकेयी पुत्र भरत के शालीन आचरण की संस्तुति में निःसंकोच लिखते हैं,: " रामादपि हितं मन्ये धर्मतोबलवत्तरम् "[5] ।

व्यास ने भी वाल्मीकि के इस वैचारिक बिम्ब को बड़े ही मनोयोग के साथ आत्मसात् किया है । जहाँ वाल्मीकि धर्म की गरिमा का वखान करते हैं और दृष्टान्त में मर्यादा पुरूषोत्तम राम एवं भ्रातृभक्त भरत को प्रस्तुत करते हैं और उनके चरित्र से सन्तुष्ट होते हैं वहीं व्यास धर्म के महत्त्व को व्याख्यायित करते हुये भी उसके अवमूल्यन से अत्यन्त चिन्तित प्रतीत होते हैं । इससे स्पष्ट है कि वह वाल्मीकि के वैचारिक बिम्ब से कितने अनुप्रेरित हैं वे अपने दोनों बाहुओं को उठाकर खेद प्रकट करते हैं कि जबकि धर्म से ही त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की सिद्धि निश्चित है तो उसकी अवहेलना कैसी ? वे कहते हैं- ' धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते । [6]

---

(1) वा0रा0-अरण्य0 /सर्ग 9/30
(2) " बाल/सर्ग1/12
(3) " बाल/सर्ग 1/13
(4) " बाल0/सर्ग 1/14
(5) " अयो0/सर्ग 12/62
(6) कल्याण- साधना अंक , वर्ष 1940, अंक 01

भारतीय संस्कृति तपोवन में अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित एवं प्रतिफलित हुई है । हम यहाँ तक कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति को यदि आरण्यक संस्कृति नाम दिया जाय तो अनुचित न होगा । भारतीय संस्कृति का मेरूदण्ड वर्णाश्रम व्यवस्था है । उसमें वर्ण व्यवस्था समाज निष्ठ एवं आश्रम व्यवस्था व्यक्तिनिष्ठ है । प्रत्येक व्यक्ति के लिए क्रमशः चारों आश्रमों में जीवन यापन करना अनिवार्य था । शतवर्ष जीवी केवल 25 वर्ष गृहस्थ आश्रम में नगर या ग्राम में व्यतीत करता था उसका शेष जीवन तपोवन में ही व्यतीत होता था । ऐसी स्थिति में यदि आरण्यक संस्कृति में आपत्ति हो-उसमें जंगलीपन की गंध प्रतीत होती हो- तो हम भारतीय संस्कृति को तपोवन संस्कृति कह सकते हैं । कहना नहीं होगा कि कानन के लता वीरूध, पादप वन्य जीव जन्तु , पशुपक्षी आदि, सरिताएं, पर्वतश्रेणियाँ, आदि सब अंग हैं। यही कारण है कि आदि कवि तपस्वी वाल्मीकि का इनके प्रति अतिशय आकर्षण है । वन्य जीवन के हृदयहारी बिम्ब उन्होंने स्थान-स्थान पर उभारे हैं उदाहरणार्थ एकाध बिम्ब उद्धृत हैं :-

पंपातीररूहाश्चेमे संसिक्ता मधुगन्धिनः ।
मालतीमल्लिकापद्मकरवीराश्च पुष्पिताः ।।
केतक्यः सिन्दुवाराश्च वासन्त्यश्च सुपुष्पिताः ।
माधव्यो गन्ध पूर्णाश्च कुन्दगुल्माश्च सर्वशः ।।
चिरबिल्वा मधूकाश्च वंजुला बकुलास्तथा ।
चम्पाकस्तिलकाश्चश्चैव नागवृक्षाश्च पुष्पिताः ।।
पद्मकाश्चैव शोभन्ते नीलाशोकाश्च पुष्पिताः ।
लोध्रश्च गिरिपृष्ठेषु सिंह केशर पिंजराः ।।
अंकोलाश्च कुरण्टाश्च चूर्णकाः पारिभद्रकाः ।
चूताः पाटलयश्चापि कोविदाराश्च पुष्पिताः ।
मुचुकुन्दार्जुनाश्चैव दृश्यन्ते गिरिसानुषु ।
केतकोद्दालकाश्चैव शिरीषाः शिंशपा धवाः ।।
शाल्मल्यः किंशुकाश्चैव रक्ताः कुरवकास्तथा ।
तिनिशा नक्तमालाश्च चन्दनाः स्यन्दनास्तथा ।।
हिन्तालास्तिलकाश्चैव नागवृक्षाश्च पुष्पिताः ।।[1]

---

[1] वा0रा0- किष्कि/सर्ग 01/76-82 1/2

कलकल निनादिनी सरिताओं की भी एक छटा होती है । जैसे वह निरन्तर प्रवाहित होती मानव मात्र को 'चरैवेति चरैवेति' का सन्देश मुखर रव से कहती हैं । जैसे वह प्राणी मात्र के ऊपर अपनी करूणा उड़ेलने के लिये ही उद्वेलित हो प्रवाहित रहती हैं । वर्षा के समय तो उनका रूप उत्ताल तरंगों से विभूषित एक ही साथ आश्चर्य हर्ष और यदा कदा भय का भी संचार करने लग जाता है ।आदि कवि ने सरिताओं के भी बहुत ही हृदयावर्जक बिम्ब प्रस्तुत किये हैं एक चित्र यहाँ प्रस्तुत है-

नद्यः समुद्वाहित चक्रबाका
स्तटानि शीर्णान्यपवाहयित्वा ।
दृप्ता नव प्रावृतपूर्ण भोगा-
द्रुतं स्वभर्तारमुपोपयान्ति ।। [1]
शैलोपल प्रस्खलमानवेगाः
शैलोत्तमानां विपुलाः प्रपाताः ।
गुहासु संनादित बर्हिणासु
हारा विकीर्यन्त इवावभन्ति ।।[2]

प्रकृति के प्रांगण में आकाश में अपने शिखर मस्तकों को उठाऐ हुए पर्वतों की सुषमा कम मनोहर नहीं होती जैसे वे सरित्सर निर्झरों के जनक हों रंग विरंगे गैरिक आदि वस्तुओं की खनिहों, नानाविध, वनस्पति जड़ी बूटियों के भण्डार हों और फल पुष्प आदि के द्वारा प्राणीमात्र को वदान्यता पूर्वक वितरण करने वाले पादप समूहों के अकारण बन्धु हों, अपने गुप्त भवनों में श्वापद बन्धुओं के आश्रय दाता हों, यहीं कारण है कि आदि कवि ने यथावसर पर्वत सुषमा के बिम्बों का भी अंकन किया है । यहाँ पर श्रीराम ,जानकी और सौमित्रि के किंचित काल पर्यन्त आवास स्थान की गरिमा से गौरवान्वित चित्रकूटगिरि का एक मनोहारी चित्र देखें-

मातङ्ग यूथानुसृतं पक्षिसंधानुनादितम् ।
चित्रकूटमिमं पश्य प्रवृद्ध शिखरं गिरिम् ।।[3]
पश्येममचलं भद्रे नाना द्विजगणायुतम् ।
शिखरैः खमिवोद्विद्धैर्धातुमद्भिर्विभूषितम् ।।

---

(1) वा०रा० - किष्कि०/सर्ग 28 /39
(2) वा०रा०-किष्कि०/सर्ग 28/49
(3) वा०रा०- अयो०/सर्ग-56/10

केचिद् रजत संकाशाः केचित् क्षतजसंनिभाः ।
पीतमाजिष्ठ वर्णाश्च केचिन्मणिवर प्रभाः ।।
पुष्पार्क केतकाभाश्च केचिज्ज्योतीरसप्रभाः ।
विराजन्तेऽचलेन्द्रस्य देशा धातुविभूषिताः ।।
नानामृगगणैर्द्वीपितरक्ष्वृक्षगणैर्वृतः ।
अदुष्टैर्भात्ययं शैलो बहुपक्षिसमाकुलः ।।[1]

ऊपर हमने वाल्मीकि रामायण से प्राकृतिक दृश्यों के बिम्बोपस्थापन के परिप्रेक्ष्य में वन, नदी एवं पर्वत के शब्द चित्र इस आशय से उद्धृत किए हैं कि एतादृश प्राकृतिक काव्य , काव्य बिम्बों से व्यास की लेखनी भी अनुप्रेरित है । इस सन्दर्भ में निवेद्य यह है कि इसका आशय यह न समझा जाय कि यहाँ अनुसंधित्सु यह स्थापना प्रस्तुत करने की अनधिकृत चेष्टा कर रहा है कि महर्षि वाल्मीकि और भगवान व्यास में उपजीब्य उपजीवक भाव की कल्पना की जा रही है, हमारा उद्देश्य तो केवल यह है कि आदि कवि की भांति ही वेद व्यास के काव्य-बिम्बों में आश्चर्य जनक समानता के दर्शन होते हैं । मात्र इसी तात्पर्य से यहाँ क्रमशः अरण्य सरित, एवं पर्वत के दृश्यों के उद्धरण महाभारत से प्रस्तुत कर रहे हैं । सच तो यह है कि इन दोनों विभूतियों की अनुभूतियाँ स्वतः समुद्भूत हैं । हमारे लिए दोनों अभिनन्द्य एवं प्रणम्य हैं । अस्तु यहाँ प्रस्तावित शोध कार्य की आंशिक पूर्ति हेतु क्रमशः भगवान व्यास के भी वचन उद्धृत हैं ।

वन बिम्ब द्रष्टव्य है -

तस्य द्रोण्यां भगवतो वरूणस्य महात्मनः ।
उद्यानमृतुमन्नाम आक्रीडं सुरयोषिताम् ।।
सर्वतोऽलंकृतं दिव्यैर्नित्यं पुष्पफल द्रुमैः ।
मन्दारैः पारिजातैश्च पाटलाशोकचम्पकै : ।।
चूतैः प्रियालैः पनसैराम्रैराम्रातकैरपि ।
क्रमुकैर्नालिकेरैश्च खजूरैर्बीज पूरकैः ।।
मधूकैः सालतालैश्च तमालैरसनार्जुनैः ।
अरिष्टोदुम्बरप्लक्षैर्वटैः किंशुक चन्दनैः ।।

---

(1) वा०रा०- अयो०/सर्ग 94 /4-7

पिचुमन्दैः कोविदारैः सरलैः सुरदारूभिः ।
द्राक्षेषुरम्भा जम्बूभिर्बदर्यभयामलैः ।।
बिल्वैः कपित्थै र्जम्बीरैर्वृतो भल्लातकादिभिः ।
तस्मिन्सरः सुविपुलं लसत्काञ्चन पकंजम् ।।
कुमुदोत्पल कह्लारशतपत्र श्रियोर्जितम् ।
म-तषट्पदनिर्धुष्टं शकुन्तैश्च कलस्वनैः ।।
हसकारण्डवाकीर्णं चक्राह्वैः सारसैरपि ।
जलकुक्कुटकोयाष्टिदात्यूह कुलकूजितम् ।।
मत्य कच्छप संचार चलत्पद्मरजःपयः ।
कदम्ब वेतस नेलनीप वंजुलकैवृतम् ।।
कुन्दैः कुरबका शोकैः शिरीषैः कूटजेगृंदैः ।
कुब्जकैः स्वर्णयूथीभिर्नागपुन्नागजातिभिः ।।
मल्लिकाशतपत्रैश्च माधवीजालकादिभिः ।
शोभितं तीरजैश्चान्यैर्नित्यर्तुभिरलं द्रुमैः ।।[1]

व्यास का सरितबिम्ब इस प्रकार है --

मन्दीभूते तु पवने तस्मिन् रजसि शाम्यति ।
महद्भिर्जलधारौघैः वर्षमभ्या जगाम ह ।।[2]
ततोऽश्मसहिता धाराः संवृण्वन्त्यः समन्ततः ।
प्रययुरनिशं तत्र शीघ्रवात समीरिताः ।।[3]
तत्र सागरगा ह्यापः कीर्णमाणाः समन्ततः ।
प्रादुरासन् साकलुषाः फेनवत्यो महीरूहान् ।।[4]
वहन्त्यो वारि बहुलं फेनोडुप परिप्लुतम् ।
परिसस्नुर्महाशब्दाः प्रकर्षन्त्यो विशाम्यते ।।[5]

---

(1) भाग0 - स्कन्द 8/अ0 2/9-19/
(2) महा0- वनपर्व - 143/17
(3) " " 143/19
(4) " " / 143/20
(5) " " 143/21

व्यास का हिमालय पर्वत का बिम्ब प्रस्तुत है-

> श्रृंगैर्बहुविधाकारै र्धातुमद्‌भिरलकंकृतम् ।
> पबनालम्बिभिर्मेघैः परिषि-त्कं समन्ततः ।।
> नदीकुंज्ज नितम्बैश्च प्रासादैरूप शोभितम् ।
> गुहा कदम्ब संलीन सिंह व्याघ्रनिषेवितम् ।।
> शकुनैश्च विचित्रांगैः कूजद्‌भिर्विविधा गिराः ।
> भृंङ्गराजैस्तथा हंसै र्दात्यूहै र्जल कुक्कुटैः ।।
> मयूरैः शतपत्रैश्च जीवं जीवक कोकिलः ।
> चकोरै रसितापांङ्गैस्तथा पुत्रप्रियैरपि ।।
> जलस्थानेषु रम्येषु पद्‌मिनीभिश्च संकुलम् ।
> सारसानां च भ्रमरैर्व्याहृतैः समलंकृतम्।।
> किन्नरैरप्सरोभिश्च निषेवित शिलातलम् ।
> दिग्वारण विषाणाग्रैः समन्ताद् घृष्टपादमम् ।।[1]

ऊपर हमने वाल्मीकि और व्यास के प्राकृतिक बिम्बों के परिप्रेक्ष्य में बन नदी और पर्वतीय, सुषमा के उद्धरण दिये हैं । जिससे यह सुस्पष्ट हो जाता है कि यह मानव मात्र के चि-त में सर्वत्र साम रस्य अनुस्यूत है किन्तु एतदर्थ बुद्धि में आर्जव एवं हृदय मे निर्मलता अपेक्षित है । तभी तो हम दोनों महाविभूतियों के काव्य बिम्बों में एकात्मता के दर्शन करते हैं ।

ऐसा ही चमत्कारी चन्द्रोदय का बिम्ब आदि कवि के रामायणसे उद्धृत है । जिससे व्यास का चन्द्रोदय वर्णन परक बिम्ब अनुप्राणित प्रतीत होता है ।

> चन्द्रोऽपि साचिव्य मिवास्य कुर्वं
> स्तारागणै र्मध्यगतो विराजन् ।
> ज्योत्स्ना वितानेर्वितत्य लोका-
> नु-त्तिष्ठतेऽनेक सहस्त्र रश्मिः ।।
> शंख प्रभं क्षीरमृणालवर्ण-
> मुद्गच्छमानं व्यवभासमानम् ।
> ददर्श चन्द्रं स कपि प्रवीरः
> पोप्लूयमानं सरसीव हंसम् ।। [2]

---

(1) महा0- वनपर्व 108/5-10

(2) वा0रा0- सु0/सर्ग-2/57-58

चन्द्रोदय बिम्बपरक दो छन्द श्रीमद् भागवत से उद्धृत हैं, वे इस प्रकार हैं:-

ततोडुराजः ककुभः करैर्मुखं
  प्राच्या विलिम्पन्नरूणेन शन्तमैः ।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्
  प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः।।
दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं
  रमाननाभं नवकुकुंमारूणम् ।
वनं च तत्कोमलगोऽभिरंजितं
  जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ।।[1]

उपर्युन्त उद्धरणों से यह कथन अनुचित न होगा कि व्यास पर वाल्मीकि रामायण का पर्याप्त प्रभाव है ।

भास :-

इससे पूर्व हमने व्यास पर वाल्मीकि की प्रभावान्विति की चर्चा की है । इसी सन्दर्भ में भास की कृतियों के सन्दर्भ में मीमांसा कर रहे हैं । रामायण के परिप्रेक्ष्य में भास की कृतियों का चिन्तन-मनन करते हैं तो इस परिणाम पर पहुँचते है कि भास आदिकवि वाल्मीकि से बहुत प्रभावित हैं ।

यद्यपि भास ने वाल्मीकि की भांति राम के कथानक का चित्रण विस्तार से नहीं किया है । कवि ने प्रतिमा एवं अभिषेक नाटक में राम का कथानक अंकित किया है ।

प्रतिमा नाटक में ऐसे स्थल प्रचुर मात्रा में प्राप्य हैं जहाँ वाल्मीकि का प्रभाव झलकता है । भास ने प्रतिमा नाटक की कथावस्तु रामायण से ली है ।

सच तो यह है कि प्रतिमा नाटक एवं अभिषेक नाटक दोनों में भास वाल्मीकि से अनुगृहीत हैं । यहाँ हम दो एक उदाहरण ही देकर इसकी पुष्टि कर रहे हैं । राम वनवास के प्रसंग में लक्ष्मण की भूमिका एक क्रोधाविष्ट भ्रातृ-प्रेमी, युद्ध-वीर के रूप में वाल्मीकि ने प्रस्तुत की है । सुतराम् सौमित्रि का यही रूप प्रतिमा नाटक में भी दृष्ट है । वाल्मीकि ने, लक्ष्मण राम वनवास का समाचार

---

(1) भाग0 स्कन्द 10/अ0 29 / 2-3

सुनकर क्षुभित हो जाते हैं, और उनका यह अग्रज-प्रेम पिता की अवमानना में किंचित भी संकोच नहीं करता । निश्चय ही इस स्थल में भास वाल्मीकि से अनुगृहीत हैं । क्रोधाविष्ट लक्ष्मण के दोनों कृतियों में समान रूपेण बिम्ब दर्शनीय हैं । यथा- वाल्मीकि के लक्ष्मण का बिम्ब-

मया पार्श्वे सधनुषा तव गुप्तस्य राघव ।
कः समर्थोऽधिकं कर्तुं कृतान्तस्येव तिष्ठतः ।।
निर्मनुष्यामिमां सर्वामयोध्यां मनुजर्षभ ।
करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैर्यदि स्थास्यति विप्रिये ।।
भरतस्याथ पक्ष्यो वा यो वास्य हितमिच्छति ।
सर्वास्तांश्च वधिष्यामि मृदुर्हि परिभूयते ।।
प्रोत्साहितोऽयं कैकेय्या संतुष्टो यदि नः पिता ।
अमित्र भूतो निःसंगं वध्यतां वध्यतामपि ।।
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथं प्रति पन्नस्य कार्यं भवति शासनम् ।।
बलमेष किमाश्रित्य हेतुं वा पुरूषो-तमः ।
दातुमिच्छति कैकेय्यै उपस्थितमिदं तव ।।
त्वया चैव मया चैव कृत्वा वैरमनु-तमम् ।।
कास्य श-क्तः श्रियंदातुं भरतायारिशासन ।।
अनुर-क्तोऽस्मि भावेन भ्रातरं देवि त-त्वतः ।
सत्येन धनुषा चैव द-त्तेनेष्टेन ते शपे ।।
दीप्तमग्निमरण्यं वा यदि रामः प्रवेक्ष्यति ।
प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय ।।
हरामि वीर्याद् दुःखं ते तमः सूर्य इवोदितः ।
देवी पश्यतु मे वीर्यं राघवश्चैव पश्यतु ।।
हनिष्ये पितंर वृद्धं कैकेय्यास-क्त मानसम् ।.
कृपणं च स्थितं बाल्ये वृद्धभावेन गर्हितम् ।।[1]

---

[1] वा0रा0- अयो0 / सर्ग 21/ 9-19

इसी भांति भास के लक्ष्मण का बिम्ब--

यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश मा दया
स्वजननिभृतः सर्वोऽप्येवं मृदुः परिभूयते ।
अथ न रूचितं मुंच त्वं मामहं कृत निश्चयो ।
युवति रहितं लोकं कर्तुं यतश्छलिता वयम् ।।[1]

उपर्युक्त दोनों शब्द चित्रों में कितना अद्भुत साम्य है, यह कहने की बात नहीं क्यो कि साम्य सुस्पष्ट है इस पर भी विशेष लक्ष्य करने की बात तो यह है कि यहाँ पर भास ने वाल्मीकि का न केवल भावानुकरण ही प्रत्युत शब्दानुकरण भी किया है । जैसा कि ' मृदुर्हि परिभूयते ' (वाल्मीकि) ' मृदुः परिभूयते ' (भास) इससे अधिक प्रमाण की सम्भवतः सुधीजनों को अपेक्षा नहीं होगी ।

एक स्थल और देखिए- गुरू वसिष्ठ एवं अमात्यों के परामर्श के बावजूद वाल्मीकि के भरत राम के विना अयोध्या में एकक्षण भी ठहरना उचित नहीं समझते वे निश्चय करते हैं कि या तो वह अपने अग्रज को अयोध्या लौटा लाऐंगे अथवा स्वयं भी कानन में बास करेंगे ।

रामेवानुगच्छामि स राजा द्विपदांवरः ।
त्रयाणामपि लोकानां राघवो राज्यमर्हति ।।
तद्वाक्यं धर्म संयु-क्तं श्रुत्वा सर्वे सभासदः ।
हर्षान्मुमुचुरश्रूणि रामे निहितचेतसः ।।
यदि त्वार्यं न शक्ष्यामि विनिवर्तयितुं वनात् ।
वने तत्रैव वत्स्यामि यथार्यो लक्ष्मणस्तथा ।।[2]

ठीक यही निश्चय भास के भरत का भी है । सुमंत्र वसिष्ठ वामदेव की विज्ञप्ति के साथ यह तर्क देते हैं कि जिस भांति गोपालक के बिना गायें अपालित होकर नष्ट हो जाती हैं इसी तरह राजा के बिना प्रजा का नाश हो जाता है । इस स्थिति में वह भरत को राजकर्तृत्व रूप कर्तव्य-बोध को संकेतित करते हैं किन्तु , भरत सब कुछ अनसुनीकर अपना कर्तव्य निर्धारण स्वयं करते हैं।

---

(1) प्रति० - सर्ग । / 18

(2) वा०रा०- अयो०/सर्ग 82/ 16-18

उन्होने दृढ़ता से कहा-

तत्र यास्यामि यत्रासौ वर्तते लक्ष्मण प्रियः ।
नायोध्या तं बिनायोध्या सायोध्या यत्र राघवः ।।[1]

भास का रामचरित परक दूसरा नाटक ' अभिषेक ' नाटक है । जिसमें महाकवि भास ने राम के राज्याभिषेकान्त कथानक का चित्रण किया है । किन्तु प्रतिमा नाटक जैसी लोक प्रियता अभिषेक की नहीं हुई । फिर भी अध्ययन के पश्चात् हम इस तथ्य पर पहुँचे हैं कि इस नाटक पर वाल्मीकि का पर्याप्त नहीं तो आंशिक प्रभाव अवश्य पड़ा है । एतदर्थ दोनों कृतियों के एक एक ही शब्द चित्र पर्याप्त होंगे ।

आदि कवि के राम ने सेतुबन्ध से पूर्व समुद्र के प्रति रोष प्रकट किया था जिससे समुद्र के भीतर हड़कम्प मच गया थोड़ा दृष्टिपात करें ।

तोयवेगः समुद्रस्य समीन मकरो महान् ।
स बभूव महाघोरः समारूतरबस्तथा ।।
महोर्मिमालाविततः शंखशुन्क्ति समावृतः ।
सधूमः परिवृन्तोर्मिः सहसासीन्महोदधिः ।।
व्यथिताः पन्नगाश्चासन् दीप्तास्या दीप्त लोचनाः ।
दानवाश्च महावीर्याः पातालतलवासिनः ।।
ऊर्मयः सिन्धुराजस्य सनक्रमकरास्तथा ।
विन्ध्यमन्दर संकाशः समुत्पेतुः सहस्त्रशः ।।
आघूर्णिततरंगौघः सम्भ्रान्तोरग राक्षसः ।
उद्धर्तित महाग्राहः सघोषो वरूणालयः ।।[2]

ऐसा ही एक शब्द चित्र अभिषेक नाटक में देखिए-

क्वचित् फेनोद्गारी क्वचिदपि च मीनाकुल जलः ।
क्वचिच्छंखाकीर्णः क्वचिदपि च नीलाम्बुद निभः ।।
क्वचिद्वीचीमालः क्वचिदपि च नक्रप्रतिभयः ।
क्वचिद् भीमावर्तः क्वचिदपि च निष्कम्पसलिलः ।।[3]

---

(1) प्रति० - अंक । /18
(2) वा०रा०- युद्ध०/सर्ग- 21/28-32
(3) अभि०- 4/10

भास कवि का प्रतिमानाटक तो राम के कथानक से सम्बद्ध ही है । परन्तु उसमें यत्र तत्र वाल्मीकि रामायण की कथावस्तु की अपेक्षा कुछ भिन्नता दृष्टिगोचर होती है । उदाहरणार्थ भरत का मातुल गृह से आगमन के अवसर पर अयोध्यापुरी के समीप अपने पूर्वजों की प्रतिमाओं का दर्शन इसी भांति प्रतिमानाटक के आधार पर भरत अनुज कहे गये हैं:-

भरतः - एवं गुरूरसं । आर्य ! अभिवादय ।
लक्ष्मणः - एहि एहि आयुष्मान् भव । [1]

प्रतिमा नाटक के अनुसार लक्ष्मण अभिवादन स्वीकार कर भरत को आयुष्मान् होने का आर्शीवाद करते हैं। जबकि वाल्मीकि के अनुसार भरत लक्ष्मण का प्रणाम ग्रहण कर राम और जानकी का अभिवादन करते हैं:-

ततोलक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं चपरंतपः ।
अथाभ्यवादयत् प्रीतो भरतोनाम चाब्रवीत् ।।[2]

यद्यपि वाल्मीकीय रामायण की प्रभावान्विति के सन्दर्भ में भास के अन्य नाटकों को भी अध्ययन का विषय बनाया जा सकता था किन्तु हमने विस्तार भय से केवल राम चरित परक नाटकों को ही एतदर्थ अध्ययन का विषय बनाया है ।

कहने का तात्पर्य यह है कि जैसा कि हम ऊपर उपपादित कर चुके हैं कि अन्य परवर्ती कवियों की भाँति भास पर आदिकवि के रामायण का पर्याप्त प्रभाव है ।

कालिदास :-

ऊपर हमने भास कवि पर वाल्मीकि की प्रभावान्विति की चर्चा की है इसी परम्परा में हम कविकुल गुरू विश्वकवि कालिदास की कृतियों के सन्दर्भ में कुछ मीमांसा कर रहे हैं कि कालिदास पर आदि कवि का कैसा प्रभाव पड़ा है । संस्कृत साहित्य जगत् में वाल्मीकि और व्यास के पश्चात् कालिदास बहुत बड़ा नाम है । पाश्चात्य लेखकों की धारणा है कि आधुनिक भारत को समझने के लिए वाल्मीकि और व्यास की कृतियों से भी अधिक कालिदास की कृतियाँ उपादेय हैं । सचमुच ही आज का भारत कालिदास का भारत है ।

---

(1) प्रति0- अंक 4 /पृ0 135-136

(2) वा0रा0 युद्ध / सर्ग 127 / 42

कालिदास के वैदुष्य एवं कवि-त्व का आयाम अतिविस्तृत एवं विशाल है । परवर्ती कवियों पर कालिदास का अवदान अत्यन्त मह-त्व पूर्ण है किन्तु, जब हम रामायण के परिप्रेक्ष्य में कालिदास की कृतियों पर चिन्तन मनन करते हैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कालिदास वाल्मीकि से बहुत अनुगृहीत हैं । रघुवंश महाकाव्य के आरम्भ में एक अनुष्टुप् के माध्यम से कालिदास ने आदिकवि के ऋण को मु-क्त कंठ से स्वीकारा है ।[1]

यद्यपि कालिदास ने वाल्मीकि की भांति राम के कथानक का चित्रण विस्तार के साथ नहीं किया है रघुवंश महाकाव्य में सूर्यवंशी राजाओं का चरित्र चित्रण करते हुए रामचरित्र को भी वर्ण्य-विषय बनाया है किन्तु उनके काव्य का प्रतिपाद्य रघुवंश के उदा-तचरित संवलित महापुरूष रहे हैं । उन्हीं में कवि ने राम के कथानक को भी अंकित किया है । फिर भी उनकी सभी कृतियों पर वाल्मीकि की छाप पड़ी है । वाल्मीकि रामायण के एक सर्ग में राम के व्य-क्तित्व का जिस प्रकार का मूल रूप से अंकन किया गया है उसी की अनुकृति रघुवंश के प्रारम्भिक पद्यों में पाई जाती है । संस्कृत साहित्य में जैसा ह्रदय प्रसाद गुणोपेत कवि-त्व रामायण में दृष्ट है ठीक वैसा ही भाव एवं नाद सौन्दर्य कालिदास की रचनाओं में दिखाई पड़ता है । प्राकृतिक दृश्यों के बिम्बन में कालिदास वाल्मीकि का पूर्णतः अनुसरण करते प्रतीत होते हैं । वाल्मीकि रामायण के वन वर्णन के साथ कालिदास द्वारा चर्चित वन वर्णन प्रायः एक जैसा है ।

वाल्मीकि रामायण में यद्यपि राम के पौरूष का ही सांगोपांग विवेचन किया गया है फिर भी आदि कवि की दृष्टि में जनकात्मजा सीता का चरित्र ही अधिक सहृदयैक संवेद्य है । इस बात को आदि कवि ने मु-क्त कंठ से स्वीकारा है ।

' सीतायाश्चरितं महत् '[2] कवि की यह स्पष्ट उ-क्ति है । कालिदास ने भी जानकी निर्वासन के सन्दर्भ में जनकात्मजा के व्य-क्तित्व का जैसा मनोरम चित्रण किया है उसके आगे राम का व्य-क्ति-त्व बौना प्रतीत होता है ।[3]

इसके अतिरि-क्त रघुवंश महाकाव्य में ऐसे स्थल प्रचुर मात्रा में मिल जायेगें जहाँ वाल्मीकि रामायण का प्रभाव झलकता है ।

---

(1) अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन पूर्वसरिभिः ।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः ।। रघु0 1/4

(2) वा0रा0- बाल0/सर्ग4/7

(3) वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा बह्नौ विशुद्धामपि यत् समक्षम् ।
मां लोकापवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत् सदृशं कुलस्य ।। रघु0-सर्ग 14/61

कवि का कुमार-संभव नामक महाकाव्य यद्यपि पार्वती परमेश्वर के कथानक पर आधारित है और उसमें आपततः श्रृंगार रस का अतिरेक सा प्रतीत होता है । किन्तु वाल्मीकि ने व्यापक रूप में जिस कौटुम्बिक काव्य-पट के ताने बाने को साजा संवारा है और जिसमें नर, वानर और राक्षस कुल के कुटुम्बों को रूपायित किया गया है जिसका धरातल अति विस्तृत, विशद एवं विशाल है । कालिदास ने शिव और पार्वती के कुटुम्ब का बहुत ही मनोरम ढंग से अंकन किया है । निश्चय ही वाल्मीकि की सीता, मन्दोदरी, तारा की उदात्तता कालिदास की पार्वती में देखी जा सकती है । वाल्मीकि की सीता यदि रावण की लंका के ऐश्वर्य को दुत्कार देती है तो कालिदास की पार्वती भी अनेक प्रलोभनों के पश्चात् भी भुलावे में न आकर भूतेश्वर दिगम्बर वर को सहज स्वीकार करती हैं । लगता तो ऐसा है, कि कालिदास ने अतिशय वैदग्धी के साथ वाल्मीकि की नारी के नारीत्व को अपने नारी पात्रों में ढाला है । रघुवंश की सीता, शाकुन्तल की शकुन्तला और मेघदूत की यक्ष पत्नी इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

कालिदास का विश्व प्रसिद्ध नाटक शाकुन्तल जो कवि की अनुपम कृति है उसमें अंगुलीयक (मुद्रिका) की महत्त्व पूर्ण भूमिका है । क्या वाल्मीकि रामायण का मुद्रिका प्रकरण उसका प्रेरणास्रोत नहीं कहा जा सकता है ? इतना ही नहीं वाल्मीकि की प्रवासिता सीता के साथ प्रवासिनी शकुन्तला की तुलना असंगत ठहरती है ? या कि फिर वाल्मीकि आश्रम में पालित-पोषित सीता के पुत्र लव-कुश के साथ शाकुन्तलेय सर्वदमन की तुलना नहीं की जा सकती ? यह भी एक अद्भुत साम्य है । कि सीता पुत्रों की भांति सर्वदमन (भरत) को भी शैशव में अपने जनक का अतापता नहीं ।

कालिदास का मेघदूत जो एक काल्पनिक कथानक पर आधारित है जिसके विषय मे सुधी जनों का बहुधा अनुमान है कि विश्व कवि कालिदास ने प्रच्छन्न रूप से राम जानकी के वियोग का ही चित्रण यक्ष दम्पति के माध्यम से किया है मेघदूत की कुछ पंक्तियाँ इसी ओर संकेत करती हैं

' जनकतनया स्नानपुण्योदकेषु '[1] ' किंच ' इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा'[2] इस पन्क्ति से तो उपर्युक्त सन्देह की पुष्टि और अधिक हो जाती है । यद्यपि कहने भर के लिए मेघदूत श्रृंगार रस निर्भरित खण्ड काव्य है किन्तु प्रतीत तो ऐसा होता है कि आदि कवि वाल्मीकि जिस सजधज के साथ जनकात्मजा के पातिव्रत्य के माध्यम से भारतीय नारी के व्यक्तित्व का ध्वजो-तोलन करते हैं ठीक उसी शैली में कालिदास विरहिणी यक्षिणी के व्याज से वही पुनीत कार्य सम्पादित कर रहे हैं । 'अशोकवनिकस्था एकवेणीधरा सीता' की भांति कालिदास की यक्ष पत्नी की कारुणिक दशा कुछ

---

(1) पू0 मे0 - श्लोकसं0 01

(2) उ0मेघ0 - " 36

कम नहीं प्रतीत होती यह बात दूसरी है कि वाल्मीकि की सीता का दुःख अशोक वनिका में निरवधि था जबकि यक्ष पत्नी का विरह सावधि किन्तु, कालिदास की शकुन्तला तो साक्षात् करूणा की प्रतिमा है । जो न केवल पति परित्यक्ता है साथ ही पितृ कुल वंचिता भी फिर भी अदम्य धैर्य और साहस के साथ वह अपने आत्मज का लालन-पालन करती है ।

तात्पर्य यह है कि ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास ' सूत्रस्येवास्ति मे गतिः ' कह कर रघुवंश महाकाव्य की निर्माण सरणि ही नहीं परिपुष्ट कर रहे थे प्रत्युत वाल्मीकि जिस वैदिक संस्कृति को राम के चारित्र के माध्यम से व्याख्यायित कर गये थे कालिदास भी आदि कवि की अनुकृति पर अपनी कृतियों के माध्यम से उसी भारतीय संस्कृति लता को शील शब्द से अभिहित कर पुष्पित पल्लवित एवं प्रतिफलित कर गये हैं ।

घ- अश्वघोष -

संस्कृत साहित्य जगत में कालिदास के पश्चात् अश्वघोष का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है । अश्वघोष ने दो महाकाव्य लिखे हैं बुद्धचरित एवं सौन्दरनन्द । जिनमें क्रमशः तथागत बुद्ध एवं उनके अनुज सौन्दरनन्द का चरित्र समुपवर्णित है । अश्वघोष बौद्ध धर्मावलम्वी थे । संस्कृत के उत्कृष्ट कवि थे और वाल्मीकि से प्रभावित भी, उन्होने स्पष्ट रूप से वाल्मीकि को आदिकवि स्वीकारा है । बुद्ध चरित में वे लिखते हैं । ' वाल्मीकिरादौ च ससर्ज पद्यम्' [1] अर्थात् वाल्मीकि ने सर्व प्रथम पद्य की रचना की । इससे स्पष्ट है । कि अश्वघोष वाल्मीकि कृत रामायण को अपना मार्गदर्शक काव्य मानते हैं । उनके बुद्धचरित नामक महाकाव्य के आरम्भ में ही पुत्र जन्म के पश्चात् जो समाबांधा गया है । उस पर वाल्मीकि का प्रभाव स्पष्ट है । वाल्मीकि ने राम के जन्म का हेतु लोक संरक्षण दिखलाया है देवता दैत्यों से उत्पीड़ित होते हैं वे ब्रह्मा जी के पास अपनी व्यथा सुनाने पहुँचते हैं इस पर ब्रह्मा विचारमग्न होते हैं कि भगवान विष्णु का वहीं प्राकट्य होजाता है । भगवान विष्णु ब्रह्माजी एवं देवताओं को आश्वस्त करते हैं । कि मैं मनुष्य रूप में शीघ्र ही अवतरित होकर लोक संरक्षण करूँगा।

---

(1) बु0 च0 - सर्ग-1/43

अश्वघोष ने वाल्मीकि की इस प्रक्रिया को परिवर्तित रूप दे दिया है महाराजा शुद्धोधन के घर बालक बुद्ध के जन्म के पश्चात् देवताओं एवं सारी सृष्टि को आह्लादित होने को बिम्बित किया है । यहाँ भी बुद्ध का प्राकट्य लोक हिताय ही होता । अश्वघोष लिखतें हैं-

ततः प्रसन्नश्च बभूव पुष्यतस्याश्च देव्याव्रतसंस्कृतायाः ।
पार्श्वात् सुतो लोकहिताय जज्ञे निर्वदनं चैव निरामयं च ।। [1]

फिर तो चराचर जगत में जो प्रसन्नता की लहर फैली उसका चित्र निम्नांकित पद्यो में देखिए-

दीप्त्या च धैर्येण च यो रराज बालो रविर्भूमिमिवावतीर्णः ।
तथातिदीप्तोऽपि निरीक्ष्यमाणोजहार चक्षूंषि यथा शशांकः ।।
सहि स्वगात्रप्रभया ज्वलन्त्या दीपप्रभां भास्करवन्मुमोष ।
महार्ह जाम्बूनदचारूवर्णो विद्योतयमास दिशश्च सर्वाः ।।
अनाकुला कुब्ज समुद्गधृतानि निष्पेषवद्व्यायत विक्रमाणि ।
तथैव धीराणि पदानि सप्त सप्तर्षितारा सदृशो जगाम ।।
बोधाय जातोऽस्मिजगद्धितार्थमन्त्याभवोत्पन्तिरियं ममेति ।
चतुर्दिशं सिंहगतिर्विलोक्य वाणीं च भव्यार्थकरीमुवाच ।।
खात्प्रसृते चन्द्रमरीचिशुभ्रे द्वे वारिधारे शिशिरोष्ण वीर्ये ।
शरीरसंस्पर्शसुखान्तराय निपेततुर्मूर्धनि तस्य सौम्ये ।।
श्रीमद्विताने कनकोज्जलांङ्गे वैदूर्यपादे शयने शयानम् ।
यद्गौरवात्कांचनपद्महस्ता यक्षाधिपाः संपरिवार्य तस्थु :।।
अदृश्यरूपाश्च दिवौकसः खे यस्य प्रभावात् प्रणतैः शिरोभिः ।
अधारयन् पाण्डुरमातपत्र बोधाय जेपुः परमाशिषश्च ।।
महोरगा धर्मविशेषतर्षाद् बुद्धेष्वतीतेषु कृताधिकाराः ।
ममव्यजन भक्ति विशिष्टनेत्रा मन्दार पुष्पैः समवाकिंरश्च ।।
तथागतोत्पादगुणेन तुष्टाः शुद्धाधिवासाश्च विशुद्धसत्वाः ।
देवाः ननन्दु र्विगतेऽपि रागे मग्नस्य दुःखे जगतोहिताय ।। [2]

---

(1) बु० च०- सर्ग । /9
(2) बु० च० - सर्ग 1/12-20

वाल्मीकि के कथा नायक श्रीराम में एवं अश्वघोष के कथानायक तथागत बुद्ध में अद्भुत साम्य है । वाल्मीकि के राम राजपाट छोड़कर अपने जीवन के चतुर्दश वर्ष अरण्य में व्यतीत करते हैं । भगवान बुद्ध भी राज्य वैभव छोड़कर आजीवन भिक्षु का जीवन बिताते हैं । किन्ही अंशो में तथागत का चरित्र राम से आगे निकल जाता है । राम वनवास के लिए बाध्य किए जाते हैं बुद्ध स्वेच्छया गृह त्याग करते हैं । राम चतुर्दश वर्ष के पश्चात् राज्यभार फिर से स्वीकार करते हैं किन्तु गौतम नहीं । राम के लिए धर्म की रक्षा के लिए अस्त्र शस्त्रों की अपेक्षा होती है किन्तु तथागत बुद्ध ऐसा नहीं करते राम को भी हिंसा के प्रति प्रीति नहीं किन्तु धर्म रक्षार्थ वह हिंसा से भी नहीं हिचकते । किन्तु तथागत का 'अहिंसा परमो धर्मः' का उद्घोष जगत प्रसिद्ध है । फिर भी लक्ष्य दोनों का एक है लोक हित ।

अश्वघोषने के राम की जगह बुद्ध को प्रतिष्ठापित किया सारांश यह कि अश्वघोष की कविता में वाल्मीकि के बिम्बों का प्रभाव दिखता है । लगता तो ऐसा है कि राम का शौर्य और भरत की विनय भावना इन दोनों को अश्वघोष ने बुद्ध चरित में प्रतिबिम्बित किया है । बुद्ध चरित यद्यपि शान्तरस का काव्य है उसी के पोषण के लिए अश्वघोष ने तथागत बुद्ध जैसे विरक्त पुरूष को आदर्श चरित नायक बनाया, किन्तु कवियों ने श्रृंगार रस को रस राज कहा है । इसलिए उसकी उपेक्षा करने का साहस कोई नहीं कर सका । बुद्ध चरित में श्रृंगार रस का बिम्ब दर्शनीय है जिसमें कतिपय सुन्दर युवतियों की भाव भंगिमाएँ अंकित हैं और वे रावण के अन्तःपुर में प्रसुप्ता युवतियों की याद दिलाती हैं।[1]

तस्य ता वपुषाक्षिप्ता निगृहीतं जजृम्भिरे ।
अन्योऽन्यं दृष्टिभिर्हत्वा शनैश्च विनिशश्वसुः ।।
मदेनावर्जिता नाम तं काश्चित्तत्र योषितः ।
कठिनैः पस्पृशुः पीनैः संहतैर्वल्गुभिः स्तनैः ।।
स्रस्तांस. कोमलालम्ब मृदु बाहुलता बला ।
अनृतं स्खलितं काचित्कृत्वैनं सस्वजे बलात् ।।
काचिदाज्ञापयन्तीव प्रोवाचाद्रानुलेपना ।
इह भक्ति कुरूष्वेति हस्तसंश्लेशलिप्सया ।।
मुहुर्मुहुर्मदव्याजस्रस्त नीलांशुकापरा।
आलक्ष्य रसना रेजे स्फुरद्विद्युदिव क्षपा ।।[2]

---

(1) वा0रा0- सु0/सर्ग 10/ 32-49

(2) बु0च 0- सर्ग 4/श्लोक 6, 29, 32, 33

बुद्ध चरित के प्रस्तुत श्लोकों मे उत्प्रेक्षा के माध्यम से जिस बिम्ब की प्रस्तुति की गई है, वह वाल्मीकि के श्लोकद्वय से प्रभावित है ।[1]

वातायनेभ्यस्तुविनिःसृतानि परस्परायासित कुण्डलानि ।
स्त्रीणां विरेजुर्मुखपड्कजानि सन्तानि हर्म्येष्विव पड्कजानि ।।[2]

आदि कवि ने सुन्दरकाण्ड मे पानभूमि मे सोई हुई स्त्रियों का स्वभाविक बिम्ब प्रस्तुत किया है । उसका उद्धरण प्रस्तुत है-

मुरजेषु मृदंगेषु चेलिकासु च संस्थिताः ।
तथाऽऽस्तरण मुख्येषु संविष्टाश्चापराः स्त्रियः ।।[3]

इसी भांति अश्वघोष अपने बुद्ध चरित में बिम्ब चित्र प्रस्तुत करते हैं:-

अभवच्छयिता हि तत्र काचिद् विनिवेश्य प्रचले करे कपोलम् ।
दयितामपि रूक्मपत्र चित्रां कुपितेवाङ्गतां विहाय वीणाम् ।।
विभौकर लग्न वेणुरन्या स्तनविस्रस्त सितांशुका शयाना ।
ऋजुषट्पदपड्क्ति जुष्ट पद्मा जलफेन प्रहसन्तटा नदीव ।।
नव पुष्कर गर्भ कोमलाभ्यां तपनीयोज्जवल सङ्गताङ्गदाभ्याम् ।
स्वपिति स्म तथापरा भुजाभ्यां परिरभ्य प्रियवन्मृदंगमेव ।।[4]

दोनों महाकवियों के काव्य बिम्बोंकेसाम्यता का द्योतन होता है फिर भी आदि कवि के बिम्ब में पानभूमि की स्वाभाविकता का दृश्यांकन है । जबकि अश्वघोष देवताओं के द्वारा बुद्ध के निश्चित अभिप्राय को जानकर प्रमदाओं को निद्रित तथा चेष्टाओं से विकृत कर बिम्बित करते हैं । फिर भी दोनों स्थलों पर प्रमदाओं की निद्रा का अंकन है जिसमें आदि कवि का प्रभाव अश्वघोष पर परिलक्षित है ।

आदि कवि ने यह अतीत् और अनागत कालीन राम की कोमलता और वन की कठिनता का

---

(1) तासां संवृ-तदान्तानि मीलिताक्षीणि मारूतिः ।
अपश्यत पद्म गंधीनि वदनानि सुयोषिताम् ।।
प्रवुद्धानीव पद्मानि तासां भूत्वा क्षपाक्षये ।
पुनः संवृतपत्राणि रात्राविव वभुस्तदा ।। वा0रा0 सु0/सर्ग-9/36-37

(2) बु0 च0 - सर्ग 3/ 19

(3) वा0 रा0 - सु/ सर्ग ।। /06

(4) बु0च0- सर्ग 5/ 48-50

चित्र खीचकर पाठक या श्रोता के हृदय में करूणा और सहानुभूति को जगाने की सफलता प्राप्त की है। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

य: सुखेनोपधानेषु शेते चन्दनरूषित: ।
वीज्यमानो महार्हाभि: स्त्रीभिमर्म सुतो-तम: ।।
स नूनं क्वचिदेवाद्य वृक्ष मूलमुपाश्रित: ।
काष्ठं वा यदि वाश्मानमुपधाय शयिष्यते ।।
उत्थास्यति च मेदिन्या: कृपण: पांसुगुण्ठित: ।
विनि:श्वसन् प्रस्रवणात् करेणूनाभिवर्षभ: ।।
द्रक्ष्यन्ति नूनं पुरूषा दीर्घ बाहुं वनेचरा: ।
राममुत्थाय गच्छन्तं लोकनाथमनाभवत् ।।[1]

इसी भांति अश्व-घोष ने तथागत बुद्ध के गृह त्याग के समय अन्त:पुर के विलाप के समय राजकुमार बुद्ध की कोमलता और वन की कठिनता का स्वाभाविक चित्र उकेरा है-

सुजातजालाव-तागुंली मृदूनिगूढ़ गुल्फौ बिस पुष्प कोमलौ ।
वनान्तभूमिं कठिनां कथं नु तौ सुचक्रमध्यै चरणौ गमिष्यत: ।।
विमान पृष्ठे शयनासनोचिंत महार्ह वस्त्रागरू-चन्दनार्चितम् ।
कथं नु शीतोष्ण जलागमेषु तच्छरीरमोजास्वि वने भविष्यति ।।
कुलेन सत्वेन बलेन वर्चसा श्रुतेन लक्ष्म्या वयसा च गर्वित: ।
प्रदानमेवाभ्युचितो न याचितुं कथं स भिक्षा परतश्चरिष्यति ।।
शुचौ शयित्वा शयने हिरण्यमये प्रबोध्यमानो निशितूर्य निस्वनै: ।
कथं बत स्वप्स्यति सोऽद्य मे व्रती पटैक देशान्तरिते महीतले ।। [2]

दोनों ही काव्य बिम्बों में अतीत तथा अनागत कालीन कोमलता तथा कठिनता का बिम्ब प्रस्तुत हुआ है जिससे प्रतीत होता है कि अश्वघोष आदि कवि से प्रभावित हैं ।

---

(1) वा0रा0- अयो0 /सर्ग 42/ 15-18

(2) बु0 च0 - सर्ग 8/ 55-58

करूण रस की प्रभावान्विति में भी अश्वघोष आदि कवि से अनुगृहीत हैं । दोनों महाकवियों का एक एक बिम्ब चित्र प्रस्तुत है ।

आदि कवि के राम अपने को धिक्कारते हैं कि दुःख सह कर चिरकाल तक पालन पोषण करने वाली माता को सुख भोगने का अवसर आने पर उसे अपने से विलग कर दिया है :-

मयाहि चिरपुष्टेन दुःख संवर्धितेन च ।

विप्रयुज्जत कौसल्या फल काले धिगस्तु माम् ।।[1]

इसी भांति अश्वघोष के बुद्धचरित में तथागत बुद्ध अपने को धिक्कारते हैं इसका एक उदाहरण प्रस्तुत है ।

महत्या तृष्णाया दुःखै गर्भेणास्मि यथा धृतः ।

तस्या निष्फल यत्नायाः क्वाहं मातुः क्व सा मम ।।[2]

दोनों ही महाकवियों के काव्य बिम्बों में माता की सेवा से वंचित होने पर राम और तथागत बुद्ध अपने को धिकारते हैं ।

सारांश यह है कि अश्वघोष की कविता के बिम्ब स्थान-स्थान पर वाल्मीकि के काव्य बिम्बों से अनुप्राणित हैं । उपर्युन्क्त कतिपय उद्धरणों से यह स्पष्ट है ।

ड- भवभूति -

बिम्बोस्थापन की दृष्टि से वाल्मीकि रामायण से प्रभावित होने वाले प्रमुख कवियों की श्रृंखला में महाकवि भवभूति का नाम जुड़ना स्वाभाविक है । भवभूति कालिदास के पश्चात् उत्कृष्ट नाटककारों में गिने जाते हैं । उनकी तीन कृतियाँ प्रसिद्ध हैं महावीरचरितम्, उत्तररामचरितम् और मालतीमाधवम् । इनमें से प्रथम दो रामकथा परक हैं और अन्तिम रचना प्रकरण है , जो काल्पनिक कथानक के आधार पर कल्पित हुई है । यद्यपि भवभूति की उपर्युन्क्त रचनाएँ सभी उत्कृष्ट हैं।किन्तु

---

(1) वा0रा0 - अयो0/ सर्ग 53/ 20

(2) सं0 सा0 इ0- पृष्ठ 78 मंगलदेव शास्त्री

इनमें उत्तरराम चरितम् अद्वितीय है । विद्वानों की यह सूक्ति स्वभाविक है ' उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते' अर्थात् उत्तर रामचरित नाटक में वह उत्कृष्टता है जिससे अन्य नाटककार उसकी विशिष्टता को स्वीकार करते हैं ।

यद्यपि लेखक का 'महावीर चरितम्' भी राम के कथानक पर ही आधारित है किन्तु उसमें कोई विशिष्टता नही दीखती । किन्तु 'उत्तर रामचरितम्' भवभूति का ऐसा नाटक है जिसके माध्यम से कवि प्रथम श्रेणी के कवियों में अपना गौरव पूर्ण स्थान बनाने में समर्थ हुआ हैं। जैसा कि नाम से स्पष्ट है 'उत्तर रामचरितम्' रामचरित्र के उस कथानक पर निर्मित हुआ है जिसकी चर्चा वाल्मीकि अपने रामायण के अन्तर्गत युद्धकाण्ड पर्यन्त नहीं करते । उत्तर रामचरित का उपजीव्य वाल्मीकि रामायण का उत्तरकाण्ड है ।जिसको कतिपय विद्वान वाल्मीकि कर्तृक नहीं स्वीकारते किन्तु वस्तुस्थिति यही हैं कि उत्तर रामचरितम् की रचना का आधार रामायण का उत्तर काण्ड ही है । सीता निर्वासन के पश्चात् राम के हृदय में जिस करुणा का संचार हुआ उसी का पल्लवन 'उत्तर राम चरितम्' है।

भवभूति ने यद्यपि अपने इस नाटक की कथावस्तु रामायण के उत्तरकाण्ड से ही चुनी है किन्तु उसने अपनी कृति में अपनी कल्पना-वैदग्धी के माध्यम से प्रचुर यश अर्जित किया है । कहना तो यह चाहिए कि सीता निर्वासन से वाल्मीकि के हृदय में जो करुणा स्रोतस्विनी उच्छ्वलित हुई और उसी के परिणाम से रामकथा-मंदाकिनी प्रबाहित हुई । उसमें अतिशय गहराई के साथ निमज्जनोमज्जन भवभूति ने किया । वाल्मीकि के राम के ' पुट पाक प्रतीकाश [1] करूणरस को सहृदयैक संवेद्य बनाने में भवभूति बेहद सफल हुए हैं । भवभूति ने वाल्मीकि के करूणा-सूत्रों को सहृदयता के साथ ऐसा व्याख्यायित किया कि कवि का उत्तरराम चरित करूण रस का साकार विग्रह बन गया । हम निःसंकोच कह सकते हैं कि यद्यपि सीता निर्वासन जनित वाल्मीकि हृदयोद्वलित करुणा को कालिदास कुमारदास आदि सिद्ध कवियो ने भी आत्मसात् किया है । किन्तु भवभूति तो आदि कवि की करूणा स्रोतस्विनी में आकंठ मग्न दीखते हैं और वह स्वयं करूणरस के प्रतिमान बन जाते हैं । इस सन्दर्भ में हम भवभूति के संस्तव में उद्गीत राष्ट्रकवि मैथिली शरणगुप्त की उक्ति प्रस्तुत करने का लोभ नहीं संवरण कर पा रहे हैं वह यों है -

करूणे! क्यों रोती है, यह सुनकर और अधिक तू रोई ।
मेरी विभूति जो है, उसको भवभूति क्यों कहे कोई ।। [2]

---

(1) उ० रा०- अंक 3 / 01

(2) - साकेत - सर्ग 9/पृष्ठ 194

अस्तु कहने का तात्पर्य यह है कि भवभूति ने अपनी विशिष्ट कृति में न केवल कथानक के रूप में प्रत्युत अन्यत्र भी वाल्मीकि रामायण के बिम्बों को जैसे आत्मसात कर प्रतिबिम्बित किया है उसी का नाम 'उत्तर रामचरित' है । यद्यपि हमने वाल्मीकि के बिम्ब-विधान के अध्ययन में अपने आपको परिसीमित रक्खा है,बालकाण्ड से लेकर युद्ध-काण्ड पर्यन्त उसकी सीमा रही है । किन्तु भवभूति के परिप्रेक्ष्य में वाल्मीकि के काव्य बिम्बों का क्या अवदान है एतदर्थ हम वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड के कुछ काव्य बिम्बों के साथ भवभूति के शब्द चित्रों का अध्ययन करने का प्रयास कर रहे हैं जिससे यह सुस्पष्ट हो सके कि 'उत्तर राम चरित'कार आदि कवि के काव्य बिम्बों से कितने अनुगृहीत हैं ।

वाल्मीकीय रामायण के उत्तर काण्ड में सीता निर्वासन की जिस भूमिका का अवतरण वाल्मीकि ने किया है भव भूति ने भी उसी सूत्र को पकड़ा है अन्तर केवल इतना है कि ' वाल्मीकि यह प्रतिपादित करते हैं कि उद्यान विहार के अवसर पर गर्भिणी सीता के मन में यह दोहद उत्पन्न हुआ कि एक बार वह फिर से दुर्गम अरण्यों में संचार करें । जानकी ने इस अपने अभिप्रेत को अपने पति श्री रामभद्र से निवेदित भी किया इसी बीच एक मर्मस्पर्शी ' दुखद घटना घट गई । राम अपने एक गुप्तचर से एक अश्रवणीय कुत्सित वृत्तान्त सुनते हैं कि प्रजा में सीता के लंका प्रवास को लेकर छिपे तौर से अपवाद चर्चा चर्चित है । राम इस दुःखद घटना से मर्माहत हो उठते हैं और पर्याप्त सोचनें विचारने के पश्चात् सीता परित्याग का निश्चय कर बैठते हैं । इस सन्दर्भ में उनके लिए सीता की कानन यात्रा की कामना सहायक बनती है।[1]

भवभूति ने इस घटना को नाटकीय मोड़ दिया है नाटक के प्रथम अंक में ही राम के साथ सीता अनेक भित्तिचित्र देख रहीं हैं जिससे उनके हृदय में कानन यात्रा का दोहद उत्पन्न होता है अन्य सारी घटनाएँ वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही हैं । जबकि वाल्मीकि ने राम की इस अरून्तुद व्यथा को सूत्र रूप में ही संकेतित किया है । भवभूति ने उसी को विशद रूप से रूपायित किया है । सारांश यह है कि आदि कवि के बीजांकुर का पल्लवन एवं प्रतिफलन भवभूति के द्वारा सम्पन्न हुआ है । वाल्मीकि के राम अपने भाइयों से अतिशय वेदना के साथ इस कुवृत्त को निवेदित करते हैं उस समय राम की मनोदशा का बिम्बन आदि कवि के शब्दों में इस प्रकार है-

---

1. वा0रा0-उ0 / सर्ग 42-45

एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थो बाष्पेण पिहितेक्षणः ।।
संविवेश स धर्मात्मा भ्रातृभिः परिचारितः ।
शोकसंविग्न हृदयो निशश्बास यथा द्विपः ।।[1]

इन पंन्क्तियों में विशेष रूप से ' शोक संविग्न हृदयो निशश्वास यथा द्विपः ' यह पंन्क्ति रेखांकित करने योग्य है ।

भवभूति राम के इस अनभ्र बज्रपात का शब्दांकन भाइयों के निवेदन करने से पहले हीं अपने ही अङ्क में प्रसुप्ता सीता के चरणों में प्रणामांजलि निवेदन पुरस्सर रूपायित कर देते हैं[2] । जिससे पाठकों या दर्शकों के हृदय में करूणा निर्झरिणी का प्रसवण आरम्भ हो जाता है । कहने का तात्पर्य यह है कि जैसा कि ऊपर संकेतित किया जा चुका है कि भवभूति बाल्मीकि की निराकार करूणा के बिम्ब को साकार रूप देते हैं । निश्चय ही भवभूति का आत्म विश्वास वाल्मीकि की करूणा में अड़िग प्रतीत होता है, तभी तो वह पूर्व परम्परा प्राप्त रस राज श्रृंगार के स्थान पर करूण रस के प्राधान्य की पक्षधरता प्रतिपादित करते हैं:-

एकोरसः करूण एव निमि-तभेदा-
द्भिन्नः प्रथक प्रथगिवा श्रयते विवर्तान्
आवर्तबुद्‌बुद तरगं मयान्विकारा
नम्भो यथा, सलिलमेव हि तत्समस्तम् ।।[3]

आदि कवि सीता निर्वासन की पृष्ठ भूमि में जो शब्द चित्र प्रस्तुत करते हैं वही प्रक्रिया भवभूति भी उत्तर राम चरित में अपनाते हैं । राम प्रत्यागत गुप्तचर से प्रश्न करते हैं ? वाल्मीकि के रामः-

काः कथा नगरे भद्र वर्तन्ते विषयेषुच ।।
मामाश्रितानि कान्याहुः पौरजानपदाजनाः ।
किं च सीतां समाश्रित्य भरतं किं च लक्ष्मणम् ।।[4]

---

(1) वा0रा0 - उ0/45/24-25
(2) उ0 रा0// पेज 77
(3) उ0रा0 - अक 3/ 47
(4) वा0रा0 उ0/सर्ग 43/4-5

उत्तर में गुप्तचर नागरिकों के द्वारा राजाराम के प्रशस्ति सूचक वचन प्रस्तुत करता है-

स्थितः शुभाः कथा राजन् वर्तन्ते पुरवासिनाम् ।।
अमुं तुविजयं सौम्य दशग्रीववधार्जितम् ।
भूयिष्ठं स्वपुरे पौरैः कथ्यन्ते पुरूषर्भ ।।[1]

किन्तु राम नागरिकों के प्रशंसा परक इतिवृन्त से सन्तुष्ट नहीं होते वे एक कुशल राजनीतिज्ञ की भूमिका का निर्वहन करते हुए वस्तुतथ्य अवगत करना चाहते हैं ।

एवमुन्तस्तु भद्रेण राघवो वाक्यमब्रवीत् ।
कथयस्व यथा तत्त्वं सर्वं निरवशेषतः ।।
शुभाशुभानि वाक्यानि कान्याहुः पुरवासिनः ।
श्रुत्वेदानीं शुभं कुर्यां न कुर्यामशुभानिच ।।[2]

परिणामतः चर अकथनीय इतिवृन्त को साहस बटोरकर प्रस्तुत करता है । ठीक यही शब्द चित्र भवभूति की लेखनी से चित्रित हुआ है-

दुर्मुख :- (उपसृत्य) जयतुदेवः ।

रामः - ब्रूहि यदुपलब्धम्

दुर्मुखः- उपस्तुवन्ति पौरजानपदाः, यथा विस्मारिता वयं महाराजा दशरथस्य रामदेवेनेति ।

रामः- अर्थवाद एवैषः । दोषं तु मे कथंचित्कथय, येन प्रतिविधीयते ।

दुर्मुखः (सास्रम्) श्रृणोतु महाराजः (कर्णे) एवमिव ।

रामः- अहह, अतितीव्रोऽयं वाग्वज्रः । (इतिमूर्च्छति)[3]

यहाँ यह लक्ष्य करने योग्य है कि दोनों रचनाकारों की उन्तियों में समान बिम्ब उभारे गये हैं । यह मानी हुई बात है कि कोई भी सेवक अपने स्वामी के समक्ष उसके प्रसादन हेतु प्रिय समाचार ही प्रस्तुत करने की चेष्टा करता है । यह प्रकार हम दोनों कवियों में समान रूप से देखते हैं । किन्तु योग्य शासक चार-चक्षुष् होता है । वह प्रिय वचन श्रवणाकांक्षी न होकर तथ्य के अवगाहन के लिए तत्पर होता है इसका निर्वाह भी उभयत्र समान है । केवल अन्तर यह है कि आदि कवि का गुप्तचर अश्रव्य वृन्त को प्रत्यक्ष निवेदित करता है किन्तु भवभूति का गुप्तचर नाटकीय तत्त्व का अनुपालन करते हुए इस अश्रवणीय समाचार को गोपनीय शैली में राम के कान में कहता है ।

---

(1) वा0रा0उ0/सर्ग 43/7-8
(2) वा0रा0 - उ0/सर्ग 43/ 9-10
(3) उ0रा0 - पेज 76-77

सारांश यह है कि भवभूति ने इस आरंभिक स्थल में ही आदि कवि के बिम्ब का आश्रय लिया है । इसके अनन्तर ही एक शब्द चित्र और भी दर्शनीय है जिसका ज्यों का त्यों बिम्बन भवभूति की कृति में उपलब्ध है । अन्तर केवल इतना है कि वाल्मीकि के राम अपना मन्तव्य एवं संकल्प अपने अनुजों के सामने प्रस्तुत करते हैं।[1] जबकि भवभूति के राम अष्टावक्र के सन्देश के उत्तर में पहले ही अपना दृढ़ निश्चय प्रकट करते हैं । यह भी एक नाटकीय कौशल ही है । यहाँ इसकी प्रस्तुति की जा रही है -

अष्टावक्रः श्रूयताम् ?

जामातृयज्ञेन वयं निरूद्धास्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम् ।

युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्यास्तस्माद्यशो यत्परमं धनं वः ।।

राम- यथा समादिशति भगवानमैत्रावरूणिः।

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।

आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति मे व्यथा ।।[2]

कहना नहीं होगा कि दोनों कृतिकारों की कृतियों में अद्भुत वैचारिक बिम्ब समान रूपेण दृष्ट हैं ।

भवभूति की प्रस्तुत कृति में ऐसे ही अनेक दृश्यचित्र प्रस्तुत किये जा सकते हैं जो आदिकवि के काव्य-बिम्बों से प्रभावित हैं । किन्तु विस्तार भय से हम अधिक पल्लवन से विरत हो रहे हैं ।

---

(1) पौरापवादः सुमहांस्तथा जनपदस्य च ।
अकीर्तिर्यस्य गीयेत लोके भूतस्य कस्यचित् ।।
पतत्येवाधमाँल्लोकान् यावच्छब्दः प्रकीर्त्यते ।
अकीर्तिर्निन्द्यते देवैः कीर्तिर्लोकेषु पूज्यते ।।
कीर्त्यर्थं तु समारम्भः सर्वेषां सुमहात्मनाम्
अप्यहं जीवितं जह्यां युष्मान् वा पुरूषर्षभाः ।।
अपवादभयाद् भीतः किं पुनर्जनकात्मजाम् ।
तस्माद् भवन्तः पश्यन्तु पतितं शोक सागरे ।।
नहि पश्याम्यहं भूतं किंचिद् दुःखमतोऽधिकम् । ' वा0रा0 -उ0/सर्ग 45/12-15 1/2

(2) उ0 रा0- अंक 01, श्लोक 11-12

च- भारवि -

संस्कृत काव्य साहित्य के क्षेत्र में महाकवि भारवि का अपना एक विशिष्ट स्थान है । इनकी एक मात्र कृति ' किरातार्जुनीयम् ' महाकाव्य है जिसकी गणना संस्कृत काव्य जगत में वृहत्त्रयी के तीन महाकाव्यों में प्रधानतया की जाती है । यों तो महाकवि कालिदास से लेकर आधुनिक काल के काशीनाथ द्विवेदी, डा0 रेवा प्रसाद द्विवेदी या डा0 राजेन्द्र मिश्र पर्यन्त संस्कृत महाकवियों की एक महत्व पूर्ण लम्बी श्रृंखला है । किन्तु महाकवि भारवि की उनमें एक अपनी विशिष्ट पहचान है । क्योंकि महाकवि भारवि ने संस्कृत महाकाव्य के क्षेत्र में एक नयी क्रान्ति की अवतारणा की है । भारवि से पहले आदि कवि वाल्मीकि से लेकर कालिदास तक महाकाव्य में कथावस्तु की प्रमुखता के दर्शन होते हैं । किन्तु भारवि ने कथावस्तु को गौण बनाकर वर्णनात्मकता की प्रधानता का सूत्रपात किया । यदि थोड़े से शब्दों में कहा जाय तो कहा जा सकता है कि भारवि से पहले के महाकाव्य वर्ण्य प्रधान हैं किन्तु , भारवि से लेकर आगे के कवियों में भारवि की काव्य शैली का अनुकरण किया गया है। जिनमें वर्ण्य विषय की अपेक्षा वर्णनात्मकता का प्राचुर्य है। वृहत्त्रयी के अन्य दो महाकाव्य इसी शैली में निर्मित हुए हैं । जिसको हम चमत्कार प्रधान शैली कह सकते हैं ।

जबकि आदि कवि के रामायण में समुपवर्णित कथानक और काव्य शैली दोनों दृष्टि से भारवि की कृति भिन्न है ऐसी स्थिति में आदि कवि के काव्य-बिम्बों का प्रभाव भारवि की रचना में खोजना असम्भव तो नहीं किन्तु दुस्साध्य अवश्य प्रतीत होता है । तथापि यह निश्चित है कि वाल्मीकि जैसे कवि के कालजयी काव्य का प्रभाव भारवि की रचना पर अवश्य पड़ा होगा ।

भारतीय जनजीवन की अपनी एक विशिष्ट पद्धति रही है कि उसका प्रकृति के साथ घनिष्ठ ताल मेल रहा । वैदिक ऋषियों से लेकर वाल्मीकि व्यास और कालिदास तक में इसके दर्शन होते हैं । यदि एक ओर ' उषस् ' सून्क्त जैसे इसके उदाहरण हैं तो दूसरी ओर वाल्मीकि रामायण में प्रावृट्, शरद्, चन्द्रोदय वन-उपवन आदि के हृदयहारी वर्णन इसके निदर्शन हैं। इस परम्परा का निर्वाह वाल्मीकि के पश्चात्वर्ती कवियों में बराबर देखा जा सकता है ।

भारवि का महाकाव्य ' किरातार्जुनीय ' तो वर्णन प्रधान ही ठहरा किन्तु उसकी शैली अलंकृत है जबकि भारवि से पूर्व की रचनाओं मे वह साधारणतः ही उपलब्ध होती है । किन्तु भारवि के महाकाव्य में तो चमत्कृत शैली का अतिरेक पाया जाता है ।

यद्यपि महाकवि भारवि संस्कृत काव्य जगत में नई विधा के सूत्रकार एवं प्रवर्तक हैं किन्तु, आदि कवि की भांति ही वह भी प्राकृतिक दृश्यों के बिम्बन में अतिकुशल हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य में ' प्राकृतिक दृश्य ' नामक निबन्ध में आदि कवि के प्राकृतिक बिम्बों की मुक्त कंठ से सराहना की है जो उचित ही है । किन्तु महाकवि भारवि भी प्रकृति के सूक्ष्म चितेरे प्रतीत होते हैं । लगता तो ऐसा है कि काव्य में प्राकृतिक दृश्यों के बिम्बन में वह आदि कवि से अनुप्रेरित हैं । वैसे तो संस्कृत के अनेक कवियों ने प्रावृट शरद आदि ऋतुओं का मनोरम चित्रण किया है किन्तु वाल्मीकि एवं भारवि का शरद वर्णन नितराम हृदयहारी है । कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है कि भारवि ने इस क्षेत्र में आदि कवि का अनुकरण किया है ।

वाल्मीकि का शरदकालिक सरित् के वर्णन का प्रस्तुत अनुष्टुप सहृदय वर्ग में अति प्रसिद्ध हैं-

दर्शयन्ति शरन्नद्यः पुलिनानि शनैः शनैः ।
नवसंगमसव्रीडा जघनानीव योषितः ।।[1]

ठीक कुछ ऐसा ही चित्रण भारवि के इस छन्द में किया गया है-

विमुच्यमानैरपि तस्य मन्थरं गवां हिमानी विशदैः कदम्बकैः ।
शरन्नदीनां पुलिनैः कुतूहलं गलद्दुकूलैर्जघनैरिवादधे ।।[2]

ऐसा ही आदि कविका एक स्वभाविक बिम्ब शरद वर्णन के सन्दर्भ में देखिए जिसमें कवि ने गायों के बीच में हंकारते हुए सांड़ को चित्रित किया है ।

शारद्गुणाप्यायित रूप शोभाः
प्रहर्षिताः पांसुसमुत्थिताङ्गाः ।
मदोत्कटाः सम्प्रति युद्धलुब्धा
वृषा गवां मध्यगता नदन्ति ।। [3]

---

(1) वा0रा0 - किष्कि/ सर्ग-30/ 58

(2) कि0- सर्ग 4/12

(3) वा0रा0 किष्कि0/सर्ग 30/38

यदि आदि कवि की व्यापक दृष्टि शरद वर्णन के सन्दर्भ में ' धेनुओं ' और ' मन्त बृषम ' की ओर जाती है तो भारवि की सूक्ष्मेक्षिका एतादृश चित्रण से कैसे वंचित रह सकती है । न सही ' मन्तवृषभ ' किन्तु प्रस्नुत पीवरौधस गायों का समूह उनके दृष्टि-पथ में आ ही जाता है ।

उपारताः पश्चिमरात्रिगोचरादपारयन्तः पतितुं जवेन गाम् ।
तमुत्सुकाश्चक्रुरवेक्षणोत्सुकं गवां गणाः प्रस्नुतपीवरौधसः ।।[1]

ऊपर हमने शरद वर्णन के सन्दर्भ में रामायण के कतिपय काव्य बिम्बों से अनुप्रेरित भारवि के शब्दचित्र अंकित किए हैं । कुछ और भी उभयत्र ऐसे स्थल प्राप्त हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि ऐसे स्थलों में निश्चय ही भारवि के काव्य बिम्ब आदि कवि से अनुप्रेरित हैं । उदाहरणार्थ वाल्मीकि रामायण के सुन्दर काण्ड में समुपवर्णित रावण के अन्तःपुर का दृश्य भारवि के "किरातार्जुनीयम् " के नवम सर्ग में समुपवर्णित सुरत वर्णन का उपजीव्य है । किन्तु विस्तार भय से उसकी चर्चा यहाँ नहीं की जा रही है । दोनों में इतना अन्तर अवश्य है कि वाल्मीकि की आर्षवाणी होने के कारण रावण का अन्तःपुर पवनपुत्र के द्वारा दृष्ट होकर भी उन्हें क्षुभित नहीं करता जबकि भारवि का सुरत वर्णन चमत्कारी तो अवश्य है किन्तु उसमें आदि कवि की उक्तियों की शालीनता नहीं है ।

उपर्युक्त बिम्बों के उद्धरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि भारवि आदि कवि से अनुप्रेरित हैं । साथ ही अन्य परवर्ती कवियों की भांति भारवि के काव्य बिम्बों पर भी आदि कवि के बिम्बों की प्रभावान्विति विद्यमान है ।

छ- माघ :-

वृहत्त्रयी के कवियों में माघ का विशिष्ट स्थान है । उनके विषय में ' माघे सन्ति त्रयोगुणाः ' यह प्रशस्ति शतप्रतिशत यथार्थ है । क्या अलंकार योजना , क्या अर्थ गौरव और क्या पद- लालित्य, प्रत्येक क्षेत्र में माघ अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं । महा कवि माघ की एक मात्र कृति ' शिशुपाल वध ' महाकाव्य है जो कवि को कालजयी बनाने के लिए पूर्ण समर्थ है । शिशुपाल वध महाकाव्य की रचना अलंकृत शैली में महाकवि भारवि के ' किरातार्जुनीय ' महाकाव्य के अनुकरण में निर्मित हुयी हैं । प्रतीत

---

(1) कि0- सर्ग 4/10

होता है कि ' किरातार्जुनीय ' की प्रतिस्पर्धा में शिशुपाल वध की रचना की थी । यह तथ्य विद्वत् वर्ग को विदित है किन्तु हमारे अध्ययन का विषय यह नहीं है कि भारवि और माघ में कितनी समानताएँ और असमानताएँ हैं हमारा लक्ष्य तो यह है कि कविवर माघ वाल्मीकि से कितने अनुप्राणित हैं , इसी सन्दर्भ में यहाँ कुछ मीमांसा की जा रही है ।

वैसे तो माघ भी चमत्कृत शैली के कवि हैं । चमत्कारी बिम्बों के भार से बोझिल होने के कारण उनकी कविता बाल्मीकि या कालिदास की कृतियों के समान सर्वजनप्रिय न हो सकी । फिर भी माघ विद्वानों के हृदय के हार हैं । वह एक महान कवि तो हैं ही साथ ही असाधारण वैयाकरण भी हैं। उनका पाण्डित्य पयोधि की भांति गम्भीर तथा अगाध है । प्रज्ञोत्कर्ष के लिए विद्वद्वर्ग शिशुपालवध का अध्ययन- कम से कम नव सर्गान्त स्वाध्याप अनिवार्य मानता है । क्यों कि उसका विश्वास है कि ' नव सर्गगते माघे नव शब्दो न विधते ' निश्चय ही क्लिष्टता के बावजूद भी जैसे पाश्चात्य काव्य साहित्य के अध्येता मिल्टन का अध्यपन अनिवार्य समझते हैं । ऐसी ही स्थिति संस्कृत साहित्य जगत में माघ की है । मनीषियों की धारणा है कि असाधारण पाण्डिय की उपलब्धि के हेतु मात्र माघ (शिशुपालवध) एवं मेघ (मेघदूत) पर्याप्त हैं । ' माघे मेघे गतं वयः । यह प्रशस्त्रि इसी की निदर्शिका है।

हम ऊपर यह संकेत कर चुके हैं कि असाधारण कवि होने पर भी महामति गाघ ने भी अपने पूर्ववर्ती कवियों का अन्य कवियों की भाँति अनुसरण किया है । किन्तु उनकी अनुसरण पद्धति उनकी काव्य कल्पना में इतनी एकात्म होती गयी है कि उसकी विवृति स्पष्ट रूपेण नहीं प्रतीत होती डा0 आद्या प्रसाद मिश्र भी हमारे विचारों का समर्थन करते हैं -

' अन्य सभी महा कवियों की भांति माघ कवि में अपने पूर्ववर्ती महान काव्य साधकों के उत्कृष्ट काव्य तत्वों को अपनाने की सुरूचि अवश्य थी किन्तु उसमें साधारण कवियों की भांति सस्ते अनुकरण की प्रवृति कदापि नहीं थी ।[1]

यह सर्ब विदित है कि आदि कवि ने अपनी महनीय कृति रामायण में प्राकृतिक बिम्बों के उभारने में अलंकृत शैली अपनाने का श्री गणेश किया है । रामायण के अनेक स्थल इसके निदर्शन हैं । उदाहरणार्थ सुन्दरकाण्ड में अकित चन्द्रोदय वर्णन[2] देखिये जिसमें अन्त्यानुप्रास, यमक, उत्प्रेक्षा आदि

---

(1) शिशुपालवध की भूमिका आद्याप्रसाद मिश्र - पृष्ठ-07

(2) वा0रा0 - सु0 /सर्ग-2/57-58

अलंकारों का सन्निवेश अत्यन्त हृदयावर्जकहै । परवर्ती कवियों ने भी प्राकृतिक दृश्यों के बिम्बन में आदि कवि का पदानुसरण किया है । कालिदास के रघुवंश महाकाव्य का नवम सर्ग जिसमें कवि ने ऋतुवर्णन किया है, भारवि के किरातार्जुनीय का पंचम सर्ग जिसमें हिमालय वर्णन अंकित है । इसी प्रकार आदि कवि की इस परम्परा प्राप्त सरणि का अनुसरण माघ ने भी अपने शिशुपालवध महाकाव्य में किया है ।

नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुट पराग परागतपकंजम्
मृदुलतान्त लतान्तमलोकयत्स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः ।।
मधुरया मधुवोधित माधवी मधु समृद्धि समेधित मेधया ।
मधुकराङ्गनया मुहुरून्मद ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ।।[1]

वाल्मीकि रामायण का आरम्भ देवर्षि नारद और वाल्मीकि के सम्वाद से होता है [2] । आदि कवि ने देवर्षि नारद का शब्द चित्र सामान्य रूप से ही अंकित किया है । यह एक विचित्र साम्य है कि शिशुपाल वध का भी आरम्भ देवर्षि नारद के आगमन से होता है । जिसका एक । बिम्ब प्रस्तुत है-

श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेव सद्मनि ।
वसन् ददर्शावतरन्तमम्बराद्धिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनिं हरिः ।।[3]

यह बात दूसरी है कि शिशुपालवध का निर्माण भारवि की चमत्कृत शैली के अनुसार हुआ है इसलिए माघ ने नारद की विशेषता में कई छन्दों का प्रयोग किया है। किन्तु परिसंवादात्मक बिम्ब दोनों में समान है ।

आदि कवि आदि काव्य के प्रणेता है । उन्होंने अधिकांशतः अपने उपमेयों के लिए उपमानों का चयन प्रकृति से किया है । किन्तु कहीं कहीं उनके काव्य में प्रकृति से बहिर्भूत शास्त्रीय उपमान भी मिलते हैं । कवि विरह कर्षिता जनकात्मजा का अलंकृत चित्रांकन ऐसा करता है, जिसमें प्रतिपत्

---

(1) शि० - सर्ग 6/ 19-20

(2) तपः स्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम् ।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकि मुनिपुगंवम् ।। वा०रा० बाल/ सर्ग-1/1

(3) शि०- सर्ग 1/1

तिथि में व्याकरण का पूर्ण अनध्याय रखते हैं क्यों कि ऐसी परम्परा प्राप्त मान्यता है कि उक्त तिथियों में स्वाध्यायी की व्याकरण विद्याक्षीण हो जाती है ।

सा प्रकृत्यैव तन्वङ्गी तद्वियोगाच्च च कर्शिता ।
प्रतिपत्पाठशीलस्य विद्येव तनुताङ्गता ।।[1]

माघ ने भी उपमेय राजनीति के लिए व्याकरण विद्या को उपमान बनाया है ।

अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना ।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा।।[2]

स्वाभाविक बिम्बोपस्थापन में वाल्मीकि ने धेनु के बीच मत्त वृषभ का चित्र देखा है।[3] माघ की भी दृष्टि धेनु के वत्स प्रेम के बिम्बन में सुरुचिपूर्ण हैं ।

प्रीत्या नियुक्ताँल्लिहती स्तन्धयान् निगृह्य पारीमुभयेनजानुनोः ।
वर्धिष्णु धारा ध्वनि रोहिणीः पयश्चिरं निदध्यौ दुहतः स गोदुहः ।।[4]

आदि कवि के शरद वर्णन में जिन प्राकृतिक दृश्यों के बिम्ब उभरे हैं वे एक से एक बढ़कर हृदय को विमुग्ध करने वाले है । यहाँ केवल एक दृश्यांकन प्रस्तुत है । जिसमें हंसों की क्रीड़ा का चित्रण है -

अभ्यागतैश्चारु विशालपक्षैः
स्मरप्रियैः पद्मरजोऽवकीर्णैः ।
महा नदीनां पुलिनोपयातैः
क्रीडन्ति हंसाः सह चक्रवाकैः ।।[5]

---

(1) वा0रा0- सु0/सर्ग 59/31
(2) शि0 - सर्ग 2/114
(3) वा0रा0- किष्कि0/ सर्ग 30/38
(4) शि- सर्ग 12/40
(5) वा0रा0- किष्कि0/सर्ग 30/ 31.

माघ ने भी शरद के चित्र उकेरे हैं और उनकी सूक्ष्म दृष्टि हंसो की रमणीयता से न अभिभूत हो यह कैसे हो सकता है ? एतत् सम्बन्धी एक चित्र देखें --

समय एव करोति बलाबलं
प्रणिगदन्त इतीव शरीरिणाम्
शरदि हंसरवाः परूषीकृत-
स्वरमयूरमयू रमणीयताम् ।।[1]

यह बात दूसरी है कि महर्षि बाल्मीकि समदर्शी तपस्वी हैं इसलिए उनके प्रकृति दर्शन में नदी के पुलिन में हंस के समान ही चक्रवाक को भी समान रूपेण क्रीड़न सहज सुलभ है । किन्तु महाकवि माघ पंडित है इसलिए उनकी चिन्तनशील दृष्टि में शरद में मयूरों के विषाद और हंसों के प्रसाद के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति में समयानुसार उपचयापय के दर्शन होते है ।

कहने के लिए तो यह कहा जा सकता है कि आदि कवि के रामायण में कथावस्तु और शैली कुछ है तथा महा कवि माघ के शिशुपाल बध में उससे सर्वथा भिन्न कथावस्तु एवं काव्य विधा दृष्ट है । ऐसी स्थिति में आदि कवि के द्वारा माघ का प्रभावित होना पूर्वाग्रह ग्रस्त मन्तव्य है । किन्तु ऐसी अवधारणा युक्ति संगत प्रतीत नहीं होती जैसा कि हम ऊपर कतिपय उद्धरणों के द्वारा यह संकेतित कर चुके हैं कि महाकवि माघ के काव्य बिम्ब आदि कवि के काव्य बिम्बों से प्रभावित हैं । इस सन्दर्भ में यह कहना भी अनुपयुक्त न होगा कि काव्य जगत में हो या उससे बाहर, स्तेयवृत्ति शोभन नहीं कही जा सकती है । किन्तु अपने पूर्वजों से सत्प्रेरणा प्राप्त करना और उसको आत्म सात् कर तदनुरूप नई दृष्टि की अवतारणा दोषावह नहीं कही जा सकती संस्कृत साहित्य के मनीषियों को यह ज्ञात है कि महाकवि माघ आदि कवि से यत्र क्वचन ही प्रभावित होंगे किन्तु भारवि के महाकाव्य का अनुकरण तो उन्होने मुक्तहस्त होकर किया है । जिसका पल्लवन करना हमारे शोध विषय में अप्रासंगिक है किन्तु यह सत्य है कि इससे महाकवि के काव्योत्कर्ष में कोई लांच्छन लगाने का साहस नहीं कर सकता प्रत्युत सच तो यह है कि इस पर भी माघ भारवि से बहुत आगे हैं ।

कहने का सारांश यह है कि इस मीमांसा का मात्र इतना प्रयोजन है कि आदि कवि के पश्चात् वर्ती कवियों में आदि कवि के काव्य बिम्बों का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा है ।

---

(1) शि० - सर्ग 6/44

(ज) श्री हर्षः-

' नैषधीय चरितम् ' नामक प्रसिद्ध महाकाव्य के प्रणेता श्रीहर्ष चमत्कार वादी कवि है । आदि कवि वाल्मीकि से लेकर कालिदास अश्व घोष आदि तक की परम्परा से हट कर परवर्ती काल में महाकवि भारवि से काव्य जगत में एक नई पद्धति का आरम्भ होता है । जिसमें वर्ण्य विषय की अपेक्षा वर्णनात्मकता का प्राचुर्य होता है । माघ श्रीहर्ष आदि कवि इसी परम्परा के हैं । जिनमें कथानक की सूक्ष्मता किन्तु वर्णनात्मकता की विशदता है । तात्पर्य यह है कि श्री हर्ष काव्य में चमत्कार लाने के पक्षधर हैं । उन्होंने नैषधीय चरितम् की समाप्ति पर स्वयं इसकी पुष्टि की है कि उन्होने जानबूझकर अपनी रचना में ग्रन्थग्रन्थिकी है ।[1]

ऐसी स्थिति में जब कि श्रीहर्ष की काव्य निर्माण पद्धति भिन्न प्रकार की है तो उनकी एक मात्र कृति 'नैषधीय चरितम्' में रामायण के काव्य बिम्ब खोजना दुराग्रह मात्र कहा जा सकता है । किन्तु यह तो निश्चित है कि ' नैषधीय चरितम्' का कवि आदि कवि वाल्मीकि की काव्य प्रभविष्णुता से नितराम् अप्रभावित रहा हो ऐसा प्रतीत नहीं होता । कोई भी कवि अपने महाकाव्य के निर्माण के पहले ऐसी कथावस्तु की खोज करता है । जिसका नायक उदान्त चरित वाला तथा प्रख्यात हो । जैसे वाल्मीकि के राम, अश्वघोष के बुद्ध , कालिदास के सूर्यवंशी अनेक अमरकीर्ति नृपति गण आदि ।

इसी भांति श्रीहर्ष ने भी महाभारत के प्रख्यात राजा नल के चरित को अपना वर्ण्य विषय बनाया । इस दृष्टि से श्रीहर्ष वाल्मीकि के अनुगामी ही हैं । इस प्रकार राम के कथानक को वह इसलिए अपने काव्य का वर्ण्य विषय बनाते है कि वह अतिशय पावन है । वह रामायण के अध्ययन की फलश्रुति में कहते हैं-

---

(1) ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वाचित्कवचिदपि न्यासि प्रयत्नान्यया
प्राज्ञंमन्यमना हठेन पठती मास्मिन्खलः खेलतु ।
श्रद्धाराद्ध गुरूश्लथीकृत दृढग्रन्थिः समासादय
त्वेत्काव्य रसोर्मिमज्जन सुखव्यासज्जनं सज्जनः ।। नैषधीः- सर्ग 22/152

पठन्द्विजो वागृषभत्वमीयात्

स्यात् क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात

वणिग्जनः पुण्यफलत्वमीया-

ज्जनश्च शूद्रोऽपि महत्त्वमीयात् ।।[1]

इसी भांति श्रीहर्ष भी नल की कथा के विषय में ऐसी ही निष्ठा व्यक्त करते हैं ।

पवित्रमत्रातनुते जगद्युगे स्मृता रसक्षालनयेव यत्कथा ।

कथं न सा मद्गिरमाविलामपि स्वसेविनी मेव पवित्रयिष्यति ।।[2]

रामायण में श्री हनुमान के द्वौत्य कर्म का अपना एक विशिष्ट महत्व है नैषधीय चरितम् में भी कथा नायक नल के दौत्य कर्म के हृदयावर्जक चित्र प्रस्तुत किए है । अन्तर मात्र इतना है कि हनुमान विमुक्त राम का संदेश विरहिणी सीता तक ले जाते हैं, तो नल अपनी विरह पीडिता दमयन्ती के समीप वाध्य होकर इन्द्रादि चार देवताओं का संदेश पहुँचाते है । सम्भवतः कवि ने इस प्रकरण को अपनी काव्य वैदग्धी के चमत्कार हेतु उपनिबद्ध किया है । इतना ही नहीं कवि वाल्मीकि के दौत्य कर्म से इतना प्रभावित है कि उसने हंस को भी दौत्य कर्म में नियुक्त किया है । और अपने महाकाव्य के उत्कर्ष को वर्धित किया ।

हनुमान श्रीराम का संदेश सीता के पास तक पहुँचाकर सीता की दशा का चित्रण करते हुये कहते हैं।

सा प्रकृत्यैव तन्वङ्गी त्वदवियोगाश्च कर्षिता

प्रतिपत् पाठशीलस्य विद्येव तनुताङ्गता ।।[3]

पवन पुत्र के द्वारा प्रेषित सीता संदेश को राम ने सुना और अश्रुपूर्ण नेत्रो से सीता के विषय में

---

(1) वा०रा०- बाल०/सर्ग 1/100

(2) नैषधी०- सर्ग 1/3

(3) वा०रा० - सु० / सर्ग 59/3

में बार बार पूँछने लगे । कि माह सीता वैदेहि ब्रूहि सौम्य पुनः पुनः [1] वह थोड़ी ही देर में फिर हनुमान से पूँछते हैं-

किमाह सीता हनुंस्तन्त्वतः कथयस्य मे । [2]

× × × ×

इसके बाद पुनः पूँछते हैं-

मधुरा मधुरालाप7 किमाह मम भामिनी ।
मद् विहीना वरारोहा हनुमन् कथयस्व मे ।।
दुःखात् दुःखतरं प्राप्य कथं जीवति जानकी । [3]

इस तरह वाल्मीकि ने जानकी के सम्बन्ध में राम का जिस तरह विरहोत्सुक्य बिम्बित किया है, इसी का प्रतिबिम्ब नैषधीय चरित में देखिए--

हंस दमयन्ती का समाचार लेकर राजा नल के पास पहुँचता है और राजा को अवगत कराता है । राजा नल दमयन्ती के विषय में कथित समाचार सुनते नहीं अघाते प्रस्तुत निम्न पद्य देखिए ।

कथितमपि नरेन्द्रः शंसयामास हंसं
किमिति किमिति पृच्छन्भाषितं स प्रियायाः ।
अधिगतमथ सान्द्रानन्दमाध्वीकमन्तः
स्वयमपि शतकृत्वस्तन्तथान्वाचचक्षे।। [4]

कोई भी पाठक इन दोनों की विलक्षण एकता से आश्चर्य चकित हुए विना नहीं रह सकता क्योकि किसी भी महाकवि का प्रभाव उत्तरवर्ती कवियों पर पड़े बिना नही रहता इस सन्दर्भ में यह कथन अनुचित न होगा कि आदि कवि परवर्ती प्रायः सभी कवियों के उपजीव्य हैं ।

इसीतरह के साम्य मूलक अन्य उद्धरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं । यह हो सकता है कि श्रीहर्ष की यह परिकल्पना मौलिक हो क्यों कि मर्मस्पर्शी प्रसंगो में कवियों की ग्राहयित्री प्रतिभा समान रूप से कार्य करती है । फिर भी यह तो स्पष्ट है ही कि आदि कवि वाल्मीकि की रचना से शायद ही कोई कवि- हृदय अप्रभावित रहा हो ।

---

(1) वा0रा0- सु0/सर्ग 66/8
(2) " " सु0/सर्ग 66 /14
(3) " " सु0/सर्ग 66 /15
(4) नैषधी0- सर्ग 3/55

इस अध्याय में हमने व्यास , भास , कालिदास , अश्वघोष, भवभूति, भारवि, माघ और श्रीहर्ष के कतिपय बिम्बों पर वाल्मीकीय रामायण की प्रभावान्विति दर्शायी है ।

इस अध्ययन से अनुसन्धानकर्ता इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि महर्षि वाल्मीकि के काव्य बिम्बों का आयाम बहुत ही विस्तृत तथा विशाल है । आश्चर्य तो यह होता है कि उनकी तल-स्पर्शिनी प्रज्ञा के लिए भगवान राम का ' महतोमहीयान् ' चरित 'हस्तामलक' के समान सुलभ है । प्रत्येक स्थल पर उनके पात्रों का वाह्य आभ्यन्तर व्यक्तित्व शब्द चित्रों में इस तरह उभारा गया है कि वे हमारे नेत्रों के सामने प्रत्यक्ष अवस्थित हो जाते हैं । विशिष्ट कवियों के ऊपर ही नहीं आगे के कवि जनों में उनके काव्य बिम्बों की छाया नकारी नहीं जा सकती । इस सन्दर्भ में यही कहा जा सकता है :-

" गौरवेण इदं महत् ' ।

नवम अध्याय

•

उपसंहार
परिशिष्ट

नवम अध्याय

उपसंहार-

आधुनिक सन्दर्भो में रामायण की प्रासंगिकता

1- रामायण में बिम्ब- विधान के माध्यम से प्रभावित मानव की त्रिविध इकाई (व्यक्ति, कुटुम्ब और समाज)

2- ह्रासोन्मुख मानवीय मूल्यों के व्यापक उन्नयन में रामायण की भूमिका ।

3- भारतीय संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में रामकथा की उपादेयता तथा उसमें वाल्मीकि के बिम्बन शिल्प का योगदान ।

परिशिष्ट -

1- रामायण का उत्तर काण्ड: कर्तृत्व- विमर्श

2- शोध प्रबन्ध में रामायण के प्रत्येक काण्ड से गृहीत बिम्बों की तालिका ।

3- सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची एवं संकेत चिन्ह

आधुनिक सन्दर्भो में रामायण की प्रासंगिकता :-

ईश्वर की असीम अनुकम्पा से हम शोध-प्रबन्ध में निर्दिष्ट कार्य यथाशक्ति सम्पादित कर उपसंहार की ओर बढ़ रहें है । किसी भी शोध कार्य के अन्त में उसका निष्कृष्ट अर्थ प्रस्तुत करना आवश्यक हो जाता है जिसके माध्यम से शोध कार्य के सम्बन्ध में फलितार्थ ज्ञात हो जाता है । क्यों कि प्रयोजनमनुदिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते के अनुसार कोई साधारण से साधारण कार्य करने में भी मनुष्य नहीं प्रवृत्त होता फिर शोध कार्य जैसे महत्त्व पूर्ण काम में प्रवृत्ति की विशिष्ट उपयोगिता तो होनी चाहिए किसी भी साहित्यिक विषय को लेकर वैज्ञानिकों की भांति सर्वथा अज्ञात नई उपलब्धि तो नहीं समर्पित की जा सकती किन्तु तादृश सम्पादित शोध कार्य के माध्यम से उस विषय का विशिष्ट अनुशीलन परिशीलन अवश्य हो जाता है और उसकी उपादेयता अनुपादेयता भी प्रकाश में आ जाती है । इसके अतिरिक्त इसके माध्यम से साहित्य जगत में एवं सामाजिक क्षेत्र में उसकी सम्प्रेषणीयता सुलभ हो जाती है ।

प्रस्तुत शोध विषय के अन्तिम अध्याय में जो शोध विषय के उपसंहार के रूप में पूर्व निर्धारित है और उसके अन्तर्गत विवेचनीय सन्दर्भो पर विचार करने के पूर्व संक्षेप में हम यह निवेदन करना आवश्यक समझते हैं कि इस शोध कार्य का उद्देश्य विधेय क्या है ।

किसी भी राष्ट्र की राष्ट्रीयता की परिचायिका उस देश की राष्ट्रभाषा एवं संस्कृति ही होती है । भारतीय संस्कृति के बारे में इसी अध्याय में आगे विचार किया जावेगा । भाषा के सम्बन्ध में निवेदनीय यह है कि सहस्त्र वर्ष की परतन्त्रता के बाद देश तो स्वतंत्र हो गया किन्तु भाषा गत पारतन्त्र्य आज भी पूरे राष्ट्र के सिर पर सवार है । संसार की सब भाषायें अपना अपना महत्त्व रखती हैं । उनमें भी आंगल भाषा तो विश्व के कोने-कोने में फैली हुई है और उसका साहित्य भी समृद्ध है । यह भी सत्य है कि हमारी स्वतंत्रता प्राप्ति में इस भाषा के ज्ञान का अतिशय महत्त्व रहा है । 'कंटकेनैव कंटकम् ' न्याय के अनुसार अंग्रेजी भाषा भाषी राष्ट्र सेवको के सतत् प्रयास से गौरांग शासको के पिण्ड से छुटकारा मिला । किन्तु , खेद के साथ यह कहना पड़ रहा है कि हमारा राष्ट्र पारतन्त्र्य काल से भी अधिक इस स्वाधीनता के लम्बे अन्तराल तक परकीय भाषा से ज्यों का त्यों जकड़ा हुआ हैं । परिणामतः अपने राष्ट्र की भाषायें अपने ही घर में उपेक्षित हैं । जब अपनी भाषा ही नहीं है तो अपने विचार ही कैसे रह सकते है । क्यों कि भाषा और विचारों का अविनाभाव का सम्बन्ध होता है जिससे हम परकीय भाषा में परकीय विचारों से दबे जा रहे हैं जिसका प्रतिफल यह है कि हमारी परम्परा प्राप्त संस्कृति-सभ्यता धूमिल होती जा रही है, और हम स्वदेश में ही विदेशी बनते जा रहे हैं । आचार-विचार वेष-भूषा हर एक क्षेत्र में हम दूसरे के अनुगामी हैं ।

हमारे राष्ट्र की राष्ट्रीयता की विश्वभर में एक अलग पहिचान रही है । पराधीनता काल में भी भारत अपनी इस पहिचान के कारण संसार भर के लिए स्पृहणीय रहा है । यहाँ की आध्यत्मिक चेतना, आचारनिष्ठता, व्यवहार कुशलता साहित्यिक निपुणता आदि का गुणगान सब जगह होता रहा है क्योंकि यहाँ का साहित्य और यहाँ की भाषा संसार भर की भाषाओं और साहित्य से प्राचीन एवं समृद्ध है । विश्व का कोई भी भूभाग इसमें आपत्ति नहीं कर सकता कि ऋग्वेद और संस्कृत भाषा चाहे उसे लौकिक वैदिक कुछ भी नाम दें प्राचीनतम है । यह निश्चित है कि प्रत्येक राष्ट्र की राष्ट्रीयता का मूल्यांकन वहाँ के साहित्य से होता है । क्यों कि साहित्य के माध्यम से ही राष्ट्र या तद्गत समाज की मूल्यवत्ता का परिमापन होता है । हमें प्रशन्नता है कि इस क्षेत्र में हम बेजोड़ है किन्तु साथ ही हार्दिक खेद भी है कि हम अपनी अमूल्य सम्पत्ति की स्वयं उपेक्षा करते जा रहे हैं ।

भारत इस लिए महान नहीं है कि उसका क्षेत्रफल बहुत विस्तृत तथा विशाल है इससे अधिक क्षेत्रफल के कई देश संसार में फैले हुए है । भारत की महानता तो इस अंश में है कि उसके अंचल मे ऋग्वेद की ऋचाओ ने विश्व में सर्वप्रथम अन्धकार से प्रकार की ओर धर्म जाति निरपेक्ष मानव मात्र को अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया । भारत इस लिए महान है कि उसके पास आध्यात्मिक ज्ञान की निधि उपनिषदें हैं । भारत इस लिए महान है कि उसके पास वाल्मीकीय रामायण भगवान वेदव्यास का महाभारत एवं अष्टादश पुराण है । विश्व भर में भारत को सर्व महान ख्यापित करने के लिए कालिदास भास, कुमारिल भट्ट , शंकर, रवीन्द्रनाथ , अरविन्द , गांधी जैसे पर: शत नाम हैं, जो एक एक भी हमारे राष्ट्र को विश्व में सर्व श्रेष्ठ उद्घोषित करने में सक्षम हैं । यह तो हुई आंशिक चर्चा । आयुर्वेद, धर्म-शास्त्र राजनीति, ज्योतिष, गणित आदि में भी ऐसे नाम हैं जिनकी तुलना में शायद ही कोई राष्ट्र ठहर सके । किन्तु खेद तो यह है कि यह सारी की सारी सम्पन्ति अब हमसे कोशों दूर पड़ती जा रही है अब हमारी जिह्वा में प्रत्येक क्षेत्र में विदेशियों के नाम जपे जाते हैं ।

ऊपर हमने जो चर्चा की है वह आवश्यकता से अधिक प्रतीत होती है किन्तु अपने अतीत का गौरवगान भविष्य का उत्प्रेरक होता है । अतीत के स्मरण का मात्र उद्देश्य यह है कि हम जिस भाषा की गरिमा जानते पहचानते रहे हैं, उसको फिर से अपनाने की चेष्टा करें । तभी राष्ट्र व्यापी क्षेत्रीयता, संकीर्णता, जातीयता का विष बढ़ने से रोका जा सकेगा । यदि हम अपने धर्म को साम्प्रदायिक कह कर उसको तिलांजलि देने लग जायेंगे , यदि हम अमर भाषा को अंग्रेजों द्वारा प्रचारित मृत भाषा (Dead lenguge) कह कर उपेक्षा करने लगेंगे यदि हम गांधी के राम राज्य की परिकल्पना में नाक भौंह सिकोड़ने लग जायेंगे, यदि हम चित्रकूट के संदेश के जिसमें राम और भरत ने राज्य को कन्दुक की तरह इधर उधर उछाल कर यह बताया था कि पारस्परिक सौहार्द के सामने भौतिक सुख समृद्धि नगण्य है को कालातीत (Out dated) समझने लग जायेंगे तो अभी क्या भविष्य में भगवान करें ऐसा न हो किन्तु लगता तो ऐसा है कि आगे बहुत ही भयंकर परिणाम होंगे ।

इस राष्ट्र व्यापी भावी संकट को दृष्टि में रखकर कतिपय चिन्तनशील व्यन्क्ति वर्तमान प्रवाह से हट कर पीछे की ओर देखने लग गये हैं और वे इस निष्कर्ष में पहुँच रहे हैं कि इस समस्या का निदान भारतीय संस्कृति और सभ्यता का पुनः स्वीकरण है । निश्चय ही भारतीय संस्कृति और सभ्यता के पुनरूज्जीवन के लिए वाल्मीकि व्यास और कालिदास पर्याप्त है। जैसा कि इन तीनों महाविभूतियों के सम्बन्ध में श्री अरविन्द ने लिखा है । "वाल्मीकि व्यास तथा कालिदास प्राचीन भारतीय

इतिहास की अन्तरात्मा के प्रतिनिधि हैं और सब कुछ नष्ट हो जाने के बावजूद भी इनकी कृतियों में हमारी संस्कृति के प्राण तन्त्व सुरक्षित रहेंगे '1 (श्रीअरविन्द)[1] क्योंकि आधुनिक भारत इन तीनों महाविभूतियों की विचारधाराओं से ओतप्रोत है । अन्तर केवल इतना है कि काल की गति से जन जीवन के अन्तरमानस मे वह लुप्त सुप्त सी हो गई है । इनकी इस विचारधारा का पुनरूज्जीवन अपेक्षित है तभी भारत को अपना विस्मृत प्रशस्त मार्ग फिर से दृष्टि गोचरित होगा । और उसी प्रशस्त पथ से हमारे राष्ट्र के अभ्युदय तथा निःश्रेयस हस्तगत होंगे ।

उक्त तीनों महा विभूतियों में सर्वश्रेष्ठ महर्षि वाल्मीकि-रामायण के अध्ययन का विषय बनाकर शोध कार्य का आरम्भ इसी उद्देश्य से किया था जिसकी पूर्ति भगवत् कृपा से हो रही है । अनुसन्धित्सु के इस अध्ययन का मुख्य प्रयोजन तो 'स्वान्तः सुखाय' था किन्तु हृदय के किसी कोने में अन्तरात्मा की यह भी आवाज थी कि वाल्मीकीय रामायण के अध्ययन के माध्यम से भगवान राम के पावन चरित्र को जन मानस तक सम्प्रेषणीय बनाया जाय, इसके लिए यह आवश्यक था कि रामायणी कथा को इस तरह व्याख्यायित किया जाय की उसके बिम्ब व्यापक रूप से रामकथा के जिज्ञासुओं के अन्तर्मानस में स्थायी रूप से प्रतिबिम्बित होकर कल्याणोन्मुख हों । यह निर्विवाद है कि कोई भी कवि अपने काव्य को सर्वतो भावेन प्रभविष्णु बनाने हेतु काव्य बिम्बों का सहारा लेता है जिनके माध्यम से वह कृतकार्य होता हैं किन्तु उनकी अभिव्यक्ति प्रयत्न साध्य होती है । कोई भी शोधार्थी इस सन्दर्भ में कोई नूतन कार्य नहीं करता किन्तु वह काव्य में एकात्म हुए बिम्बों को सर्व सुलभ कराने का प्रयास करता है। जिससे काव्य की अनुभूति प्रत्यक्ष जैसी हृदय में भासित होने लग जाती है । मैं इस कार्य में कहाँ तक सफल हुआ हूँ इसका निर्णय विद्वान सुधी जन ही करेंगे । अब हम अपने इस लक्ष्य को और सुस्पष्ट करने के लिए यह संकेतित करने की चेष्टा कर रहे हैं कि आधुनिक सन्दर्भ में रामायण की प्रासंगिकता किस मात्रा में और कितनी है तभी हमारे कथित उद्देश्य की प्रयोजनीयता की संगति होगी।

1- रामायण में बिम्ब-विधान के माध्यम से प्रभावित मानव की त्रिविध इकाई (व्यक्ति, कुटुम्ब और समाज)

हम ऊपर यह सिद्ध कर चुके हैं कि बिम्ब विधान के माध्यम से कोई भी कृतिकार अपनी कृति को प्रभावी बनाता है और प्रभविष्णु बिम्बों से ही मानव (पाठक या श्रोता) प्रभावित होता है ।

---

(1) का०श्र०- पृ० 105

पाठक या श्रोताओं को हम तीन रूपों में विभन्क्त देखते हैं, व्यन्क्ति , कुटुम्ब और समाज । यह मानी हुई बात है कि काव्य में गृहीत चरित्र वह चाहे किसी व्यन्क्ति, कुटुम्ब या समाज का हो तभी किसी व्यन्क्ति कुटुम्ब या समाज को उद्‌बोधित करते हैं जब इनके बिम्ब तन्तत् स्थानों में अपनी छवि बना सकें। इसी को लाक्षणिक ग्रन्थकारों ने साधारणी करण कहा है । इस दृष्टि से हमने रामायण की उन्क्त तीनों इकाइयों के अनुशीलन परिशीलन से इस निष्कर्ष में पहुँचे है कि रामायण के प्रणेता ने अपने काव्य बिम्बों के माध्यम से तीनों इकाइयों के चित्र इस उत्कृष्टता के साथ अंकित किये हैं कि कोई भी व्यन्क्ति कुटुम्ब या समाज उन से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता ।

हमने अपने शोध प्रबन्ध के सप्तम अध्याय में इसी उद्‌देश्य से कौटुम्बिक एवं सामाजिक बिम्बों का अध्ययन प्रस्तुत किया है । यहाँ पर फिर से इनकी चर्चा पुनरूक्तवदाभाषित हो सकती है किन्तु, जिस तरह कोई संगीतज्ञ अपने गीत की प्रथम पंन्क्ति (टेक) को बार बार दुहराता है किन्तु वह पुनरून्क्ति दोष दूषित न होकर उसके गाये जाने वाले गीत का पोषक होता है यहाँ भी ऐसा ही समझना चाहिए । क्योंकि हमने पहले ही निवेदित किया है कि रामायण को कुटुम्ब काव्य कहा जा सकता है। जैसा कि सुस्पष्ट है कि रामायण में तीन कुटुम्बों (नर, वानर, रक्षस) की कथा परिगुम्फित है । मूलतः कुटुम्बों के तीनों व्यन्क्ति इसके प्रधान हैं, राम, बालि और रावण । यह तो हुए व्यन्क्ति और इनके साथ इनके कुटुम्बों की कथा भी अनस्यूत है, साथ ही वे तीनों अपने अपने समाज का प्रतिनिधित्व भी करते हैं ऐसी स्थिति में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इन तीनों इकाइयों से समवेत कथा वस्तु ने व्यन्क्ति के व्यष्टि मन को एवं कुटुम्ब एवं समाज के समष्टि मन को अवश्य आन्दोलित-उद्वेलित किया है ।

मूलतः व्यन्क्ति ही कुटुम्ब या समाज इन तीन इकाइयों के आकार ग्रहण करता है । यद्यपि कुटुम्ब या समाज ऐसी संज्ञायें हैं जिनका कोई मूर्त आकार नहीं परिलक्षित होता है, किन्तु यह दोनों अपने आप में गहरा अर्थ रखते हैं । न तो मात्र व्यन्क्तियों के समूह को कुटुम्ब की संज्ञा दी जा सकती है और न ही व्यन्क्ति या कुटुम्ब के समूह को समाज के रूप में परिभाषित किया जा सकता है । क्योंकि कुटुम्ब या समाज मात्र लघु एवं बृहत् समूह मात्र नहीं अपितु इसके अतिरिन्क्त और कुछ होते हैं, समाज शास्त्री इनका तात्विक विवेचन करते हैं । हमें इस विवरण में नहीं जाना है किन्तु यह अवश्यध्यातव्य है कि कुटुम्ब और समाज की अपनी संस्कृति सभ्यता मूलक परिष्कृत चेतनायें होती हैं । वह मात्र समुदाय या समूह नहीं ।

शोध-प्रबन्ध में यथास्थान इन तीनों इकायों के अध्ययन सहज ही हो गये हैं , क्योंकि रामायण के अध्ययन में यहीं तो मूल आधार हैं । आदि कवि की लेखनी से चित्रित इन तीनों इकाइयों के चित्र कितने प्रभावी सिद्ध हुये हैं कि जिनसे विश्वजनीन व्यन्क्ति कुटुम्ब एवं समाज का परिष्कार हुआ है या हो सकता है इसको उपसंहृत अर्थ के रूप सें संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है ।

जीवन परिष्कार के लिए भारतीय साधना पद्धति की अपनी पृथक विशेषता रही है । वह है वैयेन्क्तिक साधना पद्धति । वैदिक या सनातन धर्म में सामूहिक साधना पद्धति की परम्परा नहीं है, क्योंकि भारतीय चिन्तन पद्धति संकीर्ण नही है, जब संसार के प्रत्येक व्यन्क्तियों के वाह्य आकार में कुछ न कुछ पार्थक्य विद्यमान रहता है, एक ही पिता के सहजात पुत्रों तक में यत् किंचित् आकृति वैषम्म रहता ही है इसी भांति प्रत्येक व्यन्क्ति का अन्तर्मन भी चिन्तन की दृष्टि से सम स्वभाव नहीं होता । यही कारण है कि इस रहस्य के मर्मविद् हमारे पूर्वजों ने साधना के क्षेत्र में स्वतंत्रता को सुरक्षित रखा है । एक ही परिवार में पिता शैव, पुत्र वैष्णव, पौत्र शाक्त, एवं प्रपौत्र गाणपत्य हो सकता है । किन्तु उनमें परस्पर कोई मतभेद नहीं होता क्योंकि हमारी संस्कृति का यह वैशिष्ट्य है कि उसमें अनेकता में एकता अनुस्यूत रहती है । किन्तु विश्व की अन्य साधना पद्धतियों में सीमातीत संकीर्णता पायी जाती है, परिणामतः न चाहकर भी उनको सामूहिक साधना का भार उठाना पड़ता है। यद्यपि ऊपर से उनकी साधना पद्धति सामाजिकता की पोषक सी प्रतीत होती है , किन्तु वस्तुतस्तु वहाँ भीतर व्यन्क्तिवाद ही सराबोर रहता है । इसकी अपेक्षा भारतीय साधना पद्धति व्यन्क्ति निष्ठ होकर भी व्यापक रूप से समाज के हित-चिन्तन की पृष्ठ पोषक होती है , वेद मातागायत्री इसका निदर्शन है ।

इस तरह हमारे यहाँ व्यन्क्ति के विकास के लिए पर्याप्त अवसर रहता है । और व्यन्क्ति का अपने प्रति दायित्व भी जागरूक रहता है क्योंकि वह जानता है कि यदि प्रत्येक व्यन्क्ति अपना उद्धार कर ले तो कुटुम्ब एवं समाज का उद्धार अनायास ही हो जायेगा फिर भी वह अपने वैयन्क्तिक चरित्र को पहले समाज की लघु पारिधि कुटुम्ब के निकष में कसता है जो व्यन्क्ति अपने कुटुम्ब में उदार भावना का परिचय दे सकता है वही कुटुम्ब की बृहत-परिधि-समाज की सेवा का अधिकारी प्रमाणित हो सकता है । जिसने अपने कुटुम्ब में अपने व्यन्क्तित्व को कौटुम्बिक हित में ढाल लिया है वही सच्चा समाज सेवक हो सकता है । ऐसा ही समाज सेवक 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को आत्मसात् करने का पात्र बनता है । रामायण में वाल्मीकि ने इन तीनों इकाइयों के बिम्ब इतने सुचारू ढंग से प्रस्तुत किये हैं जिनका प्रभाव इन तीनो क्षेत्रों में पड़े बिना नहीं रह सकता । वाल्मीकि की यह महती विशेषता है कि उसने व्यन्क्ति के विकास के हेतु उसके चरित्र को ही प्रधानता प्रदान की है राम के चारित्र्य से वह मुग्ध हैं इसी लिए वह राम कथा का सविस्तार अंकन करते हैं । चारित्र्य के उन्नयन में रामायण

की इसी लिये आज उसकी प्रासंगिकता ज्यों की त्यों बनी हुई है ।

रामायण में राम के अतिरिक्त मानव मात्र को दृष्टि बोध के व्यवस्थापक ऐसे व्यक्तियों की ऐसी श्रृंखला है जिनके चरित्रों का अनुसरण कर मानव अपनी मानवीयता को साकार कर सकता है । भरत, लक्ष्मण , कौसल्या, सुमित्रा ,सीता आदि ही नहीं जटायु ,मारूति .हनुमान, तारा ,मन्दोदरी, विभीषण आदि इस श्रृंखला में प्रमुख हैं तो दूसरी ओर चारित्रिक पतन के प्रतीक व्यक्तियों की श्रृंखला भी क्षीण नहीं उसमें भी मन्थरा, शूर्पणखा, रावण, मारीच, बालि मेघनाद ' आदि गिनाये जा सकते हैं ।.

रामायण का यह संदेश है कि मानव मात्र के लिए नर- संस्कृति ही उपादेय है । जिसकी प्रतिनिधि अयोध्या है । किष्किन्धा और लंका नहीं क्योंकि मानव के लिए मानवीय संस्कृति ही ग्राह्य है वानर संस्कृति या रक्षस्-संस्कृति नहीं । किन्तु खेद के साथ यह कहना पड़ता है कि वाल्मीकि रामायण का यह सन्देश ओझल होता जा रहा है और भारतीय जन-जीवन पाश्चात्य सभ्यता जो किष्किन्धा या लंका की सभ्यता से अनुप्राणित है के चाकचिक्य में भौतिक सुख के अन्वेषण में बेतहासा दौड़ लगा रहा है । जिससे चतुर्दिक अशान्ति अन्तर्कलह वैमनस्यं हिंसावृत्ति तथा व्यक्ति कुटुम्ब समाज में ही नहीं विश्वस्तर पर परस्पर भय संत्रास और अविश्वास की भावना बढ़ती जा रही है । ऐसी स्थिति में व्यक्ति कुटुम्ब और समाज के उन्नयन हेतु रामायण की महत्वपूर्ण प्रासंगिकता है ।

2- ह्रासोन्मुख मानवीय मूल्यों के व्यापक उन्नयन में रामायण की भूमिका :-

सहस्त्रों वर्ष की परतन्त्रता के कारण अपनी राष्ट्रीय अस्मिता को विस्मृत कर देने से हमारे राष्ट्र की जो चारित्रिक क्षति हुयी है उसकी भरपाई अभी तक नहीं हो पायी , चार दशकों से अधिक स्वाधीन जीवन के बावजूद भी उसकी मानसिक पराधीनता ज्यों कि त्यों है । इतना ही नहीं आश्चर्य तो यह है कि हमारा स्वतंत्र राष्ट्र प्रगति के नाम पर अन्य देशों की स्पर्धा में अपने आपको पराधीन काल से भी अधिक चारित्रिक पतन की ओर बढ़ा रहा है । मानवीय मूल्यों का उत्तरोत्तर ह्रास इधर चालीस वर्षो के आसपास होता रहा है यह चिन्ता का विषय है । कहने भर के लिए तो हमारा राष्ट्र धर्म निरपेक्ष है किन्तु जितना साम्प्रदायिक कलह यहाँ उत्तरोत्तर बढ़ रहा है वह सामने है । कश्मीर, पंजाव, असम, की स्थिति तो भयानक है ही, सारे राष्ट्र के कोने कोने में जातीयता, अलगाव एवं पारस्परिक बैमनस्य का नग्न ताण्डव कही कम कहीं अधिक होता रहता है । प्रत्येक दल में स्वार्थ भावना इतने कुत्सित ढंग से बढ़ गयी है कि वर्तमान राजनेताओं में शायद ही किसी को राष्ट्र के हित की चिन्ता हो । इसका क्या परिणाम है ? इसके सोचने का कष्ट तक किसी के हृदय में नहीं उपजता भारतीय

जन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे इतना चारित्रिक पतन हो चुका है कि शाश्वत जीवन मूल्यों को ही नकारा ही नहीं जा रहा उनके प्रति घृणा एवं हेयता की भावना बढ़ती जा रही है, पतन की पराकाष्ठा यहाँ तक सीमा पार कर चुकी है कि अब भारत को विश्व शंकास्पद दृष्टि से देख रहा है । ऐसी स्थिति में शाश्वत जीवन मूल्यों की सुरक्षा जो व्यक्ति कुटुम्ब और समाज की जीवन दायिनी है वह असुरक्षा में परिवर्तित होती जा रही है । यहाँ तक कि आसुरी प्रवृत्तियों की गणना राजनीतिक चातुर्य में होने लगी है । एवं दैवी प्रवृत्तियों को साम्प्रतिक जन जीवन के लिए अनुपादेय ही नही घातक भी समझा जा रहा है । ऐसी स्थिति में हमारी राष्ट्रीय सांस्कृतिक निधि कहीं ऐसा न हो कि वह विश्व के अन्य देशों यूनान मिस्र रोम आदि के समान इतिहास की वस्तु बनकर रह जाय एतदर्थ आवश्यक है कि हमारे राष्ट्र के कर्णधार -समाजसेवी तथा विद्वद्गण शाश्वत मानव मूल्यों की सुरक्षा हेतु महर्षि वाल्मीकि के रामायण के व्यापक प्रचार प्रसार में जुट जायें । इस के लिए यह आवश्यक है कि चिर उपेक्षित संस्कृत भाषा के अध्ययन- अध्यापन विगत शताब्दियों की भांति आरम्भ हो । इसके अतिरिक्त रामायण का देश की सभी भाषाओं में रूपान्तर किया जाय और उसके व्यापक अध्ययन अध्यापन की सुरूचि उत्पन्न की जाय । वाल्मीकि रामायण को मात्र एक पूजा पाठ की धार्मिक पुस्तक न मानकर उसको जीवन-ग्रन्थ के रूप मे अपनाया जाय क्योकि उसमें व्यक्ति कुटुम्ब और समाज के उन्नयन की क्षमता के गुण विद्यमान हैं । इस सन्दर्भ मे यह कहा जा सकता है कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना के उत्थान के लिए अन्य राम कथा परक ग्रन्थ विविध भाषाओं में जब कि विद्यमान है तो वाल्मीकीय रामायण के प्रति ऐसे आग्रह की क्या आवश्यकता है ?इसके उत्तर में निवेदन है कि मात्र वाल्मीकीय रामायण ही ऐसा ग्रन्थ है, जिसके माध्यम से ह्रासोन्मुख जीवन मूल्यों को बचाया जा सकता है क्योंकि उसमें राम की मानवीयता अंकित है, जो सामान्य मानवीय विचार धारा के अति संनिकट है । जबकि अन्य राम कथा परक ग्रन्थ राम के भगवदीय स्वरूप को ख्यापित कर जन जीवन के हृदय में तथा कथित भक्ति भावना का सर्जन भले ही करते हों किन्तु राम के चरित्र को इस रूप मे नहीं प्रतिपादित करते कि जिससे मानव अपने आचरण में राम के चारित्रिक गुणों को उतार सके उदाहरणार्थ तुलसीकृत रामचरित मानस अहल्योद्धार के सन्दर्भ में राम के भगवदीय ऐश्वर्य को तो ख्यापित करता है किन्तु किसी भी नर या नारी को अपनी साधना के द्वारा ऊँचे उठने का सन्देश नहीं देता जब कि वाल्मीकि की अहल्या अपने दुष्कर्म से यदि पतित होती है तो अपने सत्कर्म से मानव समाज के द्वारा प्रणम्य एव अभिनन्द्य भी बनती है तभी तो राघवेन्द्र राम अपने अनुज सौमित्रि के साथ गौतम पत्नी के चरणों मे शिरसा नमन

करते है और उसे अनवद्य घोषित करते है, परिणाम स्वरूप अहल्याके पति गोतम उसको पुनः अपनी अर्द्धांगिनी के रूप में स्वीकार करते हैं । ऐसे अनेक चित्र रामायण मे चित्रित हैं जो मानवीय गुणों के ख्यापक है किन्तु विस्तार भय से यहाँ पल्लवन नहीं किया जा रहा है ।

भारतीय सस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में राम कथा की उपादेयता तथा उसमें वाल्मीकि के बिम्बन-शिल्प का योगदान :-

---

' राम कथा ' एक ऐसी आदर्श कथा है जिसका प्रभाव जीवन के सर्वांगीण विकास में अत्यन्त उपयोगी है । और मानव की त्रिविध इकाई व्यन्ति कुटुम्ब और समाज के लिये यह अत्यन्त उपयोगी है,तथा इसकी उपादेयता छिपी नहीं है ।

संस्कृति का अत्यन्त व्यापक और विशाल क्षेत्र है जिसमें वैयन्तिक, सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक कलात्मक, भाषा वेश-भूषा, उपासना सम्बन्धी सभी दृष्टि से विचार किया जाता है ।

भारतीय संस्कृति की कुछ निजी विशेषताऐं है । जिनका दिग्दर्शन सभी-धर्म ग्रन्थों में कराया गया हैं ' रामायण ' तथा ' महाभारत ' आदि काव्य ग्रन्थ भी अपने आख्यानों के द्वारा भारतीय संस्कृति की झाँकी प्रस्तुत करते है ।

भारतीय संस्कृति के सन्दर्भ में रामकथा की नितान्त आवश्यकता है। क्योंकि 'समष्टि क्षेत्र' में सुकरता से जीवन संचालन हेतु वर्ण व्यवस्था का रामकथा में भली भांति सम्पादन हुआ है । व्यष्टि ' क्षेत्र में ' पुरूषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष हेतु आश्रम व्यवस्था पूर्ण वैज्ञानिक है ।

राम कथा भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित है । राम कथा में संस्कृति के सभी विन्दुओं का समावेश परिलक्षित होताहै,यही इसकी उपयोगिता का मूल भूत कारण है । वलदेव उपाध्याय के शब्दों में संस्कृति की आत्मा साहित्य के भीतर से अपनी मधुरता सदा दिखलाया करती है । संस्कृति के बहुल प्रचार तथा प्रसार का सर्वश्रेष्ठ साधन साहित्य ही है । साहित्य सामाजिक भावना तथा सामाजिक विचार की विशुद्ध अभिव्यन्ति होने के कारण यदि समाज का मुकुर है तो सांस्कृतिक आचार तथा विचार के विपुल प्रचारक तथा प्रसारक होने के हेतु संस्कृति के संदेश को जनता के हृदय तक पहुँचाने के कारण साहित्य संस्कृति का वाहन रहा ।[1]

साहित्य के क्षेत्र में रामकथा की महती उपयोगिता है । वेद सूक्ष्म तत्वो का भण्डार है, उनको समझने एवं मनन करने हेतु व्युत्पन्नबुद्धि एवं सूक्ष्म ग्राहिणी बुद्धि की आवश्यकता है ।

---

(1) सं0 सा0 इ0-(वलदेव उपाध्याय)पृष्ठ 3, 4

रामायण अपेक्षाकृत इतिहासग्रन्थ एवं आदिकाव्य होने के कारण लोक ग्राह्य एवं सर्व जन सुलभ है । दुष्क्रमणीय वेद रूप पर्वत शिखर से खोद कर लाई हुई मणियों की लड़ियाँ इस आदि काव्य में पिरोई हुयी हैं जो रामकथा के रूप में निबद्ध हैं । जिन्हे साधारण वर्ग भी देखकर सराहना कर अनुकरण एवं अनुसरण द्वारा ग्रहण करता है । अतः साहित्य के क्षेत्र में रामकथा की उपादेयता स्वतः लक्षित होती है ।

रामकथा के माध्यम से महर्षि वाल्मीकि ने अपने बिम्बन शिल्प द्वारा भारतीय गार्हस्थ जीवन का विस्तृत चित्रण रामायण में किया है । गार्हस्थ जीवन के सभी आदर्श मूल्यों को वाल्मीकि ने अपने बिम्बन शिल्प के माध्यम से अपनी तूलिका से बिम्बित किया है । यथा रामकथा के माध्यम से आदर्श पिता आदर्श माता, आदर्श भ्राता , आदर्श पति, आदर्श पत्नी आदि जितने भी सम्बन्ध हो सकते हैं उन सब को अपने बिम्बन शिल्प द्वारा संजोया है । जिसके कारण संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में रामकथा की उपयोगिता स्वतः सिद्ध है । रामकथा को भारतीय सभ्यता ने अपनी अभिव्यक्ति के लिये आदर्श रूप प्रदान किया तथा भारतीय सभ्यता की प्रतिष्ठा है गृहस्थाश्रम ।

रामकथा में संयुक्त परिवार का चित्रण किया गया है । परिवार में उच्छृंखलता के व्यवहार का कोई स्थान नहीं था । इस प्रकार परिवार स्नेह , श्रद्धा त्याग, सेवा आदि दिव्य भावनाओं द्वारा विकसित एवं परिवर्धित होता रहा । रामायण की रामकथा में भारतीय संस्कृति के उत्कृष्टतम रूप का निदर्शन है ।

वाल्मीकि रामायण की रामकथा में विवाह से पूर्व वरवधू का परिचय नहीं कराया गया है ।

सीता शान्ता मन्दोदरी सभी ने विवाह से पूर्व अपने पतियों के दर्शन पति के रूप में नहीं किए थे । उनका विवाह स्वेच्छाधीन न होकर पित्राधीन था ।

रामकथा के माध्यम से विवाह संस्कार के पश्चात् स्त्री और पुरुष दोनों के द्वारा अपनीं समस्त प्रवृत्तियों को एक दूसरे में केन्द्रित एवं नियन्त्रित कर आत्म संयम एवं आत्म त्याग का अभ्यास करना भारतीय संस्कृति का प्रथम उद्देश्य है । इसीकारण नारी के लिए पातिव्रत धर्म एवं पुरूष के लिए एक पत्नीव्रत धर्म की आदर्श प्रतिष्ठा का सफल निदर्शन राम कथा के माध्यम से कराया गया है ।

मानव संस्कारों में अन्तिम संस्कार का विशेष महत्त्व था इसका दिग्दर्शन रामकथा में वर्णित दशरथ मरण, जटायु देह त्याग बालि स्वर्गवास तथा रावण मृत्यु है ।

यह संस्कार अत्यन्त पावन और धार्मिक समझा जाता था यही कारण है कि दशरथ कैकेयी पर क्षुभित होकर भरत को इस संस्कार से च्युत करने के लिये कह बैठे ।

" प्रियं चेदं भरतस्यैतद्राम प्रव्राजनं भवेत् ।
मास्म मे भरतः कार्षीत् प्रेतकृत्यं गतायुषः ।।[1]

रामकथा के अनुसार इस संस्कार का निदर्शन नर और पक्षियों तक ही सीमित नहीं रहा अपितु वानर जाति में भी इसका व्यापक वर्णन है । बालि बध के पश्चात् राम का उपदेश एवं लक्ष्मण का आदेश पाकर सुग्रीव ने समस्त प्रेतकार्य सम्पन्न किए जो किसी प्रकार दशरथ के अन्तिम संस्कारसेकम लक्षित नहीं होता अपितु उससे भी अधिक समारोह सामग्रियों से यह कार्य सम्पन्न किया गया ।

नर वानर तथा पशु की ही भांति राक्षस-राज रावण का क्रिया कर्म भी शास्त्र प्रतिपादित ढंग से किया गया । निर्वैर राम विभीषण द्वारा अन्तिम संस्कार का विरोध करने पर अपने प्रतिपक्षी की भी अन्त्येष्टिक्रिया के हेतु वे विभीषण को आदेश देते हैं ।[2]

रामकथा के अनुशीलन से यज्ञ के महत्व का प्रतिपादन होता है । उस समय आर्यों तथा राक्षसों में यज्ञक्रियाओं का उल्लेख किया गया है । यज्ञ भारतीय संस्कृति का अभिन्नतम अंग रहा है।

रामकथा के माध्यम से उस समय की ललित कलाओं का दर्शन होता है । जिसमें वास्तु कला चित्रकला मूर्ति कला आदि का भलीभांति चित्रण किया गया । इस समय संगीत कला का भी अभाव नहीं था " रामकथा " के माध्यम से रामायण में दुन्दुभी , मृदंग, वीणा, पणवादि वाद्य यंत्रों का उल्लेख मिलता है।[3] लवकुश के द्वारा रामायण गान के प्रंसग से यह प्रमाणित हो जाता है कि उस समय गायन शास्त्र भी पर्याप्त विकसित था ।[4] रामायण में गान लहरी का समुचित संकेत है ।[5]

---

(1) वा0रा0- अयो0/ सर्ग 12/92

(2) वा0रा0-युद्ध/सर्ग 111/100

(3) वा0रा0-बाल/सर्ग 5/12

(4) वा0रा0- बाल/ सर्ग 4/ 36

(5) वा0रा0-अयो0/सर्ग 91/ 27

' रामकथा ' की साहित्य के क्षेत्र में अधिक उपयोगिता सिद्ध होती है । शिक्षा के स्वरूप पर व्यापक रूपेण , रामकथा का प्रभाव रहा । रामकथा के आधार पर तत्कालीन साहित्य में धनुर्विधा के अनेक स्थल उपलब्ध होते है । जिनमें शिक्षा के चार तत्व विचारणीय रहे गुरू, विद्यालय ,शिष्य और शिक्षा ।

विद्यार्थियों के तत्कालीन स्वरूप के चित्रण के कारण वाल्मीकि की रामकथा उपयोगी है ।

इसी प्रकार ' सिद्धाश्रम ' में गुरू विश्वामित्र का तपोमय स्वरूप तत्कालीन गुरू की जीवन चर्या का व्यापक दिग्दर्शन कराता है ।[1]

रामकथा भक्ति काव्य होते हुए भी नीति काव्य का भी सुदृढस्तम्भ है । जिसमें स्थान पर नीति की सूक्तियाँ नैतिक परिस्थिति का दिग्दर्शन कराती हैं । आदर्श चरित्र चित्रण के स्वरूप जीवन के नैतिक पक्ष को अलोकित करते है ।

रामकथा में तत्कालीन सामायिक प्रभाव भी स्पष्टः परिलक्षित है या यह कहना असंगत न होगा कि रामकथा के साथ जिन सामायिक परिस्थियों का आदर्श रूप प्रतिबिम्बित है ।

राजनीति शास्त्रियों की भांति वाल्मीकि ने भी ' राजा के महत्व एवं आवश्यकता पर व्यापक प्रकाश डाला ।[2]

प्रजातंत्र में प्रजा के प्रति राजा का क्या क्या कर्तव्य था यह हमें राजा दशरथ और राम के राज्य की स्थिति से ज्ञात होता है ।

उस समय मंत्रिमंडल सशक्त था ' कुमार्ग पर चलता हुआ स्वतंत्र राजा अच्छे मंत्रियों द्वारा सदा रोकने के योग्य होता है ।[3]

उपरोक्त विवरण से संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में रामकथा की उपद्येयता तथा उसमें वाल्मीकि के बिम्बन शिल्प का योगदान अविस्मरणीय है ।

---

(1) वा0रा0- बाल/सर्ग 29/27-31

(2) वा0रा0-अयो0/सर्ग 66/8-14 एवं अयो0/सर्ग 67/36

(3) वा0रा0- अरण्य0/सर्ग 41/7

परिशिष्ट -

1- रामायण का उत्तर काण्ड - कर्तृत्व विमर्श.

वर्तमान समय में वाल्मीकीय रामायण में सात काण्ड जो क्रमशः बाल काण्ड, अयोध्या काण्ड, अरण्य काण्ड , किष्किन्धा काण्ड सुन्दर काण्ड, युद्धकाण्ड एवं उत्तर काण्ड प्राप्त होते है वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड (चतुर्थ सर्ग 2) के अनुसार रामायण में मात्र 500 सर्ग बताए गये है । जबकि गणनानुसार उनकी सर्ग संख्या 645 होती है । ऐसी स्थिति में 145 सर्ग प्रक्षिप्त अंश है ।

तात्पर्य यह है कि मूल रामायण के वास्तविक परिणाम का हमें पता नहीं है ।

जहाँ तक उत्तर काण्ड के कर्तृत्व का विमर्श है इसमें अधिकांश विद्वानो के तीन वर्ग है एक वर्ग सम्पूर्ण उत्तर काण्ड को प्रक्षिप्त मानता तथा दूसरा वर्ग आंशिक रूप से प्रक्षिप्त तथा तीसरा वर्ग वाल्मीकि विरचित रामायण का ही एक काण्ड के रूप में स्वीकारते हैं ।

डा0 याकोवी ने उत्तर काण्ड को प्रक्षिप्त बतलाया है उनके अनुसार मूल रामायण में अयोध्या काण्ड से युद्ध काण्ड तथा पांच ही काण्ड थे । इस विषय में उनके सबसे बड़े दो तर्क है एक तो यह कि उपर्युन्क्त पांच काण्डो में राम का चरित्र मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित है । जबकि उत्तर काण्ड में उसे दिव्य धरातल पर प्रतिष्ठित कर दिया है और विष्णु का अवतार रूप दिखलाया गया है दूसरे रावण जन्म की अवान्तर कथाएं आयी हैं जिनका मुख्य कथा भाग से कोई सम्बन्ध नहीं है । साथ ही दोनो की भाषा शैली में अन्तर है ।

श्री वी0वरदाचार्य उत्तर काण्ड को वाल्मीकि की रचना ही मानते हैं । उन्होने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास[1] में लिखा है उत्तर काण्ड का कुछ अंश प्रक्षिप्त अवश्य है जैसा कि ऊपर ही दिखाया गया है । चन्द्रशेखर पाण्डेय का कथन है कि रामायण में उत्तर काण्ड नहीं था । उत्तर काण्ड को वाल्मीकि द्वारा प्रणीत मानने वाले वी॰ वरदाचार्य भी यह स्वीकार करते हैं कि इसमें प्रक्षिप्त अंश बहुत अधिक है । उन्होने रामायण के टीकाकारों का उल्लेख किया है उन्होने उत्तर काण्ड के बहुत से सर्गो की टीका नहीं लिखी और उन्हें प्रक्षिप्त मानकर उनकी उपेक्षा की उन्होने यह भी माना कि अनुष्टुप भिन्न छन्द किसी अन्य द्वारा सर्गो के अन्त में जोड़ दिये गये होंगे ।[2]

---

(1) सं0सा॰इ0 पृ0 56-62

(2) सं0सा0 इ0 पृ0 56-67

वाचस्पति गैरौला का इस क्रम में यह कहना है कि उत्तरकाण्ड में जो गंगावतरण आदि की कथाएँ हैं जिनका मूल कथा से कोई सम्बन्ध नहीं है । इन कथाओं का लेखक कोई और ही था अतः रामायण का यह अंश प्रक्षिप्त है । वाल्मीकि ने राम को एक आदर्श पुरूष के रूप में चित्रित किया है किन्तु उत्तरकाण्ड में कुछ श्लोक ऐसे मिलते है जिनमें उन्हें अवतार की तरह पूँजा गया है । - सं०सां० इं० पृ० 221।

उत्तर काण्ड के प्रक्षिप्त होने का संदेह प्रबल इसलिए होता है कि युद्ध काण्ड की समाप्ति के साथ ही ग्रन्थ समाप्ति की सूचना सी मिलती है । कारण, इसके अन्त में ग्रन्थ माहात्म्य बतलाया है । इन पंक्तियों के लेखक का विचार है कि मूल कथा सीता परित्याग के साथ समाप्त हो जाती है । और इस तरह यह आद्यन्त करूणा रसात्मक बना रह जाता है । इसके सम्बन्ध में ध्वन्यालोक कार आनन्द बर्धन का प्रामाण्य वाक्य उद्धृत किया जा सकता है ।

" रामायणेहि करूणो रसः स्वयमादि कविना सूत्रितः । ' शोकः श्लोकत्यमागतः इत्येवं वादिना निव्यूर्ढश्च स एव सीतात्यन्त वियोग पर्यन्तमेव स्वप्रबन्धमुपरचयता ।"[1]

इसमें यह स्पष्ट रूप से घोषणा की गई है कि वाल्मीकि मुनि ने श्रीराम सीता के विषय में वियोग तक की ही कथा अपनी रामायण में निबद्ध की थी ।

फिर भी इस विषय पर गहन विचार एवं अनुसंधान की आवश्यकता है ।

---

(1) ध्व०- कारिका -4

2- शोधप्रबन्ध में रामायण के प्रत्येक काण्ड से गृहीत बिम्बों की तालिका :-

काण्ड	सर्ग	श्लोक	बिम्ब	योग
बालकाण्ड	1	2,3,13,14,19,23,36,56,57	अन्तरंग धार्मिक	11
		90,96	"	
		8-16	बहिरंग मानव	01
		8-18 1/2	सम्वादगत	01
		16-18	अलंकारगत	01
	2	05	प्रकृतिगत	01
		11	बहिरंग दृश्य	01
	3	08	प्रकृतिगत	01
	4	10-11	बहिरंग मानव	01
	-	11	अलंकारगत	01
	6	1-4	बहिरंग मानव	01
	7	24	अलंकारगत	01
	8	8-10	संवादगत	01
	15	16-17	बहिरंग मानवेतर	01
	16	11-15	" "	01
	18	50-55	" मानव	01
	19	09,19	" दृश्य	02
	20	1-8	वस्तुगत	01
	-	15-15 1/2	अलंकारगत	01
	24	22	प्रकृतिगत	01
	28	10-12	बहिरंग मानवेतर	01
	49	16	अन्तरंग धार्मिक	01
	50	20	प्रकृतिगत	01

काण्ड	सर्ग	श्लोक	बिम्ब	योग
	51	1-18	संवादगत	01
	55	09	प्रकृतिगत	01
	59	16	बहिरंग दृश्य	01
	62	15	" "	01
	74	17-19	" मानवेतर	01
			योग	36
अयोध्या काण्ड	2	28-44	अन्तरंग सांस्कृतिक	01
	3	8-15	संश्लिष्ट सम्वेदन	01
	-	35 1/2, 36 1/2, 37 1/2	" "	03
	9	41-46	अन्तरंग भावात्मक	01
	10	24-26	बहिरंग मानव	01
	12	54	प्रकृतिगत	01
	-	55	बहिरंग मानव	01
	-	62	अन्तरंग कौटुम्बिक	01
	-	105-112	वस्तुगत	01
	15	48	बहिरंग गत्वर दृश्य	01
	17	22	प्रकृतिगत	01
	19	20-23	अन्तरंग धार्मिक	01
	20	32	बहिरंग मानव	01
	21	9-19	अन्तरंग वैचारिक	01
	-	10-13	बहिरंग मानव	01
		25,30,36	अन्तरंग वैचारिक	02
	28	07	बहिरंग श्रव्य	01

काण्ड	सर्ग	श्लोक	बिम्ब	योग
	30	3-21	अन्तरंग सांस्कृतिक	01
		33-38	" धार्मिक	01
	35	02	बहिरंग दृश्य	01
	39	40-41	" श्रव्य	01
	40	5-9	अन्तरंग भावनात्मक	01
	-	19	बहिरंग श्रव्य	01
	-	37-38	" "	01
	52	03	" "	01
	54	06	" "	01
	59	25	" दृश्य	01
	61	16-18	अन्तरंग धार्मिक	01
	63	22	बहिरंग श्रव्य	01
	67	31,36	अन्तरंग राजनैतिक	02
	73	2-7	" कौटुम्बिक	01
	79	11	" धार्मिक	01
	81	1-3, 14	बहिरंग श्रव्य	02
	87	2-3	" मानव	01
	91	70-73	" आस्वाद्य	01
	92	28	" दृश्य	01
	94	5-6	" "	01
		12	" श्रव्य	01
	99	19-24	बहिरंग चाक्षुष दृश्य	01
	100	36	अन्तरंग राजनैतिक	01
	101	2-8	संवादगत	01

काण्ड	सर्ग	श्लोक संख्या	बिम्ब	योग
	103	33	बहिरंग श्रव्य	01
	104	19	" स्पृश्य	01
	-	32	अन्तरंग धार्मिक	01
	106	33-34	बहिरंग अदृश्य	01
	110	05	अन्तरंग धार्मिक	01
	114	30-31	बहिरंग अदृश्य	01
	118	13	" आघ्रेय	01
				53
अरण्यकाण्ड	3	12	बहिरंग दृश्य	01
	9	2-9	अन्तरंग सांस्कृतिक	01
	11	49	बहिरंग आघ्रेय	01
	15	15	" दृश्य	01
	17	9-11	" मानव	01
	18	23 , 26	" दृश्य	02
	"	23	" श्रव्य	01
	19	14-16	" मानव	01
	20	12	" दृश्य	01
	22	13-15	" चाक्षुष	01
	-	17	" श्रव्य	01
	23	1, 15	" श्रव्य	02
	30	06	" दृश्य	01
	32	05	" दृश्य	01

काण्ड	सर्ग	श्लोक संख्या	बिम्ब	योग
	35	21-22	बहिरंग आघ्रेय	01
	39	3-6	" आस्वाद्य	01
	42	15-19,22,24,32 1/2,33	" दृश्य	05
		28- 28 1/2	" स्पृश्य	01
	-	23,25,26,28 1/2,34 1/2	" गत्वर दृश्य	05
	43	1,14,22	" दृश्य	03
		35 , 36	" स्पृश्य	02
	44	6-7 1/2	" गत्वरदृश्य	01
	46	37, 38	" अदृश्य	02
	49	05, 07 1/2	" दृश्य	02
	50	3-23	अन्तरंग सामाजिक	01
	54	07	बहिंरग गत्वर दृश्य	01
	57	02,12- 12 1/2	" श्रव्य	02
	65	9-16	अन्तरंग राजनैतिक	01
		11- 11 1/2	" धार्मिक	01
	69	23-25	बहिरंग श्रव्य	01
	70	11	दृश्य	01
	72	8	अन्तरंग राजनैतिक	01
	73	12	बहिरंग श्रव्य	01
		12-19	" संश्लिष्ट	01
		35	" श्रव्य	01
	75	20	" दृश्य	01
				52

काण्ड	सर्ग	श्लोक संख्या	बिम्ब	योग बिम्ब
किष्किन्धा काण्ड	1	14,15,18,23,28,31	बहिरंग श्रव्य	08
		39, 92	" "	
	3	9-13	" मानव	01
		27-35	सम्वादगत	01
		27-34	बहिरंग मानवेतर	01
	4	31-32	" "	01
		14	" गत्वरदृश्य	01
	12	40-41	प्रकृतिगत	01
	14	19-22	बहिरंग श्रव्य	01
	16	2-10	" कौटुम्बिक	01
	17	29,32,33,42	अन्तरंग राजनैतिक	04
	18	6-18,41-42	" "	02
	23	27	" धार्मिक	01
	24	30-33	बहिरंग मानवेतर	01
	26	23-27	" संश्लिष संवेदन	01
	27	08 , 09	" श्रव्य	02
	28	07,12,27,	अलंकारगत	03
	-	10, 11 , 18	बहिरंग श्रव्य	03
		28	" आघ्रेय	01
		30-40	" संश्लिष्ट संवेदन	02
		35	" आस्वाद्य	01
		56	" स्पृश्य	01
	30	58	अलंकारगत	01
	31	29	बहिरंग दृश्य	01
	34	05	" "	01
	37	26	" गत्वरदृश्य	01

काण्ड	सर्ग	श्लोक संख्या	बिम्ब	योग
	38	11-13	बहिरंग चाक्षुषदृश्य	01
		21- 21 1/2	अन्तरंग राजनैतिक	01
	39	8-10, 40	बहिरंग गत्वर दृश्य	02
	45	2-9	" "	01
	46	12-13	" "	01
	50	27-32	" दृश्य	01
	61	7-9	" गत्वरदृश्य	01
	67	2-9,11-24,43-49	" "	03
				53
सुन्दरकाण्ड	1	10-20, 29-38,45,47	बहिरंग गत्वरदृश्य	11
		48,67,75,108,186-187 1/2	" "	
		197, 208	" " "	
		104-106----	बहिरंग दृश्य	01
	2	58	" "	01
	4	11	" श्रव्य	01
	5	1-8	अलंकारगत	01
	5	9	" श्रव्य	01
	-	9	अन्तरंग वैचारिक	01
		9	" सांस्कृतिक	01
	8	5-15	बहिरंग चाक्षुषदृश्य	01
	9	19-20 , 56-58	" आघ्रेय	02
		21-29 1/2	" आस्वाद्य	01
		34-65	" चाक्षुक्ष दृश्य	01
	-	37,4041,42,44,45,46	" मानवेतर	09
		70-71, 72-73	"	

काण्ड	सर्ग	श्लोक संख्या	बिम्ब	योग
	10	7-11, 15-21	वहिरंग मानवेतर	02
		23-24	" आघ्रेय-दृश्य	01
	11	14-27 1/2	" आस्वाद्य दृश्य	01
		37-45	अन्तरंग वैचारिक	01
		41-42	वस्तुगत	01
	15	23-35	बहिरंग अदृश्य	01
	18	22-23	" दृश्य	01
	19	14	अन्तरंग धार्मिक	01
	27	09,11,16 1/2	बहिरंग दृश्य	03
	30	18-19	संवादगत	01
	42	30-31,32	बहिरंग श्रव्य	02
	44	08	" दृश्य	01
	46	23	" श्रव्य	01
	47	02	अन्तरंग धार्मिक	01
		4-6	बहिरंग चाक्षुषदृश्य	01
		18	" श्रव्य	18
	48	11	वृत्तिगत	01
	-	29	बहिरंग दृश्य	01
	53	44	" "	01
	54	06	" "	01
	61	11-12	" आस्वाद्य	01
				74

काण्ड	सर्ग	श्लोक संख्या	बिम्ब	योग
युद्धकाण्ड	14	02	वस्तुगत	01
	-	02-05	वृत्तिगत	01
	16	02, 11-15	अन्तरंग राजनैतिक	02
	-	19-26	" धार्मिक	01
	22	67	बहिरंग श्रव्य	01
	35	12,16	अन्तरंग धार्मिक	02
	42	10	बहिरंग श्रव्य	01
	46	05	" दृश्य	01
	63	5-6 , 12 , 58	वस्तुगत	03
	65	18-20	बहिरंग दृश्य	01
	70	51-52 1/2	" "	02
	87	12-22	संवादगत	01
	90	27	बहिरंग दृश्य	01
	113	38-46	अन्तरंग धार्मिक	01
	118	3 1/2	बहिरंग दृश्य	01
			योग	20

काण्ड-	बिम्ब योग
बालकाण्ड-	36
अयोध्याकाण्ड-	53
अरण्यकाण्ड-	52
किष्किन्धाकाण्ड-	53
सुन्दरकाण्ड-	74
युद्धकाण्ड-	20
महायोग-	288

3- सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क- संस्कृत

ख- हिन्दी

ग- अँग्रेजी

घ- पत्र पत्रिकाएँ

(क) संस्कृत

क्र0सं0	नाम ग्रन्थ	लेखक/सम्पादक/संपादन	प्रकाशन	तिथि सन	सम्वत्	विशेष
1-	अध्यात्म रामायण	" शिव "	गीता प्रेस गोरखपुर			
2-	अभिनव भारती	अभिनव गुप्त	दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली	1960		
3-	अभिषेक	व्याख्या रामचन्द्र मिश्र	चौरवम्बा विद्याभवन वाराणसी	1976		
4-	अभिज्ञान शाकुन्तलम्	डॉ0 निरूपण विद्यालंकार	साहित्य भण्डार मेरठ	1969		
5-	अलंकार-मीमांसा	डॉ0 रामचन्द्र द्विवेदी	मोतीलाल बनारसीदास वारायणसी	1965		
6-	अलंकार सर्वस्व	डॉ0 रेवा प्रसाद द्विवेदी	चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी.	1971		
7-	ईशा वास्योपनिषद	व्याखा0-हरिकृष्ण दास गोयन्दाका	गीता प्रेस गोरखपुर			
8-	उ-तररामचरितम्	शेषराज शर्मा रेग्मी	चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी	1971		
9-	उत्तरमेघदूत(कालिदास ग्रन्था0)	डॉ0रेखा प्रसाद द्विवेदी	हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी	1976		
10-	ऋग्वेद	सम्पादक विश्ववन्धु	वैदिक शोध संस्थान होशयारपुर	1965		
11-	कठोपनिषद्	व्याख्याकार हरिकृष्णदास गोयन्दका	गीताप्रेस गोरखपुर			
12-	कालिदास ग्रन्थासवली	डॉ0रेवा प्रसाद द्विवेदी	हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणरी	1976		
13-	काव्य प्रकाश (मम्मट)	श्री निवासशास्त्री	सुभाष बाजार,मेरठ	1981		
14-	काव्यादर्श	रामचन्द्र मिश्र	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी	1972		
15-	काव्यालंकार	देवेन्द्र नाथ शर्मा	विहार राष्ट्रभाषा परिषद्,पटना	1962		

क्र0सं0	नाम ग्रन्थ	लेखक/सम्पादक/संपादन	प्रकाशन	तिथि. सन्	सम्वत	विशेष
16-	किरातार्जुनीयम्	रामप्रताप त्रिपाठी	लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद-	1971		
17-	कुमारसम्भव (कालिदास ग्रन्थावली से)	रेवा प्रसाद द्विवेदी	हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी	1976		
18-	चन्द्रालोक	सुबोधचन्द्र पन्त	मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी	1975		
19-	चित्र मीमांसा	जगदीशचन्द्र मिश्र	चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी	1971		
20-	ध्वन्यालोक	व्याख्या0-जगन्नाथ प्रसाद पाठक	चौखम्ब विद्या भवन वाराणसी	1965		
21-	नाट्य शास्त्र	बटुक नाथ शर्मा,बलदेव उपाध्याय	चौखम्बा विद्याभवन वारायणी	1929		
22-	निरून्क्त	दुर्गाचार्य	कलकत्ता	1952		
23-	नैषधीय चरितम्	शेषराज शर्मा रेग्मी	चौखम्बा सुरभारती वाराणसी			
24-	प्रतिमा नाटक	श्रीधरानन्द शास्त्री	मोतीलाल बनारासीदास	1973		
25-	प्रबन्ध प्रकाश(भाग-1)	डॉ0 मंगलदेव शास्त्री	इण्डियन प्रेस पब्लिशर्स	1971		
26-	पूर्वमेघदूत (कालिदास ग्रन्थावली से)	डा0 रेवा प्रसाद द्विवेदी	हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी	1976		
27-	बुद्धचरितम्	प्रो0राजकिशोर पाण्डेय	कमला प्रकाशन ,कानपुर	1974		प्रथम
28-	बृहदारण्यक	अपौरूषेय	गीताप्रेस गोरखपुर		2029	
29-	भगवद् गीता	वेदव्यास	गीताप्रेस गोरखपुर			
30-	भर्तृहरि नीतिशतकम्	पं0राधाकृष्णमाली	अनुराग प्रकाशन महरोली नईदिल्ली	1986		
31-	भागवत	वेदव्यास	गीताप्रेस गोरखपुर		2028	
32-	मनुस्मृति	हरगोबिन्द शास्त्री	चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी	2039		तृतीय
33-	महाभारत	वेद व्यास	गीताप्रेस गोरखपुर		2023	
34-	रघुवंश (कालीदास ग्रन्थावली से)	रेवा प्रसाद द्विवेदी	हिन्दू विश्वविद्यालय वारायणसी	1976		
35-	रसगंगाधर	बदीनाथ झा	चौखम्बा विद्या भवन वारायणसी	1970		

क्र0सं0	नाम ग्रन्थ	लेखक/सम्पादक/संपादन	प्रकाशन	तिथि सन्	सम्वत्	विशेष
36-	लोचन	जगन्नाथ प्रसाद	चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी	1965		
37-	वक्रोन्क्ति जीवितम्	आचार्य,विश्वेश्वर	आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली			
38-	वाल्मीकीय रामायण	पं0 राम नारायणदन्त शास्त्री	गीताप्रेस गोरखपुर		2024	द्वितीय
39-	व्यन्क्ति - विवेक	डॉ0 रेवा प्रसाद द्विवेदी	चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी	1964		
40-	शिशुपालवध	आद्या प्रसाद मिश्र	भारतीय प्रकाशन चौक कानपुर	1977		
41-	सरस्वती कंठाभरण	केदारनाथ शर्मा	निर्णय सागर बाम्बे	1934		
42-	साहित्य दर्पण	हेमचन्द्र	काव्यालंकार प्रकाशन कलकत्ता		1887	
43-	संस्कृत सून्क्ति सुधा	आचार्य कृष्णदन्त चतुर्वेदी	छात्रबन्धु प्रकाशन कर्वी चित्रकूट धाम			

ख- हिन्दी-

क्र0सं0	नाम ग्रन्थ	लेखक/सम्पादक/संपादन	प्रकाशन	तिथि सन्	सम्वत्	विशेष
1-	आनन्दवर्धन	डॉ0 रेवा प्रसाद द्विवेदी	म0प्र0हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल	1972		
2-	कविता के नये प्रतिमान	डॉ0 नामवर सिंह,	राजकमल प्रकाशन दिल्ली06	1968		
3-	कालिदास का बिम्ब विधान	डॉ0 अयोध्या प्रसाद द्विवेदी	अक्षयवट प्रकाशन इलाहाबाद	1986		
4-	काव्य की भूमिका	रामधारी सिंह दिनकर	उदयाचल प्रकाशन पटना-4	1958		
5-	कामायनी	जयशंकर प्रसाद	प्रसाद प्रकाशन,साद मंदिर,गोवर्धन सराय वाराणसी	1980		
6-	काव्य बिम्ब	डॉ0 नगेन्द्र	नेशनल पब्लिकेशन हाऊस दिल्ली	1967		
7-	काव्य में सौन्दर्य और उदान्त तन्त्व)	शिव बालक राम	वासुमती प्रकाश दारागंज,इलाहाबाद	1969		
8-	कालिदास श्रद्धाञ्जलिका	बाबूलाल गर्ग	भारती भवन प्रकाशन कर्वी चित्रकूटधाम (उ0प्र0)	1971		
9-	कुरूक्षेत्र	रामधारी सिंह दिनकर	उदयाचल प्रकाशन पटना			
10-	चिन्तामणि (भाग-1)	रामचन्द्र शुक्ल	इण्डियन प्रेस, प्रयाग	1961		
11-	छायावाद का काव्य-शिल्प	प्रतिमाकृष्णबल	राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली,	1971		

क्र0सं0	नाम ग्रन्थ	लेखक/सम्पादक/संपादन	प्रकाशन	तिथि सन् सम्वत	विशेष
12-	जायसी की बिम्ब योजना	डॉ0 सुधा सक्सेना	अशोक प्रकाशन दिल्ली-6	1966	
13-	तुलसी साहित्य में बिम्ब योजना	डॉ0 सुशीला शर्मा	कोणार्क प्रकाशन दिल्ली-7	1972	
14-	तुलसी दोहावली	(तुलसीदास) हनुमान प्रसाद पोद्दार	गीताप्रेस गोरखपुर		
15-	नया साहित्य: नये प्रश्न	नन्ददुलारे बाजपेयी	विद्यामन्दिर वाराणसी	1963	
16-	नयीकविता:स्वरूप और समस्यायें	जगदीश गुप्त	भारतीय ज्ञान पीठ वाराणसी	1969	
17-	पल्लविनी	सुमित्रानन्दन पंत	राज कमल प्रकाशन दिल्ली	1963	
18-	प्राचीन भारतीय साहित्य	विन्टरनित्स,अनुवाद,लाजपत राय	मोतीलाल बनारसीदास,वाराणसी	1961	
19-	प्राचीन साहित्य	कवीन्द्र	चौखम्बा विद्या भवन,वाराणसी		
20-	बाइबिल	इण्डियन पब्लिशरस	इण्डियन पव्लिशरर्स ,नई दिल्ली		
21-	ब्राह्मण ग्रन्थ अनुशीलन				
22-	बिहारी सतसई	सुधाकर पाण्डेय	नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी	2034	
23-	भारतीय संस्कृति और कला	हरिमाधव शरण	उ0प्र0हिन्दी संस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी हिन्दी भवन लखनऊ	1985	द्वितीय
24-	भारतीय संस्कृति की रूपरेखा	डा0 भोलाशंकर व्यास	चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी		
25-	रस मीमांसा	रामचन्द्र शुक्ल	काशी नागरी प्रचारिणी सभा	2006	
26-	रस गंगाधर का काव्य शास्त्रीय अध्ययन	प्रेम स्वरूप गुप्त	भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ़	1962	
27-	राम कथा	कामिल वुल्के			
28-	रामचरित मानस	तुलसीदास	गीताप्रेस गोरखपुर		
29-	विश्व सहित्य में रामचरितमानस	राजवहादुर लमगोड़ा	नागरी प्रचारिणी सभा काशी		
30-	वेद विद्या	वासुदेव शरण अग्रवाल	रामप्रसाद एण्ड सन्स आगरा	1959	
31-	वैदिक देव शास्त्र	डा0 सूर्यकान्त	भारत भारती लिमि0 अंसारी रोड दरियागंज दिल्ली.	1961	
32-	संस्कृत के महाकवि और काव्य	डा0 रामजी उपाध्याय	रामनारायण बेनीमाधव,इलाहाबाद	1965	

क्र0सं0	नाम ग्रन्थ	लेखक/सम्पादक/संपादन	प्रकाशन	तिथि सन् सम्वत्	विशेष
33-	संस्कृत साहित्य का इतिहास	बलदेव उपाध्याय	चौखम्बा प्रकाशन		
34-	संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास	आचार्य कपिल देव	संस्कृत साहित्य संस्थान कचहरी रोड इलाहाबाद		प्रथम
35-	संस्कृत साहित्य का इतिहास	ए0बी0कीथ अनुवाद - मंगल देवशास्त्री	मोतीलाल वनारसीदास	1967	द्वितीय
36-	संस्कृत साहित्य की रूपरेखा	डा0 भोलाशंकर व्यास	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी		
37-	स्कन्द गुप्त	जयशंकर	भारती भण्डार प्रयाग	1973	
38-	संस्कृति के चार अध्याय	रामधारी सिंह 'दिनकर'	उदयाचल प्रकाशन, पटना		
39-	साकेत	मैथिलीशरण गुप्त	साहित्य सदन चिरगाँव,झाँसी	2044	
40-	हिन्दी की छायावदी कविता	बलबीर सिंह	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस,दिल्ली,	1964	
41-	हिन्दी साहित्य कोष(भाग-1)	सम्पादित	ज्ञान मण्डल प्रकाशन वाराणसी	2020	
42-	हिमालय मेरी वाहों में	देवद-त शास्त्री	अभिनव भारती , 42 सम्मेलन मार्ग इलाहावाद	1977	

ग- अँग्रेजी

क्र0सं0	नाम ग्रन्थ	लेखक/सम्पादक/संपादन	प्रकाशन	तिथि सन् सम्वत्	विशेष
1-	दी इमेजरी आफ कीट्स एण्ड शैली	आर0एच0 फोगल	यूनिवर्सिटी ऑफ नाथ कारोलिना प्रेस चापलहिल	1962	
2-	इन्ट्रोडक्सन टु भरताज नाट्य शास्त्र	आद्यरंगाचार्य	पापुलर प्रकाशन	1966	
3-	इण्डियन एस्थेटिक्स	के0एस0 रामस्वामी शास्त्री	वाणी विलास प्रेस	1928	
4-	इमेजरी इन पोएट्री :-एन एन इण्डियन एप्रोच	डॉ0 रमारंजन मुखर्जी	संस्कृत पुस्तक भण्डार कलकत्ता	1972	
5-	एलिमेन्ट आफ पोइट्री (उर्द्धत कालिदास का बिम्बविधान	जेम्स0आर0व्यूजर अयोध्या प्रसाद द्विवेदी	अक्षय वट प्रकाशन इलाहावाद	1986	
6-	कन्ट्रीज आफ दी माइन्ड	मिडिल्टन मरी	लन्दन	1922	
7-	कम्परेटिव एस्थेटिक्स	के0सी0 पाण्डेय	चौखम्ब संस्कृत सीरीज	1956	

क्र0सं0	नाम ग्रन्थ	लेखक/सम्पादक/संपादन	प्रकाशन	तिथि सन् सम्वत्	विशेष
8-	ट्रेन्ड आफ माडर्न पोइट्री	जी0 व्ल्यू	लन्दन	1949	
9-	थियरी ऑफ लिटरेचर	रेनेवेलेक एण्ड आस्टेन वारेन	पेंगुइन वुक्स आस्ट्रेलिया	1963	
10-	दी प्राब्लम आफ स्टाइल	जे0मिडिटनमुरे	आक्सफोर्ड पेपर वैक्स	1961	
11-	दी पोइटिक इमेज	सी0डे0लुइस	जोनथन केप, थेरटी, बेडफोर्डस्क्वायर लन्दन	1961	
12-	प्रिन्सिटन ऍन्साक्लोपीडिया ऑफ पोएट्री एण्ड पोएटिक्स	सम्पादित	प्रिंसिपपल यूनिवर्सिटी प्रेस यूनाइटेड स्टेट आफ अमेरिका	1972	
13-	प्रिंसिपुल्स आफ लिटरैरी क्रिटिसिज्म	आई0ए0रिचार्डस्	रूटलेड्स एण्ड केगनपाल,लन्दन	1959	
14-	बायोग्राफिया लिटरैरिया	सैमुअल टेलर कालरिज	आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस लन्दन	1939	
15-	भोजाज़ श्रृगार प्रकाश	वी0राघवन, पुनर्वसु	श्रीकृष्णपुरं स्ट्रीट,मद्रास		
16-	रोमाण्टिक इमेज	फैक कर्मोड	रूटलेड्ज एण्ड कैशनपाल लन्दन	1966	
17-	लाइट्स ऑन् वेद	टी0वी0कपाली शास्त्री	अरविन्द आश्रम पाण्डिचेरी	1947	
18-	वैदिक रीडर	ए0ए0 मैकडॉनल	आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस	1960	
19-	शैक्सपियर्स इमेजरी एण्ड ह्वाट इट टेल्स अस	कैरोलिन एफ0ई0स्पर्जियन	कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस	1966	
20-	समकन्सेप्ट्स आफ दी अलंकार शास्त्र	वी0राघवन	मद्रास	1942	
21-	संस्कृत पोएटिक्सः ए क्रिटिकल एण्ड कम्परेटिव स्टडी	कृष्ण चैत्य	दिल्ली		
22-	हिस्ट्री आफ दी संस्कृत लिटरेचर	दास गुप्ता (मैकडॉनल)मुंसी राममनोहर लाल	यूनिवर्सिटी आफ कलक-ता नई सड़क दिल्ली	1962 1961	

(घ) पत्र पत्रिकाएं

1-	कल्याण	हनुमान दास पोद्दार	गीताप्रेस गोरखपुर	अगस्त 1940	
2-	वेद वाणी	आचार्य सत्यव्रत राजेश	रामलाल कपूर ट्रस्ट अमृतसर	मार्च 1992	
3-	सागरिका	सम्पादित	सागर विश्वविद्यालय म0प्र0		

ग्रन्थ - संकेत - निर्देश

(क) संस्कृत ग्रन्थ

संकेत	ग्रन्थ
अ0 रा0	अध्यात्म रामायण
अभिन0	अभिनव भारती
अभि0	अभिषेक नाटक
अभि0 शा0	अभिज्ञान शाकुन्तलम्
अ0मी0	अलंकार मीमांसा
अ0 स0	अलंकार सर्वस्व
आ0व0	आनन्दवर्धन
ईशा0	ईशावास्योपनिषद्
उ0 रा0	उत्तरामचरितम्
उ0 मे0	उत्तर मेघदूत
ऋ0	ऋग्वेद
कठो0	कठोपनिषद
का0ग्र0	कालिदास ग्रन्थावली
का0प्र0	काव्य प्रकाश
काव्या0	काव्यादर्श
काव्यालं0	काव्यालंकार
कु0	किरातार्जुनीयम्
कु०	कुमार सम्भव
चन्द्रा0	चन्द्रलोक
चि0मी0	चित्र मीमांसा
ध्व0	ध्वन्यालोक
ना0	नाट्यशास्त्र
नि0	निरू-क्त
नैषधी0	नैषधीय चरितम्

संकेत	ग्रन्थ
प्र0	प्रतिमा (नाटक)
प्र0 प्र0	प्रबन्ध प्रकाश
पू0 मे0	पूर्व मेघदूत
ब्रा0 ग्र0	ब्रह्मणग्रन्थ अनुशीलन
बु0च0	बुद्ध चरितम्
वृहद्0	बृहदारण्यक
भग0	भगवद्गीगा
भर्तृ0 नी0	भर्तृहरिनीतिशतकम
भाग0	भागवत
मनु0	मनुस्मृति
महा0	महाभारत
रघु0	रघुवंश
रसगं0	रसगंगाधर
लो0	लोचन (ध्वन्यालोक की टीका)
वक्रो0	वक्रोन्ति जीवितम्
वा0रा0	वाल्मीकीय रामायण
व्य0 वि0	व्यन्ति विवेक
शि0	शिशुपालवध
स0 क0	सरस्वती कण्ठाभरण
सा0द0	साहित्य दर्पण
सं0 सू0	संस्कृत सून्ति सुधा

ख- हिन्दी ग्रन्थ

संकेत	ग्रन्थ
आ0 व0	आनन्द वर्धन.
क0 प्र0	कविता के नये प्रतिमान
का0 बि0 वि0	कालिदास का बिम्ब विधान
का0भू0	काव्य की भूमिका
कामा0	कामयनी
का0वि0	काव्य बिम्ब
का0 सौ0 उ0	काव्य में सौन्दर्य और उदान्त तत्व
का0 श्र0	कालिदास श्रद्धांजलिका
कुरू0	कुरूक्षेत्र
चि0	चिन्तामणि
छा0का0	छायावाद का काव्य शिल्प
जा0वि0यो0	जायसी की बिम्ब योजना
तु0 वि0	तुलसी साहित्य में बिम्ब योजना
तु0 दो0	तुलसी दोहावली
न0 न0	नया साहित्य नये प्रश्न
न स्व0 स0	नयी कविता स्वरूप और समस्यायें
पल्ल0	पल्लविनी
प्रा0मा0सा0	प्राचीन भारतीय साहित्य
प्रा0सा0	प्राचीन साहित्य
बाइबिल	बाइबिल
ब्रा0ग्र0	ब्राह्मण ग्रन्थ अनुशीलन
बि0स0	बिहारी
भा0सं0क0	भारतीय संस्कृति और कला

संकेत	ग्रन्थ
भा0 सं0 रू0	भारतीय संस्कृत की रूप रेखा
रसगं0	रस गंगाधर का काव्य शास्त्रीय अध्ययन
रस0	रस मीमांसा
रामकथा	रामकथा
राम चरि0	रामचरित मानस
वि0सा0रा0	विश्व साहित्य में रामचरित मानस
वे वि0	वेद विद्या
वै0 दे0	वैदिक देव शास्त्र
सं0 म0 का0	संस्कृत के महाकवि और काव्य
सं0 सा0 इ0	संस्कृत साहित्य का इतिहास
सं सा0 समी0 इ0	संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास
सं0 सा0 रू0	संस्कृत साहित्य की रूपरेखा
स्क0	स्कन्दगुप्त
साकेत	साकेत
हि0छा0क0वि0	हिन्दी की छायावादी कविता का कला विधान
हि0सा0को0	हिन्दी साहित्य कोष

(ग) अंग्रेजी ग्रन्थ

संकेत	ग्रन्थ
इ0की0शै0	दी इमेजरी आफ कीट्स एण्ड शैली
इ0 भ0 ना0	इन्ट्रोडक्सन टु भरताज नाट्य शास्त्र
इ0 ए0	इण्डियन एस्थेटिक्स
इ0 पो0 इ0 ए0	इमेजरी इन पोएट्रीः एन इण्डियन एप्रोच
ए0पो0	एलीमेंन्ट आफ पोइट्री
थि0लि0	थियरी आफ लिटरेचर
प्रा0स्टा0	दी प्राब्लम आफ स्टाइल
पो0 इ0	दी पोइटिक इमेज
प्रि0 इँन्सा0 पो0	प्रिन्सिटन एन्साक्लोपीडिया आफ पोएट्री एण्ड पोएटिक्स
प्रि0लि0क्रि0	प्रिंसिपुल्स आफ लिटरैरी क्रिटिसिज्म
बायो0 लिट0	बायोग्रफिया लिटरैरिया
भो0श्रृ0	भोजाज श्रृगांर प्रकाश
रो0इ0	रोमांटिक इमेज
ला0 वे0	लाइट्स ऑन् वेद
वै0 री0	वैदिक रीडर.
शै0 इ0	शैक्सपियर्स इमेजरी एण्ड ह्वाट इट टेल्स अस
स0 क0 अ0	सम0 कन्सेप्ट्स आफ दी अलंकारशास्त्र
सं0 पो0	संस्कृत पोएटिक्सः एक्रिटिकल एण्ड कम्परेटि स्टेडी
हि0सं0लि0	हिस्ट्री आफ दी संस्कृत लिटरेचर

(घ) पत्र पत्रिकाएं

साग0	सागरिका